हिन्दू राज्य

तथ्य, तर्क और इतिहास की कसौटी पर

प्रो० बलराज मधोक

वैचारिक विकल्प प्रकाशन
बैंक स्ट्रीट (पटवारी जी कार्नर)
नयी दिल्ली-११०००५

क्रम

पृष्ठ

प्रस्तावना

इतिहास और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के विद्यार्थी और प्रेक्षक के नाते मुझे हिन्दुओं में इतिहासबोध और राजनीतिक यथार्थवाद के अभाव से बहुत हैरानी हुई है। हिन्दू नेताओं ने इतिहास से न कुछ सीखा है और न कुछ भुलाया है। हिन्दुस्तान और हिन्दू समाज को उनकी इस कमी की बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ी है। लगता है कि हिन्दू समाज में जीवन की प्रवृत्ति और जीते रहने की इच्छा का ही लोप हो रहा है।

सर्वप्रथम मुझे यह बोध तब हुआ जब १९४५ में मैंने 'इण्डियन लिबरल लीग' के आह्वान पर 'साम्प्रदायिक समस्या : इसके कारण और समाधान' विषय पर एक विस्तृत निबन्ध लिखने के लिए मुस्लिम समस्या का गहराई से अध्ययन किया। मेरे निबन्ध को सर्वश्रेष्ठ घोषित किया गया और मुझे प्रथम पुरस्कार दिया गया। १९४७ में देश-विभाजन के पूर्व यह 'इण्डिया ऑन दी क्रॉस रोड्स'—हिन्दुस्तान चौराहे पर—के शीर्षक से पुस्तक के रूप में लाहौर से प्रकाशित हुआ था।

मैंने उस घटनाचक्र को, जिसकी परिणति १९४७ में मातृभूमि के विभाजन में हुई और उसके साथ जुड़ी हुई मारकाट को भी निकट से देखा। काश्मीर घाटी और विशेष रूप में श्रीनगर की पाकिस्तानी आक्रान्ताओं से सुरक्षा के काम में भी मैंने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। तब शेख अब्दुल्ला अपने परिवार समेत काश्मीर से भागकर अपने साले के पास इन्दौर जा चुका था और उसके अनुयायी पाकिस्तानी आक्रान्ताओं को सहयोग दे रहे थे। तब से लेकर मैं खंडित हिन्दुस्तान की राजनीति में सक्रिय रहा हूँ और उसके पड़ोसी देशों में घटने वाले घटनाचक्र में भी रुचि लेता रहा हूँ। विभाजन के छत्तीस वर्षों के अन्दर खंडित भारत में

फिर उसी प्रकार के हालात पैदा हो गए हैं जैसे १९४७ के पूर्व थे। हिन्दुओं में इतिहास-बोध और राजनीतिक यथार्थवाद की अल्पज्ञता का यह ज्वलन्त उदाहरण है।

अल्पमतों की समस्या का अध्ययन करने के लिये मैंने मिस्र, तुर्की, ईरान और अफगानिस्तान जैसे मुस्लिम बहुल देशों; लेबनान और मलयेशिया जहाँ मुसलमान ५० प्रतिशत के लगभग हैं और यूगोस्लाविया, इस्राइल, फिलिपाइन, बरमा, नेपाल और थाइलैंड जहाँ वे ५ प्रतिशत से २० प्रतिशत तक अल्पमत में हैं, भ्रमण किया। भारत, पाकिस्तान और बंगला देश में साम्प्रदायिक-राजनीतिक गिरोहों के रूप में मुसलमानों के आचरण के स्वयं अनुभूत ज्ञान और इतिहास के परिप्रेक्ष्य में इन देशों के मुस्लिम अल्पमतों के आचरण और व्यवहार के अध्ययन से मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि यदि हिन्दुस्तान की जनता और सरकार ने मुसलमानों और इस्लाम के सम्बन्ध में अपनी अज्ञानपूर्ण अयथार्थवादी नीति का परित्याग न किया तो प्राचीन यूनान और मिस्र की तरह हिन्दुस्तान की भी विशिष्ट ऐतिहासिक और सांस्कृतिक पहचान समाप्त हो जाएगी। इस्लाम साम्य-वाद की तरह की एक मज़हब-मूलक राजनीतिक विचारधारा है न कि आध्यात्मिक परम्परा। इसलिए यदि हिन्दुस्तान और हिन्दू समाज ने अपने अस्तित्व की रक्षा करनी है तो इन्हें भारत के अन्दर और बाहर की वस्तु-स्थिति को खुले दिमाग से देखना और आँकना होगा।

मेरी यह हार्दिक इच्छा और प्रामाणिक प्रयत्न रहा है कि विभाजन के बाद भी जो मुसलमान खंडित भारत में टिके रहे वे राष्ट्र की मुख्य धारा में शामिल हों और वे इस्लामवाद के 'मिल्लत और कुफ़', 'दार-उल-इस्लाम' और 'दार-उल-हरब' तथा 'ज़िहाद' जैसे राजनीतिक अलगाववादी और राष्ट्रविरोधी सिद्धान्तों और अवधारणाओं का परित्याग करके अपने मज़हब को पूजाविधि और परमात्मा तक पहुँचने के अपने विशिष्ट मार्ग का रूपमात्र ही समझें और मानें। १९७० में प्रकाशित मेरी 'इण्डिया-नाइज़ेशन'—भारतीयकरण—नाम की पुस्तक का यह मुख्य विषय और उद्देश्य था।

१९७० से भारत में अरब इस्लामी जगत् से आने वाले पैट्रो-डालरों

के द्वारा इस्लामी सिद्धान्तवाद को जो बल मिला है, उसने एक नयी स्थिति पैदा कर दी है। मुसलमानों ने अब खंडित भारत का इस्लामीकरण करने के विषय में सोचना ही नहीं अपितु इस दिशा में योजनाबद्ध प्रयत्न शुरू कर दिया है। उनका उद्देश्य भारत को पाकिस्तान की तरह 'दार-उल-इस्लाम' यानी इस्लामी राज्य बनाना है।

भारत के अन्दर और बाहर के घटनाचक्र ने हिन्दू मानस को भी आन्दोलित करना शुरू कर दिया है। विचारशील लोगों ने यह महसूस करना शुरू कर दिया है कि १९४७ में विभाजन को स्वीकार करना और इसके तर्कसंगत फलितार्थों को कार्यरूप न देना बहुत बड़ी भूल थी। इस बात का एहसास भी बढ़ रहा है कि यदि भारत को अपनी एकता की रक्षा करनी है और एक विशिष्ट पहचान वाले राष्ट्रीय राज्य के रूप में जीवित रहना है तो इसे हिन्दू राज्य घोषित करना होगा।

बम्बई के विख्यात अंग्रेजी साप्ताहिक 'इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इण्डिया' ने अपने १५ जून, १९८० के अंक में 'क्या हिन्दुस्तान एक हिन्दू राज्य होना चाहिए?' विषय पर एक परिचर्चा प्रकाशित की थी। इसमें छपे कुछ लेखों में भारत को हिन्दू राज्य घोषित किये जाने का विरोध किया गया था। परन्तु लेखों पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने वाले सम्पादक के नाम पत्रों में से अधिकांश ने भारत को हिन्दू राज्य घोषित करने के पक्ष में लिखा था। लेखों में हिन्दू राज्य पर की गई आपत्तियों का उत्तर देने के भाव से मैंने भी एक लेख भेजा था। 'वीकली' के सम्पादक ने उसे सहर्ष स्वीकार किया, और उसे शीघ्र छापने का आश्वासन दिया। परन्तु किन्हीं अज्ञात कारणों से 'वीकली' ने इस परिचर्चा को बन्द कर दिया और मेरा लेख नहीं छपा। तब मैंने हिन्दू राज्य विषय पर विस्तार से लिखने का निश्चय किया और एक वर्ष में अंग्रेजी में 'रैशनेल ऑफ हिन्दू स्टेट' नामक एक पुस्तक अंग्रेजी में लिख डाली। १९८१ के अन्त में यह प्रकाशित भी हो गई। अब इसका सस्ता संस्करण भी छप चुका है। उस पुस्तक के प्रकाशित होते ही यह माँग शुरू हुई कि उसे हिन्दी में भी प्रकाशित किया जाय। विषय गूढ़ होने के कारण अनेक बन्धुओं का आग्रह था कि इसे हिन्दी में भी मैं स्वयं ही लिखूँ ताकि पुस्तक का मूल भाव स्पष्ट रहे। परन्तु व्यस्तता के कारण मैं

यह काम शीघ्र नहीं कर सका।

इस हिन्दी संस्करण की तैयारी में मुझे मेरे मित्र डॉ० रामप्रसाद मिश्र, पत्नी श्रीमती कमला मधोक और पुत्री माधुरी से सक्रिय सहयोग मिला है।

मैं इस पुस्तक के सम्बन्ध में किसी प्रकार की मौलिकता का दावा नहीं करता। मैंने विषय का विवेचन अपने अनुभव, इतिहास से परिप्रेक्ष्य और संसार के अन्य देशों में विद्यमान स्थिति के सन्दर्भ में किया है। इस्लाम के राजनीतिक पक्ष पर हाल ही में प्रकाशित कुछ पुस्तकों और लेखों को भी, जिनमें डेनियल पाइप्स का 'The world is Political—The Islamic Revival of the Seventies' और प्रो० अली-ए-मज़रुई का लेख 'Changing the Gaurds from Hindus to Muslims' विशेष रूप में उल्लेखनीय हैं। इनका भी मैंने प्रासंगिक उपयोग किया है।

मैंने प्रयत्न किया है कि पुस्तक तथ्यात्मक और वस्तुपरक हो। मेरा उद्देश्य पाठकों को विषय के सम्बन्ध में शिक्षित करना है। सर्व-धर्म/पंथ-सम-भाव के वैदिक आदर्श में मेरी आस्था है। इसलिए मैं परमात्मा, जो प्राणिमात्र का पिता है, और जो अपने बन्दों में मज़हब, जाति, भाषा और लिंग के आधार पर भेदभाव नहीं करता, तक पहुँचने के लिए सभी मार्गों और पंथों का आदर करता हूँ। इसलिए मेरा किसी व्यक्ति या गिरोह का दिल दुखाने की कदापि कोई मंशा नहीं है।

मुझे आशा और विश्वास है कि यह पुस्तक प्रकाश देगी परन्तु उत्तेजना पैदा नहीं करेगी और इस महत्त्वपूर्ण विषय पर एक राष्ट्रीय विवाद का आधार बनेगी।

—बलराज मधोक

: १ :

हिन्दू, हिन्दू धर्म और हिन्दुत्व

भारत अथवा हिन्दुस्तान अथवा इण्डिया के लोग अति प्राचीन काल से हिन्दू नाम से जाने जाते रहे हैं। यह नाम सिन्धु से निकला है। सिन्धु नदी इस देश का प्रमुख भौगोलिक मानचिह्न है। पश्चिम की ओर से भारत में प्रवेश करने पर प्रवहमान सागर जैसी यह विशाल नदी हमारे देश की विशिष्ट पहचान रही है। इस महान् नदी और उसकी सरस्वती नदी समेत सहायक नदियों के तटों पर ही उस महान् आर्य संस्कृति और जीवन-पद्धति का विकास हुआ जो बाद में सिन्धु से ब्रह्मपुत्र और हिमालय से कन्याकुमारी तक फैले सारे देश में व्याप्त हो गई। यही क्षेत्र वैदिक आर्यों का आदि देश और मूल निवास था। यहीं से उनका पूर्व और पश्चिम के देशों में विस्तार हुआ। डॉ० सम्पूर्णानन्द ने अपनी विख्यात कृति 'आर्यों का आदि देश' में इस तथ्य को अकाट्य प्रमाणों के साथ प्रतिपादित किया है।

आर्यों के प्राचीनतम ग्रन्थ और भारतीय संस्कृति और ज्ञान के आदि स्रोत 'ऋग्वेद' में इस क्षेत्र को 'सप्तसिन्धव:' (सात नदियों का क्षेत्र) और 'ब्रह्मावर्त' (जहाँ से परमात्मा ने सृष्टि आवर्तन किया) कहा गया है। भ्रातृदेश ईरान के लोगों ने संस्कृत 'स' का उच्चारण 'ह' किया। इसलिए उन्होंने सप्तसिन्धव: को 'हप्तहिन्दव:' कहा। ईरानियों (पारसियों) की प्राचीन धर्मपुस्तक 'ज़िन्द अवेस्ता' में 'हप्तहिन्दव:' शब्द का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

इस प्रकार संसार में ईसाई मत और इस्लाम के प्रादुर्भाव से बहुत पहले सिन्धु नदी के इस देश को सिन्धुस्तान अथवा हिन्दुस्तान की संज्ञा मिल चुकी थी। इसके लोगों को हिन्दू नाम से पहचाना जाने लगा था।

बहुत समय बाद जब सिकन्दर के नेतृत्व में यूनानी सेनाएँ ईरान को हस्तगत करके हमारे देश की ओर बढ़ीं तो वे भी सिन्धु नदी के दृश्य से प्रभावित हुईं। उन्होंने सिन्धु का उच्चारण 'इण्डस' किया, सिन्धु नदी वाले इस देश को इण्डिया की संज्ञा दी और यहाँ के लोगों को इण्डियन कहना शुरू किया। इस प्रकार यूनानियों द्वारा पहले-पहल हिन्दुस्तान और इसके निवासियों के लिए इण्डिया और इण्डियन नामों का प्रचलन किया गया क्योंकि ब्रिटेन समेत यूरोप के लोगों को हमारे देश का ज्ञान पहले-पहल यूनानियों से मिला इसलिए उनमें यही नाम प्रचलित हुआ। हिन्दुस्तान के लोग अपने और अपने देश के लिए यूरोप में प्रयुक्त किये जाने वाले इन नामों से सोलहवीं शताब्दी में यूरोपीय लोगों के हिन्दुस्तान में आने तक सर्वथा अनभिज्ञ थे। अपने देश में इन नामों का व्यापक प्रचलन हिन्दुस्तान में अंग्रेजी राज की स्थापना के बाद ही हुआ। इस प्रकार इन नामों को अंग्रेजी भाषा और सभ्यता की तरह विदेशी ब्रिटिश राज की निशानी कहा जा सकता है।

ऊपर दिये गए विवेचन से स्पष्ट है कि हिन्दुस्तान और इण्डिया तथा हिन्दू और इण्डियन पर्यायवाची शब्द हैं।

हमारे देश का तीसरा नाम भारत अथवा भारतवर्ष है। इस नाम की पृष्ठभूमि राजनीतिक है। जब वैदिक आर्य और उनकी संस्कृति सप्त-सिन्धवः अथवा ब्रह्मावर्त क्षेत्र से आगे बढ़कर हिमालय और विन्ध्याचल के बीच के सारे भू-भाग में फैल गई, तब इस सारे क्षेत्र को आर्यावर्त्त कहा जाने लगा। कालान्तर में वैदिक आर्य संस्कृति विन्ध्याचल पार करके देश के दक्षिणी भाग में भी फैल गई। इस प्रकार हिमालय से कन्याकुमारी तक का सारा भू-भाग सांस्कृतिक दृष्टि से एक सूत्र में बँध गया। तब विन्ध्याचल के उत्तर के क्षेत्र को उत्तरापथ और इसके दक्षिण के क्षेत्र को दक्षिणापथ कहा जाने लगा।

राजनीतिक दृष्टि से सुनिश्चित सीमाओं और समान संस्कृति वाला यह भू-भाग अनेक राज्यों में बँट गया। परन्तु देश के विचारकों की यह स्वाभाविक आकांक्षा रही कि राजनीतिक दृष्टि से भी यह सारा देश एक सूत्र में बँध जाए। इसीलिए उन्होंने चक्रवर्ती राज्य की कल्पना की।

हमारी परम्परा के अनुसार प्रथम सम्राट् जिसने इस काम में सफलता प्राप्त की और काश्मीर से कन्याकुमारी तथा सिन्धु से ब्रह्मपुत्र तक के सारे क्षेत्र को एक छत्र के नीचे ले आया वह सम्राट् भरत था। उसकी इस उपलब्धि की याद में सारे देश को भारत अथवा भारतवर्ष की संज्ञा भी मिल गई। यह घटना हजारों वर्ष पूर्व की है। विष्णुपुराण, जो लगभग दो हजार वर्ष पुराना है, इस नाम का स्पष्ट उल्लेख ही नहीं करता अपितु इसके उद्गम पर भी प्रकाश डालता है। इसके अनुसार समुद्र के उत्तर और हिमालय के दक्षिण का सारा भू-भाग जिसमें भारत की सन्तति निवास करती है, भारतवर्ष देश है—

"उत्तरं यत् समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।
वर्षं तत् भारतं नाम भारती यत्र संततिः॥

लगभग उसी समय लिखे गए वायुपुराण में इस भारत देश के विस्तार तथा लम्बाई-चौड़ाई का भी स्पष्ट उल्लेख है। इसके अनुसार गंगा के स्रोत से कन्याकुमारी तक इस देश की लम्बाई एक हजार योजन है—

योजनानां सहस्रं द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरम्।
आयतो हि कुमारी क्याद् गंगा प्रभवाच्च यः॥

इस प्रकार हिन्दुस्तान और भारत तथा हिन्दू और भारतीय नामों का देश में प्रचलन हुआ। परन्तु उत्तर भारत में हिन्दू शब्द का प्रचलन अधिक रहा। प्राचीन जैन साहित्य में हिन्दू देश अथवा हिन्दुस्तान का उल्लेख अनेक जगह मिलता है। एक जैन गुरु अपने शिष्य को यह कहते बताए गए हैं कि चलो हिन्दू देश चलो—

एहि हिन्दु देशं वच्चामिः।

स्वर्गीय डॉ० राधाकृष्णन् ने १९६५ में गणतन्त्र दिवस के अवसर पर राष्ट्र के नाम प्रसारित अपने भाषण में हिन्दुस्तान नाम के सम्बन्ध में एक श्लोक कहा था, वह निम्नोक्त है—

हिमालयं समारम्य यावदिन्दु सरोवरम्।
हिन्दुस्थानमिति ख्यातमान्द्यन्ताक्षरयोगतः॥

यह श्लोक कुलार्णव तन्त्र का है। इसके अनुसार हिमालय से इन्दु सरोवर (कन्याकुमारी) नामों के मेल से हिन्दुस्तान नाम बना है।

भविष्यपुराण हिन्दुस्तान को सिन्धु के पश्चिम में स्थित भू-भाग द्वारा विख्यात करता है—

सिन्धु स्थानमिति ज्ञेयं राष्ट्रमार्यस्यचोत्तमम्
म्लेच्छस्थानं परं सिन्धोः कृतः तेन महात्मनन् ।

भारत के बाहर यहाँ के लोग भारतीय की अपेक्षा हिन्दू नाम से अधिक जाने जाते थे। चीनी यात्री ह्वेनस्यांग संस्कृत का भी विद्वान् था और भारत नाम से भली-भाँति परिचित था, परन्तु उसने अपनी कृतियों में भारत के लोगों का उल्लेख जिन्तू अथवा हिन्दू नाम से ही किया। आज भी जापान, वियतनाम इत्यादि बौद्ध धर्मप्रधान देशों में भारत के लोगों के लिए हिन्दू अथवा इन्दु नाम का ही प्रयोग होता है। वे लोग हमें न भारतीय कहते हैं न इण्डियन।

ऊपर दिये गए उदाहरणों और प्रमाणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दुस्तान और हिन्दू नाम अति प्राचीन है। इनका प्रचलन ईसाई मत और इस्लाम मत के उद्भव से बहुत पहले हो चुका था। जब मुसलमान आक्रान्ताओं का हिन्दुस्तान के हिन्दू लोगों ने कड़ा प्रतिरोध किया तब उन्होंने सभी हिन्दुओं को अपना शत्रु मान लिया और वे हिन्दू शब्द को काफ़िर का पर्याय मानने लगे। यही कारण है कि मुसलमानों के द्वारा लिखे गए कई फारसी और अरबी शब्दकोशों में हिन्दू का अर्थ 'काफ़िर' और 'चोर' लिखा गया। इस विवेचन से हिन्दू नाम की प्राचीनता, सार्थकता और इसके सही अर्थ के सम्बन्ध में सब भ्रान्तियाँ दूर हो जानी चाहिए।

अरब, तुर्क और मुगल आक्रान्ताओं के साथ लम्बे संघर्ष में हिन्दू नाम हमारी सुख और दुःख, जीत और हार, त्याग और बलिदान की स्मृतियों से पवित्र हो गया। चन्द्रवरदायी ने अपनी विख्यात कृति पृथ्वीराजरासो में भारतवासियों और पृथ्वीराज चौहान के सैनिकों को तुर्क आक्रान्ताओं से विख्यात करने के लिए बार-बार हिन्दू नाम का प्रयोग किया है। उदाहरण के लिये उनके निम्न वाक्य प्रासंगिक भी हैं और प्रेरणादायक भी—

जुरे हिन्दु मीरे, बहे खड्गधारं ।
मुखे मार मारं बहे सूर सारं ।।

तथा

हिन्दु म्लेच्छ अघाइ घायन।
नाचि नारद युद्ध चायन।।

पृथ्वीराज की नीति का उल्लेख करते हुए चन्द्रवरदायी इसे हिन्दुओं की जीत कहते हैं—

आज भाग चहुआन घर
आज भाग हिन्दुवान।

पराजय और क्षमादान के उपरान्त कृतघ्न मुहम्मद गोरी द्वारा पुनः आक्रमण का उल्लेख पृथ्वीराज के सेनापति चामुण्डराय के इन ओजपूर्ण शब्दों में किया गया है—

निर्लज्ज म्लेच्छ लज्जै नहीं, हम हिन्दू लजवान।

महाकवि भूषण ने भी इस देश के लोगों को हिन्दू (हिन्दुवान) तथा विदेशियों को तुर्क (मुसलमान) कहा है। छत्रपति शिवाजी की उपलब्धियों का उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा है—

राखी हिन्दुवानी, हिन्दुवान को तिलक राख्यौ।
अस्मृति पुरान राखे बेदबिधि सुनी मैं।।

गुरु तेग बहादुर ने औरंगजेब की चुनौती को स्वीकार करते हुए हिन्दू के नाम पर ही अपनी बलि चढ़ाई थी। 'सूर्यप्रकाश' में इस तथ्य का इन शब्दों में बखान किया गया है—

तिन ते सुन श्री तेग बहादुर, धर्म निबाहन विशेष बहादुर।
उत्तम मनियो धर्म हम हिन्दू, अति प्रिय को किन करो निकंदू।।

(सूर्यप्रकाश)

सिन्ध के महाराज दाहर, लाहौर और काबुल के महाराज जयपाल, और आनन्दपाल, दिल्ली के अधिपति पृथ्वीराज चौहान, राणा हम्मीर, महाराणा साँगा, महाराणा प्रताप, दुर्गादास राठौर, विजयनगर साम्राज्य के कृष्णदेव राय और रामराय, छत्रपति शिवाजी, वीर हकीकतराय, गुरुगोविन्दसिंह, बन्दा बहादुर, भाई मतिदास, महारानी लक्ष्मीबाई और राजाकुँवरसिंह जैसे वीर बलिदानियों और उनके असंख्य साथियों ने हिन्दू की आन, बान और शान के लिए ही अपना सर्वस्व बलिदान किया था।

उन सबका उद्देश्य हिन्दुस्तान को मुस्लिम और अंग्रेज आक्रान्ताओं से मुक्त कर यहाँ हिन्दू पाद पादशाही अथवा हिन्दू राज्य अथवा हिन्दवी स्वराज्य स्थापित करना था।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि हिन्दू शब्द का उद्गम भौगोलिक है और इसका अर्थ राष्ट्रवाचक है। अनेक शताब्दियों तक इसी नाम से हमारे पूर्वजों ने विदेशियों से लोहा लिया और हिन्दुस्तान को हिन्दू देश के रूप में प्रख्यात किया। इसी कारण हिन्दुत्व, हिन्दुस्तान के राष्ट्रवाद का परिचायक बन गया। आसिन्धु सिन्धु पर्यन्ते, सारे हिन्दुस्तान की विदेशी राज्य से मुक्ति और इसमें रामराज्य अथवा हिन्दू राज्य की स्थापना हमारे लम्बे स्वतंत्रता संघर्ष की प्रेरणा और उद्देश्य रहा। सिन्ध पर अरब आक्रान्ताओं का ७१२ ई० में अधिकार हो गया और लाहौर तक का पश्चिमी पंजाब १०२० ई० में हिन्दुस्तान से कटकर गजनी के इस्लामी (तुर्क) राज्य का अंग बन गया। इस प्रकार आज का पाकिस्तान १०२० ई० में पहली बार बना था। परन्तु हिन्दुओं ने कभी उसे स्थायी नहीं माना। मराठों के घोड़े पूना से चलकर सिन्धु नदी का पानी पीने सिन्धु के तीर तक पहुँचे और महाराजा रणजीतसिंह तथा हरिसिंह नलवा ने खैबर तक का इलाका पुनः जीतकर १०२० ई० का बना पाकिस्तान समाप्त कर दिया और हिन्दुस्तान की केसरी पताका फिर लाहौर, पेशावर और जमरूद पर फहरा दी।

अरब, तुर्क और मुगल आक्रान्ता हिन्दुस्तान में इस्लाम के रथ पर सवार होकर आए थे। उनका उद्देश्य इस्लाम फैलाना भी था। उन्होंने मुहम्मदी मज़हब के नाम पर हमारे मन्दिर तोड़े, पुस्तकालय जलाए और स्त्रियों, बच्चों और बूढ़ों पर भी बेपनाह अत्याचार किये। इस प्रकार पहले के विदेशी आक्रमणों से भिन्न यह एक विदेशी मजहब और बर्बर संस्कृति का आक्रमण भी था। उसका प्रतिरोध हिन्दुस्तान की भूमि के साथ-साथ उसकी आत्मा रूपी धर्म और संस्कृति की रक्षा के लिए भी था। फलस्वरूप इन आक्रान्ताओं ने इस प्रतिरोध को इस्लाम के विरुद्ध हिन्दू संस्कृति का प्रतिरोध भी माना। इस कारण कुछ विदेशी लेखकों ने इस संघर्ष को दो मज़हबों के अनुयायियों के बीच संघर्ष के रूप में पेश किया;

परन्तु यह उनकी भूल थी ! यह एक राष्ट्रीय समाज (जो मजहब और पूजाविधि की दृष्टि से अनेक मतों और पन्थों में बँटा हुआ था परन्तु जिसकी मूल संस्कृति और राष्ट्रीयता समान थी) का ऐसे विदेशी आक्रान्ताओं के विरुद्ध संघर्ष था जिनका उद्देश्य केवल लूटपाट करना और अपना राज्य स्थापित करना ही नहीं था अपितु अपने मजहब और उसके साथ जुड़ी हुई बर्बरता, असहिष्णुता और अनैतिकता को भी हिन्दुस्तान पर लादना और इसे एक इस्लामी राज्य बनाना था। यह एक लम्बा राष्ट्रीय संघर्ष था जिसमें विभिन्न पंथों और पूजाविधियों से युक्त राष्ट्रीय हिन्दू समाज ने विदेशी इस्लामवादी आक्रान्ताओं और उनके एजेंटों के साथ लगातार लोहा लिया।

इस्लामी आक्रान्ताओं और उनके एजेंटों के साथ इस लम्बे और खूनी संघर्ष ने हिन्दू समाज में हिन्दुत्व की चेतना उग्र की और इसे सर्वमान्य अर्थ में राष्ट्रभाव का रूप दिया। इस प्रकार हिन्दुत्व अथवा भारतीय राष्ट्रीयता को इसके सकारात्मक आधार के साथ-साथ विदेशी आक्रान्ताओं और उनके विदेशी राज्य के विरुद्ध साँझे संघर्ष का नकारात्मक आधार भी मिला।

इस संघर्ष में हिन्दू राष्ट्र को पूर्ण सफलता मिलने के पूर्व ही हिन्दुस्तान पर एक और विदेशी आक्रमण की काली छाया पड़ने लगी। अंग्रेजों द्वारा हिन्दुस्तान की सत्ता हथिया लेने के कारण हिन्दुस्तान और हिन्दू राष्ट्र के स्वतन्त्रता संघर्ष का एक नया अध्याय शुरू हुआ।

१८५७ का विद्रोह (जिसे वीर सावरकर ने अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम की संज्ञा दी है) ब्रिटिश शासकों के विरुद्ध नये स्वतन्त्रता-संघर्ष की पहली कड़ी था। विदेशी मुस्लिम शासक वर्ग के दिल्ली, लखनऊ इत्यादि में केन्द्रित एक भाग ने भी, जो अंग्रेजों के हाथों अपनी रही-सही सत्ता से वंचित हो जाने के कारण उद्विग्न था, इस नए संघर्ष के शुरू के दिनों में हिन्दू देशभक्तों और स्वतंत्रता-सेनानियों को थोड़ा-बहुत योगदान दिया। परन्तु वे देशभक्ति और राष्ट्रीय भावना से प्रेरित नहीं थे, इसलिए उनमें आदर्शवाद और उससे प्रेरित आत्मोत्सर्ग के भाव का अभाव था। फलस्वरूप बहादुरशाह जफर इत्यादि ने विफलता

की घड़ी में गिड़गिड़ाकर ब्रिटिश शासकों से क्षमा और जीवनदान माँगा। केवल तात्या टोपे, रानी लक्ष्मीबाई, राजा कुँवरसिंह और नानाराव पेशवा जैसे हिन्दू सेनानियों ने ही इस संघर्ष को अपने प्राणों के अन्तिम क्षणों तक देशभक्ति और राष्ट्र के प्रति कर्तव्य की भावना से जीवन्त रखा।

अंग्रेज शासकों ने (जो इतिहासवेत्ता भी थे) इस 'विद्रोह' के सभी पहलुओं पर गम्भीरता से विचार किया। उन्हें अपने राज्य को स्थायी बनाने की दृष्टि से इसकी सीखों और फलितार्थ को समझने में देर नहीं लगी। वे समझ गये कि उनकी राज्यसत्ता और भारतीय साम्राज्य के लिए खतरा केवल हिन्दू हैं जो शताब्दियों से विदेशी मुस्लिम राज्य के विरुद्ध स्वतन्त्रता-संघर्ष करते आ रहे हैं। वे यह भी भाँप गये कि आगे भी उनकी सत्ता को चुनौती हिन्दुओं की ओर से ही मिल सकती है। अतः उन्होंने इस खतरे का मुकाबला करने और अपने नवनिर्मित साम्राज्य की रक्षा और उसके हितों के पोषण के लिए सोच-समझकर नई नीति बनाई जिसके दो प्रमुख अंग थे।

इस नीति का पहला अंग मुस्लिम आक्रान्ताओं के वंशजों और उनके द्वारा हिन्दुओं में से बनाये गए मुसलमानों को अपने साथ मिलाना था। इस दृष्टि से उन्होंने इस्लामवाद के अनुयायियों की हिन्दुओं (जो उनके लिए मजहबी दृष्टि से काफ़िर थे) के प्रति अलगाव और विरोध के भाव को उजागर किया और उसे उग्र करके उसका लाभ उठाने का फैसला किया। सर जान स्ट्रेची ने, जो भारत के ब्रिटिश गवर्नर जनरल की मन्त्रि-परिषद् में वित्त मन्त्री थे, १८७४ में इस नीति को निम्न शब्दों में प्रतिपादित किया था —

"इन परस्पर विरोधी मतों (इस्लाम और हिन्दूवाद) के अनुयायियों का भारत में मौजूद होना हमारी राजनीतिक स्थिति को दृढ़ बनाने में बड़ा सहायक है। मुसलमानों का उच्च वर्ग (जिसके हाथ में कभी भारत की सत्ता थी) हमारे लिए शक्ति का स्रोत है। उससे हमें कोई हानि नहीं हो सकती। वे एक छोटा परन्तु बहुत सक्रिय और अपने राजनीतिक हितों की दृष्टि से जागरूक अल्पमत सम्प्रदाय है। उनके राजनीतिक हित हमारे

राजनीतिक हितों के साथ मेल खाते हैं।"

१६०६ में आगा खाँ के नेतृत्व में मुसलमानों के एक शिष्टमंडल का शिमला जाकर उस समय के ब्रिटिश वाइसराय लॉर्ड मिंटो से मिलना और मुसलमानों के भारत में विशिष्ट ऐतिहासिक महत्त्व के नाम पर विधान सभाओं और नौकरियों में अलग मतदान और आरक्षण की माँग करना और लार्ड मिंटो द्वारा उसे तुरन्त स्वीकार कर लेना इस सुविचारित ऐंग्लो-मुस्लिम गठजोड़ का सबसे महत्त्वपूर्ण परिणाम था। लेडी मिंटो ने उसी दिन अपनी डायरी में इसके महत्त्व को इन शब्दों में आँका था, "मेरे पति ने इस एक निर्णय के द्वारा भारत के छह करोड़ मुसलमानों को विद्रोही हिन्दुओं से सदा के लिए अलग कर दिया है।"

इस नीति का दूसरा अंग हिन्दू शब्द को इस्लाम के समकक्ष एक मज़हब का अर्थ देकर हिन्दुओं को मुसलमानों के समान हिन्दुस्तान में रहने वाले एक सम्प्रदाय का रूप देना और इस प्रकार इसे राष्ट्रबोधक संज्ञा से सम्प्रदाय बोधक संज्ञा बनाना था। मैकॉले द्वारा प्रतिपादित अंग्रेजी शिक्षा-प्रणाली को इस नीति को कार्यरूप देने का प्रभावी माध्यम बनाया गया। उच्च अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त शिक्षित हिन्दू इस नीति का सहज शिकार हुए। स्वर्गीय लाला हरदयाल के शब्दों में, इससे हिन्दू राष्ट्र में सामाजिक और मानसिक दासता पैदा हुई जो शारीरिक दासता से कहीं अधिक भयानक और स्थायी होती है।

हिन्दुत्व अथवा भारतीय राष्ट्रवाद की जड़ें खोखली करने और हिन्दू समाज में हीन भावना और अपने आपको असहाय समझने की प्रवृत्ति पैदा करने की दृष्टि से हिन्दू शब्द का यह अवमूल्यन अंग्रेज शासकों और उनके मानसपुत्रों का सबसे अधिक प्रभावी साधन सिद्ध हुआ। इसने हिन्दू समाज में हीन भावना पैदा कर दी और उसका अपने बल पर देश को स्वतन्त्र कराने का आत्मविश्वास हिला दिया। फलस्वरूप हर कीमत पर उन लोगों (जो अपने आपको अलग मुस्लिम राष्ट्र मानने लगे थे) को तुष्ट करने का प्रयत्न शुरू हुआ जिसके परिणामस्वरूप १६४७ में भारत खंडित हुआ और भारत की भौगोलिक सीमाओं के अन्तर्गत पाकिस्तान और बाद में बंगला देश रूपी इस्लामी राज्यों का उदय हुआ।

इतना ही नहीं वरन् विभाजन की विभीषिका के बाद भी कांग्रेस के नाम पर सत्ता में आया हिन्दू नेतृत्व अंग्रेजों द्वारा हिन्दू और मुसलमानों के दो मजहबों के रूप में समकक्ष रखने के कुचक्र से निकल न सका। खंडित भारत में इस्लामवाद और मुस्लिम समस्या का पुनरोदय और १९४७ के पूर्व जैसे हालात का फिर पैदा होना उसी का परिणाम है। अब केवल खंडित हिन्दुस्तान की एकता ही नहीं बल्कि उसकी सुरक्षा और राष्ट्रीय पहचान भी खतरे में पड़ गई है।

इसलिए अब यह आवश्यक हो गया है कि हिन्दू नाम के सही अर्थ और विस्तार को ठीक प्रकार समझकर उसका व्यापक प्रचार और उद्‌बोधन किया जाय। हिन्दुस्तान के हिन्दूपन अथवा हिन्दुत्व ने इसके राष्ट्रीय जीवन और पहचान को इतिहास के थपेड़ों और उतार-चढ़ाव के बीच कायम रखने में अति महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। इसलिए इस बात की भी आवश्यकता है कि हिन्दुत्व, स्वतन्त्र भारत के राष्ट्रीय जीवन और भारतीय राज्य के ढांचे में भी प्रतिबिम्बित हो। इस दृष्टि से हिन्दू, हिन्दू धर्म, हिन्दू समाज, हिन्दू संस्कृति और जीवन-पद्धति को सही रूप में समझना और उनकी विशिष्टता को तुलनात्मक और गुणात्मक दृष्टि से आंकना भी आवश्यक है।

धर्म और मजहब दो भिन्न परिकल्पनाएँ हैं। मजहब किसी एक पैगम्बर और पवित्र पुस्तक से जुड़ी हुई कुछ निश्चित और अपरिवर्तनीय धारणाओं और मान्यताओं से जुड़ा होता है। यह अपने पैगम्बर, अपनी पुस्तक और अपने मजहबी सिद्धान्तों को ही सत्य, सर्वश्रेष्ठ, प्रभु की दया और स्वर्गप्राप्ति का एकमात्र रास्ता मानता है। जो उस पुस्तक और पैगम्बर पर ईमान नहीं लाते उनको पथभ्रष्ट और काफिर समझता है जो न परमात्मा की दया के पात्र है और न उस मजहब के मानने वालों के प्रेम और भ्रातृभाव के। उन्हें अपने मजहब में लाना या उन्हें खत्म करना उस मानने वालों का परम कर्तव्य होता है। फलस्वरूप ऐसे मजहब एकांगी, अलगाववादी और अन्य मतों के प्रति असहिष्णु होते हैं। वे मानव जाति की एकता में विश्वास नहीं करते। उनका भ्रातृत्व और उनकी मानवता उस मजहब के मानने वालों तक सीमित रहती है। वे किसी

प्रकार की मतभिन्नता और अपने सिद्धान्त से अतिक्रमण सहज नहीं करते। यही कारण है कि अन्य मज़हब के ही नहीं, अपितु अपने मज़हब के अन्तर्गत आने वाले फिरकों के लोग भी एक-दूसरे से झगड़ते हैं और मारकाट करते हैं। इस्लाम के अन्तर्गत शिया और सुन्नियों की मारकाट और ईसाइयत के अन्तर्गत रोमन कैथोलिकों और प्रोटेस्टेंट लोगों के आपसी वैमनस्य और मारकाट का यही आधार है। आज के विज्ञान और तर्क के युग में भी संसार के विभिन्न भागों में मजहब के नाम पर होने वाली मारकाट, दंगों और युद्धों का भी यही कारण है।

धर्म मजहब से सर्वथा भिन्न है। दोनों में मौलिक अन्तर है। मज़हब मानव जाति को तोड़ता है, धर्म इसे जोड़ता है। धर्म मनुष्य की वह विशेषता है जो इसे पशुओं से भिन्न करती है। आहार, निद्रा, भय तथा मैथुन पशु और मनुष्य में समान हैं। मनुष्य में धर्म ही विशेष होता है—

आहार निद्रा भय मैथुनं च सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम्ः।
धर्माहि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीन पशुभिः समाना।।

यदि सभी लोग धर्म पर चलें तो न केवल मज़हब की आवश्यकता नहीं रहती अपितु राजा और राज्य भी अनावश्यक हो जाते हैं। भारतीय परम्परा और धर्मशास्त्रों के अनुसार एक समय था जब—

न राज्यं न च राजाऽसीव, न दण्डो न च दण्डिकः।
धर्मेसौव प्रजास्सर्वा रक्षन्तिस्म परस्परम् ।।

न तो राज्य था, न राजा, न दण्डनीय अपराधी और न दंड। तब धर्म के द्वारा ही सम्पूर्ण प्रजा एक-दूसरे की रक्षा करती थी।

इससे स्पष्ट है कि धर्म का अर्थ वह आचार-संहिता है जो मनुष्य और मानव समाज को विशिष्टता और स्थायित्व प्रदान करती है, उसे धारण करती है और उसके लिए स्तम्भ का कार्य करती है। धर्म का शाब्दिक अर्थ भी यही है। यह संस्कृत की धृ धातु से निकला है और इसकी व्याख्या की गई है—धारयते इति धर्मः। धर्म किसी पैगम्बर, सन्त, पुस्तक, पंथ अथवा क्षेत्र विशेष के साथ न जुड़ा होकर सार्वभौमिक होता है। यह सारी मानव जाति के लिए है और शाश्वत है। इसलिए इसे सनातन भी कहा जाता है।

धर्म के तत्त्व अथवा लक्षणों को मनु ने निम्न श्लोक में वर्णित किया है—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमन्द्रिय निग्रहः ।
धीः विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम् ।।

धर्म के ये दस लक्षण—धृति, क्षमा, दमन, चोरी न करना, शुद्धता, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध—ऐसे हैं जिनका पालन करना सर्वत्र सबके द्वारा और सदैव आवश्यक है, भले ही व्यक्ति का मजहब, पूजाविधि और अन्य मान्यताएँ कुछ भी हों। सबके लिए और सदा ग्राह्य और आचरण योग्य होने के कारण इन लक्षणों वाला धर्म सार्वभौमिक भी है और सनातन भी। उसमें किसी प्रकार की संकीर्णता और मतवादिता नहीं। यह सारी मानव जाति और सारे संसार के लिए समान रूप में हितकर और वांछित है।

क्योंकि धर्म के इन शाश्वत तत्त्वों का उल्लेख और प्रतिपादन पहले-पहल वेदों में मिलता है, इसलिए इस सनातन धर्म को वैदिक धर्म भी कहा जाता है।

बौद्ध मत के प्रणेता महात्मा बुद्ध और जैनमत के प्रणेता वर्द्धमान महावीर ने धर्म के इन दस लक्षणों के साथ अहिंसा को भी जोड़ा और उसपर विशेष बल दिया। इस प्रकार बौद्ध धर्म और जैन धर्म को सनातन वैदिक धर्म का ही परिवर्द्धित रूप कहा जा सकता है। उन्होंने मनु द्वारा प्रतिपादित धर्म के दस लक्षणों में से किसी को भी नकारा नहीं, केवल उनमें अहिंसा को जोड़कर उसे अपने समय की स्थिति के लिए और अधिक उपयुक्त बनाया।

हिन्दुस्तान के हिन्दू समाज ने इस सनातन धर्म और इसके परिवर्द्धित रूपों को पूर्णतया अपनाया। अन्य बातों में कई प्रकार की विविधता और विभिन्नताओं के बावजूद हिन्दू समाज ने इस आचार-संहिता और नैतिकता को अपने व्यक्तिगत और सामूहिक आचरण का आधार बनाया और अपने आपको इस सनातन धर्म के साथ पूरी तरह जोड़ लिया। इसलिए हिन्दुस्तान में इसे हिन्दू धर्म भी कहा जाने लगा। इस प्रकार यह हिन्दुस्तान का राष्ट्रधर्म बन गया जो इसके अन्तर्गत आने वाले सभी पंथों और

जातियों के लिए समान था और है।

अंग्रेज शासकों और उनके मानसपुत्रों ने अंग्रेजी में धर्म का अर्थ रिलीजन अर्थात् मजहब करके हिन्दू धर्म के विषय में अनेक भ्रान्तियों को जन्म दिया और अनेक गलत धारणाएँ फैलाईं। इसके पीछे उनकी एक निश्चित योजना भी थी। वे हिन्दू धर्म को इस्लाम मज़हब के समकक्ष रखकर हिन्दुस्तान के हिन्दू समाज को राष्ट्रीय समाज के आसन से हटाकर इस्लामवादियों की तरह एक सम्प्रदाय के रूप में पेश करना चाहते थे। इसमें उन्हें बहुत सफलता भी मिली। इसी कारण अनेक हिन्दू मनीषियों ने हिन्दुइज़म के स्थान पर हिन्दुत्व शब्द के प्रयोग पर बल देना शुरू किया ताकि उन भ्रान्तियों का निराकरण किया जा सके और हिन्दू को उसके राष्ट्रीय आसन पर आसीन किया जा सके।

हिन्दुत्व उस सनातन और विशिष्ट जीवन-पद्धति और सांस्कृतिक धारा का परिचायक है जिसके अन्तर्गत अनादिकाल से भारत में अनेक पन्थ, विभिन्न मत और पूजा-पद्धतियाँ साथ-साथ बनती और पनपती रही हैं। सनातन हिन्दू धर्म के मूल तत्त्वों और मान्यताओं में उनकी साँझी आस्था उनके शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व का आधार रही है।

हिन्दूइज़्म अथवा हिन्दुत्व की इस विशिष्टता को भारत के महान् दार्शनिक स्वर्गीय राष्ट्रपति डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने अपनी विख्यात पुस्तक 'हिन्दू व्यू ऑफ लाइफ' में बड़े सुन्दर और सरल शब्दों में व्यक्त किया है—"हिन्दुइज़म मुख्यतः एक जीवन-पद्धति है। यह चिन्तन और विचार के मामले में सबको पूरी छूट देती है परन्तु आचरण के मामले में यह सबको उस आचार-संहिता में बाँधती है जिसे हिन्दू धर्म कहा जाता है। कोई आस्तिक हो या नास्तिक, कोई सन्देहवादी हो या पलायनवादी, यदि वे उस संस्कृति और जीवन-पद्धति को अपनाते हैं, तो वे सभी हिन्दू हैं। हिन्दुइज़म मज़हबी एकात्मकता पर बल न देकर आध्यात्मिकता और नैतिक अथवा धार्मिक आचरण पर बल देता है। इसका आग्रह किसी विशेष पूजा-पद्धति या मतवाद पर न होकर श्रेष्ठ व्यवहार और नैतिक मूल्यों पर है। 'सत्यं वद, धर्मं चर' का उपदेश इसी सत्य का द्योतक है। वे सभी लोग जो उन नैतिक मूल्यों से (जो हिन्दू धर्म की विशेषताएँ हैं)

को अपनाने को तैयार हों, हिन्दुइज़्म की परिधि में आ सकते हैं। हिन्दुइज़्म कोई एक सम्प्रदाय या पंथ न होकर उन सब व्यक्तियों और पथों का समाहार है जो ठीक मार्ग को अपनाने और सत्य को ग्रहण करने को उद्यत हों।"

जहाँ तक इस्लामी और ईसाई जगत् द्वारा मान्य मतवाद और मज़हब का सम्बन्ध है, हिन्दुइज़्म यह मानकर चलता है कि मज़हब मन और आध्यात्मिक अनुभव के मामले में मतभेद और विभिन्न अनुभवों का होना स्वाभाविक है। हिन्दुइज़्म उस विश्वास को नकारता है जिसके अनुसार एक मज़हब के मानने वालों के बाग के पौधे तो परमात्मा द्वारा आरोपित हैं और दूसरे मज़हब वालों के बागों के पौधे शैतान ने लगाए हैं और जिन्हें हर कीमत पर नष्ट कर देना चाहिये। हिन्दुइज़्म सिद्धान्ततः इस बात को मानता है कि परमात्मा किसी का शत्रु नहीं। इसलिए हिन्दुइज़्म सभी प्रकार की पूजा-पद्धतियों और मतों को अपने अन्दर समाहित करता हुआ उनको ऊपर उठाने का प्रयत्न करता है। यह किसी विश्वास को जो उससे मेल नहीं खाता, तलवार के बल पर खत्म करने के बजाय उसे ज्ञान के प्रकाश से सुधारने का पक्षधर है।

फलस्वरूप हिन्दुइज़्म की प्रतिबद्धता किसी एक पैगम्बर, पुस्तक अथवा अपरिवर्तनीय मत के साथ न होकर धर्म के साथ है। यही इसमें और सेमेटिक मज़हबों—यहूदी मत, ईसाई मत और मोहम्मदी मत—में बुनियादी अन्तर है। वैष्णविज़्म, शैविज़्म, बुद्धिज़्म, जैनिज़्म, सिक्खिज़्म जैसे अनेक पंथ और सम्प्रदाय उस सांस्कृतिक धारा में समाहित हैं जिसे सामूहिक रूप में हिन्दुइज़्म, हिन्दुत्व और हिन्दू जीवन-पद्धति कहा जाता है। ये समय-समय पर विचारमान और विकासशील मानस की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उभरे हैं और उभरते रहेंगे। "इस प्रकार हिन्दुइज़्म एक गतिशील आन्दोलन है, रुका हुआ मानस नहीं। यह एक विकास क्रम है, उसका परिणाम नहीं। यह एक गतिमान परम्परा है कोई अपरिवर्तनीय इल्हाम नहीं।"

भारत की धरती में से उपजे इस पंथ अथवा मतसमूह जिसे 'हिन्दुइज़्म का साँझा मंडल—कॉमनवेल्थ ऑफ हिन्दुइज़्म'—भी कहा

जाता है, को जोड़ने वाली डोरी सनातन हिन्दू धर्म और उससे जुड़े हुए नैतिक मूल्यों और आचरण के प्रति साँझी आस्था है। समान के रूप में इस संघ की कुछ और भी मान्यताएँ हैं, जिनमें प्रमुख हैं, कर्म का सिद्धान्त, आत्मा की नश्वरता और पुनर्जन्म।

दूसरी साँझी कड़ी जो सभी हिन्दुओं को एक सूत्र में बाँधती है, वह है मानसरोवर से निकली सिन्धु और ब्रह्मपुत्र नदियाँ और समुद्र से घिरी हुई हिमालय से कन्याकुमारी तक फैली हुई हिन्दु भूमि के प्रति मातृवत् श्रद्धा और आस्था। यह विशाल और विविधतापूर्ण देश, इस देश के वासियों की चाह, उनका पंथ, जाति और भाषा कुछ भी हो, शारीरिक, भौतिक और आध्यात्मिक आवश्यकताएँ पूरी करता है और उनके अस्तित्व का आधार है।

इस प्रकार हिन्दू शब्द हिन्दुस्तान के उन सभी लोगों का, जो इसकी संस्कृति, परम्परा, इतिहास और जीवन-पद्धति के प्रति अपनत्व का भाव रखते हैं और इसे अपनी मातृभूमि और पुण्यभूमि मानते हैं, का साँझा नाम है।

वीर सावरकर ने हिन्दू शब्द के इस व्यापक अर्थ और विस्तार को अपने विख्यात श्लोक द्वारा प्रस्तुत किया था—

आसिन्धु सिन्धु-पर्यन्ता यस्य भारत भूमिका।
पितृभू पुण्यभूश्चैव स वै हिन्दुरितिस्मृतः॥

वे सभी भारतीय जिन्होंने हिन्दुत्व की भावना से प्रेरित होकर शताब्दियों तक विदेशी आक्रान्ताओं और शासकों के साथ संघर्ष किया, जिन्होंने इस देश के गौरव, स्वराज्य और स्वधर्म की रक्षा के लिए उच्चतम बलिदान दिये, जो हिन्दुस्तान की मुख्य राष्ट्रीय धारा और रीढ़ की हड्डी हैं, हिन्दू हैं। यह हिन्दुभूमि उनका जीवनस्रोत है और वे इस भूमि के सम्बल हैं। उनका भूतकाल, वर्तमान और भविष्य इसी भूमि से जुड़ा हुआ है। वे हिन्दुस्तान का राष्ट्रीय समाज हैं, बहुमत या फिरका नहीं। हिन्दुस्तान हिन्दू राष्ट्र है। राष्ट्र की परिकल्पना के वैज्ञानिक और वस्तुपरक विश्लेषण और उसके सन्दर्भ में हिन्दुस्तान और हिन्दू समाज को आँकने से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

: २ :

हिन्दू राष्ट्र

भारत के प्राचीन वैदिक साहित्य में वर्तमान अंग्रेजी शब्द 'नेशन' के लिए राष्ट्र शब्द प्रयुक्त हुआ है। यजुर्वेद में राष्ट्र और राष्ट्र के लक्षणों के सम्बन्ध में निम्न सूक्त मिलता है—

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शुरऽ-इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढान ड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो नऽओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ।।

यजुर्वेद २२-२२

इस सूक्त के अनुसार वह जनसमूह जो एक सुनिश्चित भूमिखण्ड में रहता है, संसार में व्याप्त और इसको चलाने वाले परमात्मा अथवा प्रकृति के अस्तित्व को स्वीकार करता है, जो बुद्धि को प्राथमिकता देता है, और विद्वज्जनों का आदर करता है और जिसके पास अपने देश को बाहरी आक्रमण और आन्तरिक, प्राकृतिक आपत्तियों से बचाने और सभी के योगक्षेम की क्षमता हो, वह एक राष्ट्र है।

अंग्रेजी भाषा के ऑक्सफोर्ड शब्दकोश में नेशन शब्द का अर्थ बताया गया है—**"वह विशिष्ट जाति अथवा जनसमूह जिसका उद्गम, भाषा, इतिहास अथवा राजनीतिक संस्थाएँ समान हों।"**

आज का संसार राष्ट्र राज्यों (nation states) का समूह है। राष्ट्रवाद उस भावना को व्यक्त करता है, जो मनुष्य को अपने राष्ट्र के लिए उच्चतम बलिदान, त्याग और शौर्य बल दिखाने के लिए प्रेरित करता है।

फलस्वरूप वर्तमान युग में यह शान्ति और युद्ध, दासता के पाश में बँधे हुए लोगों और क्षेत्रों की मुक्ति के नये राष्ट्र राज्यों की स्थापना और विभिन्न राष्ट्रीय घटकों का समावेश किए हुए साम्राज्यों के विघटन का सबसे बड़ा प्रेरक तत्त्व बन गया है। साम्यवादी जो कल तक राष्ट्र को एक सामन्ती या उच्चवर्ग की कल्पना मात्र समझकर इसे एक प्रतिक्रियावादी परिकल्पना कहकर इसका उपहास करते थे, उन्हें भी संसार के घटनाचक्र ने, जिसने उनके समान हितों के आधार पर संसार भर के श्रमिकों की एकता के नारे को बिल्कुल खोखला सिद्ध कर दिया है, राष्ट्रीयता और राष्ट्रवाद के महत्त्व और शक्ति को मानने के लिए बाध्य कर दिया है। कम्युनिस्ट रूस और कम्युनिस्ट चीन के बीच समान विचारधारा और शासनतन्त्र के बावजूद तनाव का मुख्य कारण उनका पृथक् राष्ट्रवाद और अपने-अपने राष्ट्रीय हितों के प्रति उनका अलग-अलग चिन्तन और आंकन है।

जिस प्रकार घर, ग्राम, जनपद और देश मानव के क्षेत्रीय दृष्टि से विकास की कड़ियाँ हैं, उसी प्रकार परिवार, कबीला अथवा उपजाति, जाति और राष्ट्र मानव के सामाजिक और राजनीतिक विकास की कड़ियाँ हैं। मनुष्य एक सामाजिक जीव है। अकेलापन उसकी प्रकृति के अनुकूल नहीं। मिलकर रहना भी रोटी की तरह उसकी एक नैसर्गिक आवश्यकता है। आम तौर पर उसका क्षेत्रीय अथवा भौगोलिक विकास और सामाजिक और राजनीतिक विकास साथ-साथ होता रहा है। परिवार के साथ घर, कबीले के साथ ग्राम और जनपद तथा कबीलों अथवा राष्ट्रीय जनसमूह के साथ देश अथवा राज्य के रूप में विशिष्ट भूखण्ड जुड़े हुए हैं। ज्यों-ज्यों छोटे गिरोहों, कबीलों, जातियों का भौगोलिक क्षेत्र बढ़ता गया, त्यों-त्यों बड़े गिरोह अथवा राष्ट्र के प्रति आस्था को अन्य आस्थाओं पर वरीयता मिलती गई। आज के युग में राष्ट्र और राष्ट्रीय राज्य उसमें सम्मिलित घटकों की आस्था और श्रद्धा के सबसे बड़े केन्द्र बन चुके हैं।

अन्य सामाजिक अध्ययनों की तरह राष्ट्र के सम्बन्ध में भी तात्त्विक और सैद्धान्तिक अध्ययन भी राष्ट्र रूपी इकाइयों के अस्तित्व में आ जाने और उनके द्वारा मानव इतिहास को दिशा देने में प्रभावी भूमिका अदा करने का क्रम शुरू होने के बाद ही प्रारम्भ हुआ। यह बात पश्चिमी

विद्वानों पर विशेष रूप में लागू होती है। यूरोप के विद्वानों ने राष्ट्र की अवधारणा और परिकल्पना के सम्बन्ध में चिन्तन और लेखन उस समय शुरू किया जब सारा पश्चिमी यूरोप राष्ट्र राज्यों में बँटने लगा और राष्ट्रवाद की भावना यूरोप के राजनीतिक इतिहास को चालना देने वाली सबसे अधिक बलवान और प्रभावी प्रेरणा बन गई। तबसे अनेक विद्वानों ने राष्ट्र की परिभाषा और राष्ट्र के मूल तत्त्वों की विवेचना की है।

प्राध्यापक हालकोम्ब के अनुसार, "राष्ट्रभावना एक सामूहिक भावना है जिसका आधार एक विशिष्ट क्षेत्र को अपना देश मानने वाले लोगों की आपसी सहानुभूति और अपनत्व का भाव होता है। सुख और दुःख तथा उत्थान और पतन की साँझी स्मृतियाँ इस भाव के पैदा करने में विशेष सहायक होती हैं।"

बरजेस के अनुसार, "राष्ट्र वह जनसमूह होता है जो एक विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्र में रहता हो, जिसकी भाषा और साहित्य समान हो और जिसके मन में सामूहिक सुख और दुःख, उचित और अनुचित की समान अनुभूति और कल्पना हो।"

गैटल के अनुसार, "राष्ट्र वह जनसमूह है जिसकी जाति, भाषा, पंथ या मज़हब, परम्परा और इतिहास साँझा हो। इन समानताओं के कारण जो एकता की भावना पैदा होती है वह उस जनसमूह को राष्ट्र के रूप में आपस में बाँधती है।"

इस प्रकार की परिभाषाओं और राष्ट्र सम्बन्धी चिन्तन के आधार पर राष्ट्र के लिए पाँच समानताएँ—समान देश, समान जाति, समान संस्कृति, समान भाषा और समाज मज़हब या पन्थ आवश्यक मानी जाने लगीं। किसी जनसमूह को राष्ट्र के रूप में मान्यता पाने के लिए इन समानताओं या साँझी बातों का होना अनिवार्य माना जाने लगा।

परन्तु संसार के विभिन्न राष्ट्रों के विकास के अनुभव ने यह सिद्ध कर दिया है कि उपर्युक्त समानताएँ और लक्षण किसी जनसमूह में राष्ट्र होने का भाव पैदा करने में सहायक तो हैं परन्तु उनमें से कई एक अनिवार्य नहीं। राष्ट्रीयत्व के भाव के उद्गम में सबसे अधिक महत्त्व एक राष्ट्र होने की दृढ़ इच्छा का होना है। यह दृढ़ इच्छा, साँझे भूतकाल, साँझी संस्कृति

और उपलब्धियों और साँझे उज्ज्वल भविष्य की आकांक्षा से पैदा होती हैं। इसी कारण रेनन ने मानव के हृदय में एक होने की अनुभूति और चेतना को राष्ट्रीयता का आधार मूल बताया है। यह आन्तरिक चेतना ही राष्ट्र की आत्मा होती है। इसका महत्त्व बाहरी समानताओं की अपेक्षा अधिक होता है।

ब्रिटेन के राजनीति शास्त्र के पंडित सर अरनसट बार्कर ने इस बात को और सुन्दर ढंग से कहा है। उन्होंने राष्ट्र की तुलना एक जीवित शरीर से की है जिसमें दो मूल तत्त्व होते हैं—एक आत्मा और दूसरा स्थूल भौतिक शरीर। राष्ट्र का भौतिक शरीर वह सुनिश्चित भूखण्ड होता है जिसके प्रति उसके लोगों में अपनत्व को, मातृभूमि होने की भावना होती है। और राष्ट्र की आत्मा वह साँझी संस्कृति, परम्पराएँ, इतिहास और स्मृतियाँ होती हैं जो उस राष्ट्र के घटकों को प्रेरणा देती हैं और उन्हें अन्य राष्ट्रों के घटकों से भिन्न करती हैं। जैसे जीवित व्यक्ति के लिए आत्मा और शरीर का होना अनिवार्य है इसी प्रकार राष्ट्र के लिए देश रूपी भूमि और संस्कृति रूपी आत्मा का होना अनिवार्य है।

कार्ल मार्क्स जैसे कुछ विचारकों ने राष्ट्र और राष्ट्रीयता के ऊपर दिए गए तत्त्वों के महत्त्व को तो माना परन्तु उन्होंने सामूहिक भावना के उद्रेक में आर्थिक और राजनीतिक कारणों को अधिक महत्त्व दिया है। परन्तु भूत और वर्तमान का अनुभव उनकी इस धारणा की पुष्टि नहीं करता। साँझे आर्थिक हित और राजनीतिक एकता राष्ट्र भावना को और बल तो प्रदान कर सकता है, परन्तु देश की भूमि और संस्कृति—शरीर और आत्मा—के प्रति आस्थाजनक एकता के भाव के अभाव में केवल आर्थिक हित और राजनीतिक एकता किसी जनसमूह को एक राष्ट्र नहीं बना सकते। हिन्दुस्तान में रहने वाले मुसलमानों के शेष हिन्दू समाज के साथ साँझे आर्थिक हित भी थे और देश में राजनीतिक एकता भी थी। इसके बावजूद देश की भूमि और आत्मा के प्रति उनके मन में अपनत्व का भाव न होने के कारण उनमें राष्ट्रीय भावना नहीं जग पाई और उन्होंने अपने आपको अलग राष्ट्र कहकर देश के विभाजन की माँग उठाई और भारत को खंडित किया।

राष्ट्र और राष्ट्रीयता के मूल तत्वों और लक्षणों की कसौटी पर हिन्दू समाज को कसने से हिन्दू राष्ट्र की कल्पना स्पष्ट हो जाती है। हिन्दुओं का एक साँझा भौतिक शरीर भी है और आध्यात्मिक और सांस्कृतिक परम्परा रूपी आत्मा भी है। उनका शरीर वह भूखण्ड है जिसे अति प्राचीन काल से भारत और हिन्दुस्तान के नाम से जाना जाता है। इस देश की सुनिश्चित भौगोलिक सीमाएँ हैं। संसार में बहुत कम ऐसे देश हैं जिन की भौगोलिक सीमाएँ इतनी स्पष्ट और सुनिश्चित हैं। इसके भौगोलिक मानचिह्न और सांस्कृतिक मान-बिन्दु सारे देश में फैले हुए हैं, और इनके लोगों के मनों में उनकी समान अनुभूति है। हिन्दुस्तान का सारा साहित्य और वाङ्मय इसकी सात पवित्र नदियों—सिन्धु, सरस्वती, यमुना, गंगा, नर्मदा, गोदावरी और कावेरी—सात पवित्र नगरों—मथुरा, माया (हरिद्वार), द्वारावती (द्वारका), अयोध्या, काशी, काँची और अवन्तिका (उज्जैनी) तथा सात पवित्र पहाड़ों—हिमालय, महेन्द्र, मलय, सह्य, सुक्तिमत, विन्ध्याचल और पणिपत्र के वर्णन और उल्लेखों से भरा हुआ है। यह पवित्र पर्वत, नदियाँ और नगर भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक फैले हुए हैं। इन पवित्र नगरों की तीर्थयात्रा करना और इन नदियों के जल में स्नान करना हिन्दुस्तान के लोगों की युगों से आकांक्षा रही है। इसके फलस्वरूप इसके जनसाधारण में भी देश की भौगोलिक और सांस्कृतिक एकता और देश की विशालता और विविधता की अनुभूति है। महात्मा बुद्ध, वर्द्धमान महावीर, आदि शंकराचार्य, गुरु नानक, महर्षि दयानन्द और स्वामी विवेकानन्द जैसे सन्तों और महापुरुषों ने अपने विहारों, पीठों, मठों और आश्रमों, मन्दिरों और गुरुद्वारों की स्थापना सारे देश में करके इस एकता के भाव और अनुभूति को स्थूल आधार देकर और दृढ़ किया। फलस्वरूप सारे हिन्दू मात्र के मानसपटल पर हिन्दुस्तान मातृभूमि और पुण्यभूमि के रूप में अंकित हो चुका है।

इस भौगोलिक और सांस्कृतिक एकता की अनुभूति का उनके राजनीतिक मानस पर भी प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। हिन्दुस्तान जैसे विशाल देश में राजनीतिक दृष्टि से अनेक राज्यों अथवा गणराज्यों का होना भी स्वाभाविक था। परन्तु देश के विचारकों और राजनीति के पंडितों

ने यह महसूस किया कि काश्मीर से कन्याकुमारी और सिन्धु से ब्रह्मपुत्र तक फैले हुए इस देश को राजनीतिक दृष्टि से भी एक सूत्र में बाँधना इसके राजनेताओं का वाँछित लक्ष्य होना चाहिए। इसीलिए उन्होंने सम्राट् तथा चक्रवर्ती साम्राज्य की कल्पना की और भारत के नरेशों में चक्रवर्ती सम्राट् बनने की महत्त्वाकांक्षा जगाई ताकि सारा देश राजनीतिक दृष्टि से भी एक सूत्र में बँध जाय।

यह ठीक है कि यह लक्ष्य पूरा करने में कठिनाइयाँ थीं और ऐसे थोड़े ही सम्राट् हुए जो सारे देश को राजनीतिक दृष्टि से एक सूत्र में बाँध पाए और देश की राजनीतिक एकता के स्वप्न को साकार कर पाये। परन्तु यह भी सत्य है कि यह स्वप्न और यह लक्ष्य हिन्दुस्तान के राजनेताओं को सदा प्रेरित करता रहा और समय-समय पर यह साकार भी होता रहा है।

देशभक्ति और राष्ट्रप्रेम का भाव भी हिन्दू मानस में अति प्राचीन काल से अंकित है। सम्भवतः हिन्दुस्तान में ही सबसे पहले देश को मातृभूमि के नाम से सम्बोधित किया गया और उसके प्रति माँ जैसा अनुराग जगाने का प्रयत्न किया गया। इस दृष्टि से महर्षि वाल्मीकि द्वारा रामायण में मर्यादा पुरुषोत्तम राम के मुख से कहा गया वाक्य—

अपि स्वर्णमयी लंका न मे रोचते लक्ष्मण।
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ॥

अर्थात्—हे लक्ष्मण, मुझे सोने की लंका में रुचि नहीं और मैं अपनी मातृभूमि को लौटना चाहता हूँ क्योंकि माता और मातृभूमि स्वर्ग से भी बड़ी होती है—राष्ट्र भावना की अत्यन्त सुन्दर अभिव्यक्ति है।

हिन्दुस्तान की भौगोलिक एकता के अहसास के साथ-साथ इस देश की सांस्कृतिक और जातीय एकता का भाव भी हिन्दू मानस में अति प्राचीन काल से अंकित है। संसार का कोई भी देश इस बात का दावा नहीं कर सकता कि उसके सभी लोग शुद्ध रूप में एक ही जाति अथवा नस्ल के हैं। हिन्दुस्तान पर भी यह बात लागू होतीं है। आज के हिन्दू समाज का ताना-बाना भी अनेक जातियों के लोगों के समावेश से बना है। उनमें से विदेशी उद्गम के लोग जैसे यूनानी, कुषाण, शक और हूण भी शामिल हैं। परन्तु यह भी सत्य है कि आर्य जाति और उसकी जीवन-पद्धति और संस्कृति

हिन्दू समाज में शामिल विभिन्न जातीय अंशों में उसी प्रकार व्याप्त हो चली है जिस प्रकार सारे ब्रिटेन के लोगों के जीवन में एंग्लो-सेक्सन जाति और उसकी संस्कृति व्याप्त है।

हिन्दू समाज के अन्तर्गत आने वाली अनेक जातियों और तत्त्वों की किसी समय अलग जीवन-पद्धति और संस्कृति रही होगी। परन्तु जब वे तत्त्व आर्य लोगों के सम्पर्क में आये तो वे वैदिक आर्य संस्कृति से प्रभावित हुए और समय पाकर यह संस्कृति और जीवन-पद्धति उन सब पर छा गई। इस क्रम में विभिन्न तत्त्वों, विशेष रूप से दक्षिण भारत के द्रविड़ तत्त्वों की देन से वैदिक आर्य संस्कृति और समृद्ध तथा व्यापक बनी। कालान्तर में आर्य और द्रविड़ संस्कृतियाँ इस प्रकार घुल-मिल गई कि उनमें विभेद करना सम्भव न रहा। इस प्रकार सारे हिन्दुस्तान और हिन्दू समाज की एक साँझी संस्कृति और जीवन-पद्धति का विकास हुआ।

बाद में जब यवन, शक, कुषाण, हूण इत्यादि विदेशी लोग पश्चिम की ओर से हिन्दुस्तान में आये तो हिन्दू समाज ने उनको आत्मसात् कर लिया उन सबका भारतीयकरण अथवा हिन्दूकरण इस प्रकार हुआ कि अब उन को हिन्दू समाज से भिन्न करना असम्भव हो गया है। इनकी तुलना यमुना इत्यादि गंगा की सहायक नदियों से की जा सकती है जिनका जल गंगा में मिलने के बाद गंगाजल बन जाता है और उनमें गंगाजल के सारे गुण आ जाते हैं।

हिन्दू समाज की मूलभूत सांस्कृतिक एकता की अभिव्यक्ति अनेक ढंगों से होती आई है। भारत के पवित्र नगरों, नदियों और पर्वतों की भौगोलिक स्थिति इस सांस्कृतिक एकता का सबसे प्रत्यक्ष और स्थूल प्रमाण है। इस एकता का आभास राजा और रंक तथा विद्वान् व अपठित लोगों को समान रूप में मिलता रहा है।

परन्तु इस सांस्कृतिक एकता का सबसे प्रभावी स्रोत और माध्यम संस्कृत और संस्कृत से अन्य भारतीय भाषाएं और उनका साहित्य है। संस्कृत सभी भारतीय भाषाओं को जोड़ने वाली साँझी कड़ी है। यह उनमें से अधिकांश की जननी भी है। दक्षिण भारत की कुछ भाषाओं का संस्कृत से स्वतन्त्र अस्तित्व रहा है, परन्तु उनमें भी संस्कृत से लिये गए तत्सम और

तद्भव शब्दों का अंश बहुत अधिक है।

वैदिक साहित्य के अतिरिक्त वाल्मीकि, व्यास और कालिदास इत्यादि मनीषियों द्वारा रचित संस्कृत के महान् काव्य नाटक और अन्य ग्रन्थ सारे हिन्दुओं की साँझी धरोहर हैं और सभी उनपर गर्व करते हैं। ये महान् लेखक तथा रामायण और महाभारत जैसी उनकी महान् कृतियाँ जाति-पंथ-भेद निरवेश सारे भारत की सांस्कृतिक धरोहर हैं। उनका अनुवाद भी भारत की सभी भाषाओं में हो चुका है।

हिन्दुस्तान में इस्लाम और ईसाईयत की तरह का कोई मज़हब कभी नहीं रहा इसलिए मज़हब के आधार पर मुस्लिम और ईसाई एकता जो इन मज़हबों के अवलम्बी शासकों द्वारा लादी जाती हैं, कभी नहीं रहीं। इस प्रकार का मज़हब, जो यह दावा करते हैं कि वही सच्चे हैं बाकी सब झूठे हैं, और परमात्मा की दया केवल उनके द्वारा ही प्राप्त हो सकती है, हिन्दू संस्कृति और परम्परा के सर्वथा विपरीत है। हिन्दू संस्कृति का आधार वेद का उद्घोष 'एकम् सद विप्राः बहुधा वदन्ति' है। इसके अनुसार परमात्मा एक है परन्तु विद्वान् लोग उसे भिन्न-भिन्न नामों से पुकारते हैं। हिन्दू संस्कृति की सार्वभौमिकता और सभी मत-मतान्तरों और उनके अनुयायियों के प्रति सहिष्णुता का यही आधार है।

फलस्वरूप भारत में पूजाविधियाँ सदा अनेक रही हैं परन्तु उन सब पूजाविधियों के बावजूद उनको अपनाने वालों की एक साँझी जीवन-पद्धति और जीवन-दर्शन रहा है। यह जीवन पद्धति देश के सभी भागों और इस देश में उपजे सभी पन्थों के अनुयायियों में सभी कालों में व्याप्त रही है। इस्लाम और ईसाईयत जैसे मजहबों को मानने वाले पश्चिम के लोगों द्वारा इसी साँझी जीवन-पद्धति और सांस्कृतिक धारा को सामूहिक रूप में हिन्दुइज़्म की संज्ञा दी जाती है। सैद्धान्तिक दृष्टि से समय और विज्ञान की कसौटी पर पूरे उतरने वाले कर्म और पुनर्जन्म के सिद्धान्त और भारत भूमि और उसकी संस्कृति के प्रति समान श्रद्धा का भाव हिन्दुइज़्म के अन्तर्गत आने वाले विभिन्न पन्थों के अनुयायियों को एक माला के फूलों के समान गूँथे हुए है। सर्वपन्थ समभाव अर्थात् सभी पन्थों और उनकी पूजा-पद्धति के प्रति समान भाव और उनके अनुयायियों के प्रति रवादारी तथा

'जियो औ जीने दो' के मानवीय व्यवहार में निष्ठा, हिन्दू संघ में सम्मिलित सभी पन्थों में समान रूप में विद्यमान है।

अध्यात्म, संस्कृति और पूजाविधियों के सम्बन्ध में वैदिक दृष्टिकोण की इस व्यापकता और ग्राह्यता के कारण हिन्दू समाज देश में आने वाले विदेशी तत्त्वों को बिना किसी दबाव व हल्ला-गुल्ला के आत्मसात् करती गई। यूनान से आया 'हेलियोडोरस' वैष्णव बन गया। कुषाण जाति का कनिष्क बौद्ध बन गया और हूण जाति का मेहरगुल शैव बन गया। ये सभी विदेशी तत्त्व हिन्दुइज़्म के समुद्र में सामाजिक और सांस्कृतिक दोनों दृष्टियों से खप गये।

सीरीयन, ईसाई और पारसी जो अपनी-अपनी पूजाविधि और मज़-हबी सिद्धान्तों से जुड़े रहे, वे भी शनैः-शनैः हिन्दू जीवन-पद्धति को अपनाकर हिन्दू समाज के साथ एकरूप होने लगे और हिन्दुस्तान के प्रति उनके मनों में भी गहरी आस्था पैदा हो गई। भारत उनसे इससे अधिक की अपेक्षा करता भी नहीं था। उसने उनकी पूजाविधियों के प्रति वही सहिष्णुता का रुख अपनाया जो भारतीय उद्गम की पूजा-विधियों के सम्बन्ध में रहा है।

इस प्रकार हिन्दुस्तान में एक प्रकार की धार्मिक एकता भी रही है। परन्तु इस एकता का आधार और शक्ति अध्यात्म सम्बन्धी विषयों में इसका लचीलापन है और मतवादिता के आधार पर एकरूपता के स्थान पर आत्मा और परमात्मा के मामले में सभी को छूट देने की परम्परा है। हिन्दुस्तान सभी पन्थों के अनुयायियों से कुछ नैतिक मूल्यों और व्यवहार संहिता का पालन करने की अपेक्षा अवश्य करता आया है। उनमें एक प्रमुख बात गौ और गौवंश की हत्या न करना है। जब पारसी लोग ईरान से इस्लामी धर्मान्धता से अपनी जान और मज़हब की रक्षा के लिए शरणार्थी बनकर भारत में आए तो उनपर यही एक शर्त लगाई गई थी जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया था।

सनातन, वैदिक हिन्दू धर्म की इस व्यापकता, सुहृदता और सहिष्णुता के कारण ही हिन्दू समाज न केवल विदेशी आक्रमणों के थपेड़े सह सका अपितु आक्रान्ताओं का भारतीयकरण अथवा हिन्दूकरण करके उन्हें अपने अन्दर समा भी सका।

पूर्वोक्त एकता के सूत्रों के दृश्य और अदृश्य प्रभाव के कारण हिन्दुस्तान के लोगों में भारत और भारतीय संस्कृति के प्रति जो आस्था है वही उनकी सामूहिक चेतना और राष्ट्रीयता का आधार है। इसने उनके मनों में यह भाव पैदा किया कि अपनी उज्ज्वल परम्पराओं और मानवीय तथा सार्वभौमिक दृष्टिकोण के कारण भारत का यह उत्तरदायित्व है कि वह शेष संसार में भी इस मानवीय धर्म और संस्कृति का प्रचार और प्रसार करे और जगद्गुरु की भूमिका निभाए। मनु ने भारत की संस्कृति की इस चेतना और उसमें निहित भाव को इस ओजपूर्ण श्लोक द्वारा व्यक्त किया—

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादाग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रेन शिक्षेण पृथिव्यां सर्वमानवाः ।।

भारत की इस सांस्कृतिक धारा और उसके आधार पर सामूहिक चेतना, जो राष्ट्रवाद की भावना का आधार होती है, का उद्गम ऋग्वेद है। महान् जर्मन विद्वान् प्रो० लुडविग के अनुसार हिन्दुस्तान का सारा साहित्य और परम्परा ऋग्वेद के अस्तित्व को स्वीकार करती है और उसे भारतीय संस्कृति का आधार-बिन्दु मानता है। यह सांस्कृतिक धारा लगातार बढ़ती गई, इसका प्रसार होता गया और भारतीय मनीषी इसका संसार भर में प्रचार और प्रसार करना अपना कर्तव्य समझने लगे। इस्लाम के उदय से पूर्व अरब उपद्वीप भी इस संस्कृति की लपेट में आ चुका था और शिव इत्यादि भारतीय देवी-देवता अरबों के भी इष्टदेव बन चुके थे।

काश्मीर से कन्याकुमारी तक फैले इस विशाल देश को, जिसकी भौगोलिक और सांस्कृतिक एकता का एहसास और अनुभूति भारतीय एकता का आधार है, राजनीतिक दृष्टि से एक सूत्र में बाँधना आसान नहीं था। देश की विशालता और संचार साधनों का अभाव इसका बड़ा कारण था। तो भी यह आश्चर्य की बात है कि अति प्राचीनकाल से इस देश के सभी विद्वान् और राजनेता इसकी राजनीतिक एकता की कल्पना करते आए हैं और उसे साकार रूप देने की प्रेरणा देते रहे हैं और उस दिशा में प्रयत्न करते रहे हैं। चक्रवर्ती राज्य की अवधारणा और सारे देश को एकछत्र के अधीन लाने की कामना इस देश की राजनीतिक चेतना का सदा अनिवार्य अंग रही है।

जब भारत अनेक स्वतन्त्र राज्यों में बँटा रहता था, तब भी विभिन्न राज्यों के शासकों में इस बात का अहसास रहता था कि वे सभी राज्य एक ही देश और राष्ट्र के अन्तर्गत आते हैं और उन सबकी धर्म, संस्कृति और परम्पराएँ समान हैं। यही कारण था कि आपसी युद्धों में वे इस बात का ध्यान रखते थे कि उन युद्धों के कारण देश की समान संस्कृति, धर्मस्थानों और समाज पर किसी प्रकार का आघात न हो। विदेशी आक्रान्ताओं का मुकाबला करने के लिए वे यदा-कदा इकट्ठे होकर भी लड़ते थे, परन्तु इसके बावजूद यह एक वास्तविकता है कि उस समय राष्ट्रीय चेतना राजनीतिक स्तर की अपेक्षा सांस्कृतिक स्तर पर ही अधिक मुखर थी।

राष्ट्र और राज्य में अन्तर इस स्थिति का कारण भी था और परिणाम भी। वर्तमान युग में राष्ट्र और राज्य का मेल एक वास्तविकता है। यही 'नेशन स्टेट' अर्थात् राष्ट्रीय राज का आधार है। सांस्कृतिक स्तर पर राष्ट्र का अस्तित्व राज्य के बिना खतरे में पड़ जाता है। यहूदी एक राष्ट्र थे, परन्तु इस्राइल रूप यहूदी राज्य के पुनरोदय से पहले वे संसार भर में उत्पीड़ित थे। हिन्दुस्तान में सांस्कृतिक आधार पर राष्ट्र की कल्पना अति प्राचीन है परन्तु यहाँ राजनीतिक चेतना की कमी रही है और आज भी है। इसके दुष्परिणाम हिन्दुओं को समय-समय पर भुगतने पड़े हैं।

सामूहिक राजनीतिक चेतना के अभाव में भी भारतीय हिन्दू समाज की संस्कृति और भौगोलिक आधार पर खड़ी राष्ट्रीय चेतना ने इसे लम्बे काल तक अपनी विशिष्ट पहचान बनाए रखने, विदेशी आक्रान्ताओं का मुकाबला करने और उनका भारतीयकरण अथवा हिन्दूकरण करके उन्हें राष्ट्रीय आधार में लाने की क्षमता प्रदान की। इस प्रकार इस्लाम के भारत में प्रवेश के पहले जितने भी विदेशी तत्त्व देश में आए वे कालान्तर में भारतीय हिन्दू राष्ट्र का अमिट अंग बन गए।

आठवीं शताब्दी से हिन्दुस्तान में मुस्लिम अरबों, तुर्कों और मुगलों के प्रवेश के क्रम से एक नई स्थिति पैदा हो गई। ये सभी विदेशी आक्रान्ता इस्लाम के रथ पर सवार हो कर आए। इस्लाम एक अनुदार, असहिष्णु, और बर्बरतापूर्ण विस्तारवादी राजनीतिक विचारधारा है। इसका अध्यात्मवाद से कोई सम्बन्ध नहीं। हिन्दुस्तान में प्रवेश करने से पहले यह मिस्र,

ईरान और स्पेन जैसे प्राचीन संस्कृति वाले देशों को हस्तगत कर चुका था। इसके संस्थापक हज़रत मोहम्मद हिन्दुस्तान को भी इस्लामी साम्राज्य के अन्तर्गत लाने में विशेष रुचि रखते थे। इस्लाम के विख्यात पण्डित डॉ० नसरुद्दीन कमाल ने, जो अब आचार्य जीवन मित्र के नाम से अपने पुरखाओं के घर लौट चुके हैं, आर्यसमाज दीवानहाल, दिल्ली के उत्सव में भरी सभा में बताया था कि मोहम्मद साहब ने अपने अनुयायियों को कहा था कि यदि वे जन्नत में जाना चाहते हैं तो उन्हें हिन्दुस्तान को विजय करके वहाँ के काफिरों को खत्म करना चाहिए और ऐसी स्थिति पैदा करनी चाहिए कि वहाँ पर भगवा झण्डा न फहराए।

'मिल्लत' और 'कुफर' तथा 'दार-उल-इस्लाम' और 'दार-उल-अरब' इत्यादि इस्लाम की सैद्धान्तिक परिकल्पनाओं के कारण मुस्लिम मतावलम्बियों का अमुस्लिमों के साथ कहीं भी बराबरी के आधार पर शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व सम्भव नहीं। इस्लाम के कर्णधारों के अनुसार सभी मुसलमानों का यह मजहबी कर्तव्य है कि या तो वे गैर-मुसलमानों को मुसलमान बनाकर उन्हें 'मिल्लत' यानी मुस्लिम बिरादरी का अंग बनाएँ या उनका सर्वनाश कर दें। बाद में जब उन्होंने देखा कि उनके द्वारा विजय किये गए अनेक देशों के बहुत से लोग किसी कीमत पर भी मुसलमान बनने को तैयार नहीं और उन सबको मार डालना सम्भव नहीं तो मुस्लिम अधिकृत देशों में अमुस्लिमों को जिम्मी के रूप में रहने की अनुमति दी गई। इन जिम्मियों को जज़िया नामक विशेष टैक्स देने के अतिरिक्त अनेक प्रकार की अपमानजनक शर्तों को मानना पड़ता था जिनके कारण उनकी स्थिति गुलामों से भी बदतर हो जाती थी।

सिन्ध के मुस्लिम विजेताओं को भी शीघ्र ही यह पता लग गया कि श्रेष्ठ संस्कृति और सभ्यता वाले हिन्दुओं को सामूहिक रूप में मुसलमान बनाना सम्भव नहीं, इसलिए जिम्मी के रूप में जीवित रहने देने का अपवाद वहाँ पर भी लागू किया गया। तीन सौ वर्ष बाद जब तुर्क मुस्लिम उत्तर-पश्चिम की ओर से हिन्दुस्तान में आये तो उनको भी ऐसी ही स्थिति का सामना करना पड़ा। वर्तमान अफ़गानिस्तान, पख्तूनिस्तान और पंजाब के अनेक हिन्दू बलात् मुसलमान बना लिये गए, कुछ मार दिये गए और कुछ

को जिम्मी के रूप में रहने दिया गया। उनमें से बहुत से अपने धर्म और जान बचाने के लिए पश्चिम की ओर या पूर्व में भारत के अन्य भागों में चले गए। सारे यूरोप में फैले हुए 'जिप्सी' इस क्षेत्र से निकले हिन्दुओं की ही सन्तान हैं।

इन इस्लामी आक्रान्ताओं के कारण हिन्दू राष्ट्र के सामने एक कठिन चुनौती उपस्थित हो गई। पहले तो हिन्दू विचारकों ने इन आक्रान्ताओं का भी भारतीयकरण अथवा हिन्दूकरण करने का प्रयत्न किया। देवल स्मृति नाम की एक नई स्मृति लिखी गई जिसमें बलात् मुसलमान बनाए गए और धर्म-भ्रष्ट किये गए हिन्दुओं को पुनः अपने धर्म में लाने के लिए उपयुक्त विधि-विधान बताए गए।

परन्तु उन्हें शीघ्र ही इस बात का अहसास हो गया कि जबतक राज-नीतिक सत्ता मुसलमानों के हाथ में है, मुसलमानों का भारतीयकरण और बलात् मुसलमानों को वापस अपने पुरखाओं के धर्म में लाना सम्भव नहीं। मुसलमान बनने से इन्कार करने पर अनेक प्रकार की यातनाएं दी जाती थीं और जो एक बार मुसलमान बनकर वापस अपने घर लौटना चाहे उसके लिए मृत्युदण्ड था। तत्कालीन मुस्लिम इतिहासकारों और लेखकों ने मुस्लिम शासकों द्वारा हिन्दुस्तान को भी ईरान और मिस्र की तरह मुसलमान बनने के लिए अपनाए गए तरीकों का रोमांचकारी वृत्त दिया है, परन्तु वे दो कारणों से अपने उद्देश्य में सफल न हो पाये।

पहला कारण था हिन्दुओं द्वारा उनकी दृष्टि से अप्रत्याशित सशस्त्र प्रतिरोध। उन्होंने शीघ्र ही यह समझ लिया कि ईरान या मिस्र की तरह किसी एक युद्ध में हिन्दुओं को हरा देने से वे हिन्दुस्तान और हिन्दुओं के भाग्यविधाता नहीं बन सकते। लम्बे मुस्लिम आक्रमण और राज्यकाल में एक वर्ष भी ऐसा नहीं बीता होगा जब हिन्दुओं ने अपना सशस्त्र प्रतिरोध बन्द किया हो। फलस्वरूप मुस्लिम सत्ता अकबर के समय तक कुछ बड़े नगरों और सेना शिविरों से आगे बढ़कर भारत के देहातों और अन्दर के इलाकों तक न पहुँच सकी। अकबर भारत का पहला विदेशी मुस्लिम शासक था जिसका बहुत-कुछ भारतीयकरण हुआ था। इसी कारण उसने इस्लाम की धर्मान्धता और असहिष्णुता के स्थान पर सर्वपंथ समभाव की

हिन्दू परम्परा अपनाई और बहुत से राजपूत तथा अन्य हिन्दुओं का विश्वास सम्पादन कर सका।

दूसरा कारण वह सुरक्षात्मक कवच था जो हिन्दू विचारकों ने नई स्थिति का मुकाबला करने के लिए हिन्दू समाज को दिया। हिन्दू समाज अभी तक हर प्रकार के विदेशियों को आत्मसात् करने के लिए विख्यात था। अब इसने अपने आपको मुसलमानों से अलग-थलग रखने की नई नीति अपनाई। मुसलमानों द्वारा अपनाए गए जंगली और अमानवीय तरीकों के कारण हिन्दू समाज ने उन्हें म्लेच्छ और यवन की संज्ञा दी और उन्हें भ्रष्ट और त्याज्य घोषित किया। जन-जन के मन में यह भाव पैदा किया गया कि निम्न-से-निम्न वर्ग का हिन्दू भी ऊँचे-से-ऊँचे मुसलमान से श्रेष्ठ है। इसलिए मुसलमानों के लिए हिन्दुओं को मुसलमान बनाना बहुत कठिन हो गया और हिन्दू समाज और हिन्दुस्तान का इस्लामीकरण न हो सका।

अनेक मुसलमान लेखकों और इतिहासकारों ने हिन्दुस्तान में इस्लाम की इस विफलता का मातम किया है। उर्दू के विख्यात कवि हाली की ये पंक्तियाँ—

दीने हजाजी का बेबाक बेड़ा,
किये पार जिसने सातों समुन्दर,
जो जेहू में अटका न सेहु में अटका
वह आकर दहाना के गंगा में डूबा।

इसी निराशा को व्यक्त करती हैं।

परन्तु इस सुरक्षात्मक कवच के बावजूद शारीरिक, राजनीतिक और आर्थिक दबाव के बल पर मुस्लिम शासक कुछ हिन्दुओं को मुसलमान बनाने में सफल हुए। परन्तु ऐसे नव-मुस्लिमों पर इस्लाम का प्रभाव केवल सतही रहा। उन्होंने अपनी परम्परागत जीवन-शैली और रीति-रिवाज बनाए रखे। इस प्रकार के नव-मुस्लिम राष्ट्रीय हिन्दू-समाज और विदेशी मुस्लिम शासक वर्ग के बीच का पुल का काम करने लगे। मुस्लिम शासक वर्ग भी हिन्दू जीवन-पद्धति से प्रभावित होने लगा। इस प्रकार कुछ हद तक उनका हिन्दूकरण भी होने लगा। हिन्दी भाषा, हिन्दू संगीत और कला तथा हिन्दू

साहित्य का उनपर भी प्रभाव पड़ने लगा। विदेशी मुस्लिमों का भारतीयकरण रहीम, रसखान, मलिक मुहम्मद जायसी जैसे कवियों और लेखकों की कृतियों में झलकने लगा। कवयित्री ताज का यह उद्गार—

नन्द के कुमार कुरबान तेरी सूरत पर
हों तो तुरकानी, हिन्दुवानी हो रहूँगी मैं।

इसका एक उदाहरण है।

परन्तु मुल्लाओं के लिए मुसलमानों का यह भारतीयकरण बड़ा गुनाह और कुफ़र था। उन्होंने मुसलमानों के भारतीयकरण और हिन्दू समाज के साथ एकरस होने के क्रम को तारपीड़ो करने का हर सम्भव प्रयत्न किया। उन्होंने लगातार मुस्लिम शासकों पर दबाव डाला कि वे राजसत्ता का प्रयोग हिन्दुओं को दबाने, उन्हें बलात् मुसलमान बनाने और मुसलमानों के भारतीयकरण को रोकने के लिए करें। अधिकांश मुस्लिम शासक उनसे दबते थे। अकबर अपवाद-मात्र था। अकबर के काल में भी मुल्लाओं और शासक वर्ग का हिन्दुओं के प्रति जो दृष्टिकोण था, उसकी एक झलक अकबर ने एक बड़े मनसबदार मुल्ला बदायूनी के हल्दीघाटी के युद्ध क्षेत्र में एक मुसलमान सैनिक को दिये गए उत्तर में मिलती है। जब महाराणा प्रताप ने आगे बढ़कर मुगल सेना के सेनापति राजकुमार सलीम पर सीधा आक्रमण किया तब उनके राजपूत सैनिकों और मुगल सेना के राजपूत सैनिकों में भेद करना कठिन हो गया। इसपर एक मुस्लिम सैनिक ने मुल्ला बदायूनी से पूछा कि वह अपने और प्रताप के राजपूत सैनिकों में भेद कैसे करें ? मुल्ला बदायूनी ने उसे उत्तर दिया कि अन्धा-धुन्ध मारो। जो कोई भी मरेगा, राजपूत ही होगा और उससे इस्लाम का तो लाभ ही होगा।

यही कारण था कि अकबर का प्रयोग अधिक देर तक नहीं चल सका। अकबर की मृत्यु के बाद मुस्लिम धर्मान्धता फिर तेजी से उभरने लगी और औरंगजेब के काल में अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गई। जब औरंगजेब ने हिन्दू आस्थाओं और सांस्कृतिक मानचिह्नों पर सीधा प्रहार शुरू किया तब उसकी तीव्र प्रतिक्रिया हुई। देश भर में हिन्दू-विद्रोह भड़क उठा जिसने मुग़ल साम्राज्य को जड़ से उखाड़ फेंका। पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने इस

स्थिति का विश्लेषण अपनी पुस्तक 'डिस्कवरी ऑफ इण्डिया' में इन शब्दों में किया है—

"विदेशी मुस्लिम आक्रान्ताओं और हिन्दुओं के बीच लम्बे काल तक चलने वाले संघर्ष के साथ-साथ मुसलमानों के भारतीयकरण और राष्ट्रीय जीवनधारा में आने का क्रम भी चलता रहा। अकबर हिन्दुओं द्वारा विदेशियों को आत्मसात् करने की प्राचीन परम्परा का एक नमूना बन गया क्योंकि उसने अपने-आपको हिन्दुस्तान के साथ एकरूप कर लिया, इसलिए हिन्दुओं ने भी उसे अपनाया और उसे सहयोग दिया। जबतक उसके उत्तराधिकारियों ने उसकी नीति और भारतीयकरण के क्रम को जारी रखा तबतक मुग़ल साम्राज्य फलता-फूलता रहा। परन्तु जब उन्होंने उससे मुँह मोड़ लिया तब उनका साम्राज्य ध्वंस हो गया। देश में नए राष्ट्रीय आन्दोलन शुरू हुए। वे इतने प्रबल तो नहीं थे कि स्थायी रूप ले सकते परन्तु उन्होंने मुग़ल साम्राज्य को तो खत्म कर ही दिया।"

मराठों, राजपूतों और सिक्खों के द्वारा चलाये गए इन राष्ट्रीय आन्दोलनों के कारण पंजाब और काश्मीर सहित हिन्दुस्तान का एक बड़ा भाग विदेशी मुस्लिम दासता से मुक्त हो गया। फलस्वरूप इस्लाम के प्रचार का राजनीतिक आधार समाप्त हो गया। तब बहुत से नव-मुस्लिम यह महसूस करने लग पड़े कि अब उन्हें मुसलमान बने रहने का कोई लाभ नहीं। उनमें अपने पुरखाओं के धर्म व संस्कृति को फिर से अपनाने की लालसा पैदा होने लगी। काश्मीर तथा देश के कुछ अन्य भागों में उन्होंने सामूहिक रूप में वहाँ के हिन्दू शासकों से प्रार्थना की कि उनका पैतृक हिन्दू समाज में पुनः समावेश कर लिया जाय। परन्तु लम्बे काल की दासता के कारण हिन्दू समाज की गतिमानता और समय के साथ अपने आपको ढालने की क्षमता क्षीण हो चुकी थी। हिन्दू समाज के नेतागण, विशेष रूप में ब्राह्मण वर्ग इस बात को न समझ सका कि सुरक्षात्मक कवच अपनाने वाली स्थिति बदल चुकी है और अपने घर से निकलकर मुसलमान बने बन्धुओं को पुनः अपने घर लाने का समय आ चुका है। हो सकता है कि कुछ समय बाद वे परिवर्तित स्थिति को समझ जाते और मुसलमानों के भारतीयकरण का क्रम शुरू हो जाता। परन्तु ऐसा होने से पहले देश की सत्ता विदेशी

अंग्रेजों के हाथ में चली जाने के कारण एक नई विपरीत स्थिति पैदा हो गई।

सन् १८५७ के असफल स्वतन्त्रता संग्राम से अंग्रेज यह समझ गए कि उनके भारतीय साम्राज्य को जब कभी खतरा होगा, हिन्दुओं से होगा। इसलिए उन्होंने मुसलमानों के भारतीयकरण के क्रम को रोकने और उन्हें अपने साथ मिलाने की नीति अपनाई। यह कहना गलत है कि अंग्रेजों ने मुस्लिम समस्या पैदा की। मुस्लिम समस्या तो हजार वर्ष पुरानी है। यह उस दिन शुरू हुई जब भारत के कुछ भाग पर विदेशी मुस्लिम आक्रान्ताओं ने अधिकार कर लिया। अंग्रेजों ने इस समस्या का अपने हित में उपयोग करने का फैसला किया। इस हेतु उन्होंने मुसलमानों की धर्मान्धता और पृथक्वादिता की भावना को बढ़ावा देना शुरू कर दिया।

अंग्रेज अपनी चाल में शायद सफल न होते यदि मैकॉले के मानसपुत्र कुछ पढ़े-लिखे हिन्दू, जिनको उन्होंने १८८५ में इण्डियन नेशनल कांग्रेस के रूप में संगठित किया था, उनका खेल न खेलते। हिन्दुओं के इस वर्ग ने अंग्रेजों के इस कुप्रचार को कि हिन्दुस्तान कभी एक राष्ट्र नहीं रहा और कि हिन्दू भी मुसलमानों के समकक्ष भारत में रहने वाला एक मजहबी सम्प्रदाय मात्र है और कि भारत में एक नए मिले-जुले राष्ट्र का निर्माण मुस्लिम लीग के साथ, जिसे उन्होंने भारत के मुसलमानों की एकमात्र प्रतिनिधि संस्था माना, सौदेबाजी के आधार पर तालमेल से ही हो सकता है, न केवल स्वीकार किया अपितु वे उस कुप्रचार के सबसे बड़े प्रचारक बन गए।

सन् १९१६ में लखनऊ में हुआ कांग्रेस मुस्लिम लीग समझौता, जिसके द्वारा कांग्रेस ने ब्रिटिश सरकार की मुसलमानों के लिए पृथक् मतदान के फैसले को स्वीकृति दे दी, मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति और मुस्लिम लीग के साथ सौदेबाजी की दिशा में पहला पग था।

सन् १९२० में लोकमान्य तिलक के निधन के बाद गांधीजी के कांग्रेस के सर्वोच्च नेता के रूप में उभरने के बाद कांग्रेस इस घातक रास्ते पर सरपट दौड़ने लगी। गांधीजी का इतिहास का ज्ञान न के बराबर था। वे न केवल भारतीय हिन्दू राष्ट्रीयता के उन मूल स्रोतों से अनभिज्ञ थे जिनके

कारण हिन्दू राष्ट्र शताब्दियों तक मुस्लिम आक्रान्ताओं के साथ सफल संघर्ष कर सका, अपितु उन्हें इस्लाम के मूल सिद्धान्तों और उनके व्यावहारिक रूप की भी कोई जानकारी नहीं थी। उनका इस्लाम का अनुभव गुजरात के नव-मुस्लिम बोहरों और खोजों तक सीमित था जो तबतक केवल नाम के ही मुसलमान थे।

गांधीजी द्वारा खिलाफत आन्दोलन को अपनाना एक भयानक भूल थी। टर्की के सुलतान को अंग्रेज इस्लाम का खलीफा स्वीकार करें या न करें—इसका हिन्दुस्तान के स्वतन्त्रता आन्दोलन से कोई सम्बन्ध नहीं था। इस आन्दोलन के कारण मुल्ला भारत के नव-मुस्लिमों में इस्लामी मतान्धता और राष्ट्र के बाहर आस्था का भाव जगा सके और उनमें भारतीय राष्ट्रीयता से भिन्न इस्लामी राष्ट्रीयता का भाव जगा पाये। इस आन्दोलन की प्रेरणा 'मिल्लत' का सिद्धान्त था जिसके अनुसार संसार के सारे मुसलमान—उनका देश चाहे कोई भी हो—एक बिरादरी हैं और जो मुसलमान नहीं वे पराये हैं, चाहे वे अपने देशवासी और सहोदर भाई भी क्यों न हों। इसके अनुसार मुसलमानों के लिए 'मिल्लत' के नेता के रूप में खलीफा के प्रति आस्था देश के प्रति आस्था से पहले आती है।

खिलाफत आन्दोलन, जिसका सारा खर्च और संगठन का भार कांग्रेस और उसके हिन्दू समर्थकों ने उठाया, के कारण देश के सुदूर भागों में बसने वाले अधकचरे नव-मुस्लिमों में भी यह भाव जगा कि उनकी पहली आस्था इस्लाम और उसके खलीफा के प्रति है और कि अंग्रेज ईसाई हैं इसलिए काफिर हैं और उनके विरुद्ध संघर्ष करना 'ज़िहाद' है और पुण्य का काम है।

इसके दो खतरनाक परिणाम निकले। प्रथम, मुसलमानों के मनों में राष्ट्रीय भावना के स्थान पर इस्लामी भावना जड़ जमाने लगी, जिससे उनके भारतीयकरण का काम ठप्प हो गया। दूसरे, उनका नेतृत्व मोहम्मद अली और अबुल कलाम आज़ाद जैसे मौलानाओं के हाथ आ गया। ज्यों-ज्यों मुसलमानों पर इन मुल्लाओं का प्रभाव बढ़ने लगा, उनकी भारत और भारतीयता के प्रति आस्था कम होने लगी। मुसलमानों में पृथक्वादिता बढ़ने लगी। वे समझने लगे कि यदि ईसाई अंग्रेज काफ़िर हैं तो मूर्तिपूजक

हिन्दू उनसे बड़े काफ़िर हैं। जब कमालपाशा ने तुर्की पर अधिकार करके वहाँ से सुल्तानशाही ही खत्म कर दी तो खिलाफत आन्दोलन अपनी मौत मर गया। परन्तु इसके द्वारा काफ़िरों के विरुद्ध पैदा किया गया जिहाद का भाव कोहाट से केरल तक मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं की मारकाट के रूप में निकला।

कवि इकबाल की खिलाफ़त आन्दोलन के बाद की रचनाएँ इस आन्दोलन द्वारा राष्ट्रीय भावना के स्थान मुसलमानों में इस्लामी भावना के जगाने और उसके मुस्लिम मानस पर पड़े प्रभाव का ज्वलन्त उदाहरण हैं। जिस इकबाल ने १९२० से पहले—

"सारे जहाँ से अच्छा हिन्दुस्तान हमारा,
हम बुलबुले हैं इसकी, यह गुलिस्तां हमारा।
मज़हब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना,
हिन्दी हैं हम वतन है हिन्दोस्तान हमारा॥

जैसी राष्ट्रभक्ति से परिपूर्ण कविता लिखी थी उसी इकबाल ने खिलाफत आन्दोलन के दिनों में शिकवा और जवाब-ए-शिकवा लिखा और—

"मुस्लिम हैं हम वतन है सारा जहां हमारा।"

जैसी कविताओं द्वारा 'मिल्लत' रूपी इस्लामी राष्ट्रवाद को जगाया, जिसके आधार पर १९४७ में भारतमाता के टुकड़े हुए। इसी कारण डॉ० इकबाल को पाकिस्तान का वास्तविक जनक कहा जाता है।

यदि खिलाफत आन्दोलन द्वारा जगाए गए इस्लामी सिद्धान्तवाद का डॉ० इकबाल जैसे प्रबुद्ध व्यक्ति के मानस पर यह प्रभाव पड़ा तो साधारण मुसलमान के मन पर इसका क्या प्रभाव पड़ा होगा, यह समझना कठिन नहीं।

यह इस्लामी मानस मौलाना मोहम्मद अली, जिसको गांधीजी ने १९२३ में काकीनाडा में हुए कांग्रेस अधिवेशन का अध्यक्ष बनाया था, के उद्गारों से और स्पष्ट हो गया। दिल्ली में एक सभा में भाषण देते हुए उन्होंने कहा कि मेरे लिए एक फासद (लड़का) और फाजिर (बलात्कारी) मुसलमान महात्मा गांधी से हजार दर्जा बेहतर है। जब इस बयान पर कुछ कांग्रेसियों ने आपत्ति की तो कुछ समय बाद लखनऊ से बोलते हुए

मौलाना मोहम्मद अली ने अपने कथन की सफाई देते हुए कहा कि गांधी जी बेशक अच्छे आदमी हैं; परन्तु इस्लाम के अनुसार उनके लिए हर वह व्यक्ति जो मोहम्मद और कुरान पर ईमान लाता है, उस व्यक्ति से जो उन पर ईमान नहीं लाता, चाहे वह कितना भी नेक क्यों न हो, बेहतर है।

परन्तु गांधीजी ने न इतिहास से कुछ सीखा और न अनुभव से। मुस्लिम तुष्टीकरण जिसे कांग्रेस ने १९१६ में नीति के रूप में अपनाया था, उनके नेतृत्व में कांग्रेस का सिद्धान्त बन गया। इस नीति का मुस्लिम मानस पर गांधीजी की अपेक्षा के बिल्कुल विपरीत प्रभाव पड़ा, उसकी आस्था इस्लाम पृथक्वाद में पक्की हो गई। उसने अपने-आपको नीलामी पर चढ़ा दिया। गांधीजी उसका समर्थन प्राप्त करने के लिए बोली बढ़ाते गए, परन्तु ब्रिटिश सरकार गांधीजी से बड़ी बोली लगा सकती थी और लगाती रही। देशभक्ति और राष्ट्र का भाव न होने के कारण वह अधिक बोली देने वाले के साथ होता गया।

दूसरी ओर इस नीति के कारण हिन्दुओं में हीन भावना पैदा हो गई। गांधीजी द्वारा बार-बार यह कहने पर कि मुसलमानों के सहयोग के बिना स्वतन्त्रता नहीं मिल सकती, उनका आत्मविश्वास क्षीण हो गया। वे यह मानने लगे कि राष्ट्रीय हिन्दू हितों की बात करना और कहना साम्प्रदायिकता है क्योंकि उससे मुसलमान बिदकता है।

जिन अंग्रेजों ने सोच-समझकर मुसलमानों में पृथक्वाद को प्रोत्साहन दिया था, उन्हें कांग्रेस की नीति के इन परिणामों से सन्तोष होना स्वाभाविक था। वे इस बात पर और बल देने लगे कि कांग्रेस पहले मुस्लिम लीग के साथ समझौता करे तभी वे भारत छोड़ने की बात सोचेंगे।

कांग्रेस और गांधीजी की इस गलत अव्यावहारिक और राष्ट्रहित के विपरीत नीति ने, देश में जो राष्ट्रवादी मुसलमान बच गए थे, उन्हें भी मुस्लिम लीग की ओर धकेल दिया। जिन्नाह उनमें से एक थे। दूसरी ओर कुछ कट्टर साम्प्रदायिक मुसलमान योजनाबद्ध ढंग से कांग्रेस में घुसकर कांग्रेस के अन्दर से मुस्लिम लीग का खेल खेलने लगे। इसी स्थिति मे सरदार पटेल को यह कहने के लिए बाध्य किया कि देश में केवल एक राष्ट्रवादी मुसलमान है और उसका नाम जवाहरलाल नेहरू है।

इस अराष्ट्रीय और आत्मघाती नीति ने भारतीय राष्ट्रवाद की जड़ें काट डालीं और इसे पंगु बना दिया। राष्ट्रवाद कटे-फटे राष्ट्रों को जोड़ता है। जर्मन राष्ट्रवाद ने जर्मनी के चालीस राष्ट्रों को जोड़कर एक कर दिया और इटालियन राष्ट्रवाद ने अनेक राज्यों में बँटे इटली को एक कर दिया। परन्तु जिस मिले-जुले आधारहीन राष्ट्रवाद का प्रतिपादन गांधी-नेहरू के नेतृत्व में कांग्रेस ने किया, उसने हिन्दुस्तान जैसे राष्ट्रीयता के सभी तत्त्वों से सम्पन्न भारत देश की एकता को सुदृढ़ करने के स्थान पर उसके टुकड़े कर दिये।

मुसलमानों द्वारा अपनाए गए पृथक्वाद के लिए ब्रिटिश लोगों को दोष देना गलत है। यह पृथक्वाद इस्लाम के मूल सिद्धान्तों में निहित है। ये सिद्धान्त मुसलमानों को किसी गैर मुस्लिम राज्य यानी 'दार-उल-हरब' में गैर मुसलमानों के साथ बराबरी के आधार पर सह-अस्तित्व के रास्ते में सबसे बड़ी रुकावट है। कांग्रेस के नेताओं का कर्तव्य था कि वे भारत के मुसलमानों में, जिनमें से ९५ प्रतिशत के ऊपर हिन्दुओं की सन्तान हैं और जिनकी संस्कृति वही है जो शेष हिन्दुओं की है, राष्ट्रभावना जगाकर उन्हें राष्ट्र-धारा में लाते परन्तु इसके लिए आवश्यक था कि उन्हें भारतीय राष्ट्रवाद और उसके मूल स्रोतों का सही ज्ञानबोधक साहस और आत्म-विश्वास होता ताकि वे कुछ लोगों के विरोध की परवाह न करते हुए विशुद्ध राष्ट्रवाद के मार्ग पर आगे बढ़ सकते।

परन्तु दुर्भाग्य से गांधीजी ने कुछ अपनी अनभिज्ञता के कारण और मौलाना आजाद और पंडित नेहरू के प्रभाव के कारण ऐसा मार्ग अपनाया जिसने भारत को खण्डित कर डाला। १९४७ में देश का विभाजन भारतीय राष्ट्रवाद पर इस्लामी सिद्धान्तवाद और पृथक्वाद की जीत थी। भारत के मुसलमान भारतमाता को काटकर पाकिस्तान के रूप में अपना अलग इस्लामी राष्ट्र और राज्य लेने में सफल हो गए। भारत को स्वतन्त्रता का अमृत तो मिला, परन्तु विभाजन के विष के साथ।

दो राष्ट्रों के सिद्धान्त पर भारत का विभाजन, मिले-जुले राष्ट्रवादी और अराष्ट्रीय तथा राष्ट्रभावना विहीन तत्त्वों के साथ सौदेबाजी के आधार पर, एक नए मिले-जुले राष्ट्र का निर्माण करने की नीति की

विफलता की सार्वजनिक घोषणा थी। इसके कारण मुसलमान यह सिद्ध करने में सफल हो गए कि वे भारतीय अथवा हिन्दू राष्ट्र का अंग नहीं। इस प्रकार हजार वर्षों के बाद इस्लाम भारत के एक भाग का इस्लामीकरण करने और उसे 'दार-उल-इस्लाम' बनाने में सफल हुआ। भारत के मुसलमानों के लिए यह अपूर्व जीत थी। १९४७ में सारे भारत में इनकी जनसंख्या २२ प्रतिशत के लगभग थी। परन्तु विभाजन के फलस्वरूप वे भारत की ३० प्रतिशत भूमि काटकर पाकिस्तान बना पाए। उन्हें अपनी जनसंख्या के अनुपात से बहुत अधिक भूमि मिल गई।

इस विभाजन ने एक बार फिर यह स्पष्ट कर दिया कि जिन लोगों में हिन्दुस्तान के प्रति अपनत्व की भावना है, जो उसे अपनी मातृभूमि और पुण्यभूमि मानते हैं, वे ही इसके सच्चे राष्ट्रीय हैं। वे सभी हिन्दू हैं और उनका देश हिन्दू राष्ट्र है। जो अपने-आपको इस राष्ट्र का अंग मानने को तैयार नहीं थे, वे अलग हो गए। उनके अलग हो जाने के बाद जो बच गया उसके हिन्दू राष्ट्र होने पर विवाद करना या आपत्ति करना मूर्खता ही नहीं, अपितु आत्म-वंचना भी है।

विभाजन की कुछ सीखें, तकाजे और तर्कसंगत फलितार्थ थे। उनमें सबसे महत्त्वपूर्ण फलितार्थ और तकाजा था खण्डित हिन्दुस्तान को हिन्दू राज्य घोषित करना।

: ३ :

हिन्दू राज्य

भारत का विभाजन करके हिन्दुस्तान को नैसर्गिक सीमाओं के अन्तर्गत पाकिस्तान नाम से अलग मुस्लिम राष्ट्र और राज्य का निर्माण विभाजन का आधार और देश को विभाजन की विभीषिका तक पहुँचाने वाला घटनाचक्र और उसके साथ जुड़ी हुई मारकाट और नर-संहार की कुछ सीखें और फलितार्थ हैं, जिनपर खण्डित भारत की जनता, सरकार और नेताओं को गम्भीरता से विचार करना चाहिए था और उनके अनुरूप स्वतन्त्र देश की नीतियों को दिशा देनी चाहिए थी।

विभाजन की सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण और विचारणीय सीख यह है कि जो लोग अपने-आपको राष्ट्र के साथ एक रूप होने को तैयार नहीं, उनके साथ सौदेबाजी करके या उनका तुष्टीकरण करके कोई नया मिला-जुला राष्ट्र नहीं बनाया जा सकता। भारत के मुसलमानों ने १९४६ के आम चुनाव में जो अखण्ड भारत या विभाजन के मुद्दे पर लड़ा गया था, अपने मतदान द्वारा यह निर्णायक ढंग से सिद्ध कर दिया था कि वे देश का विभाजन और अपने लिए अलग होमलैंड चाहते हैं। श्री अशोक मेहता द्वारा अपनी पुस्तक 'पोलिटिकल माइंड ऑफ इण्डिया' में इस चुनाव का विश्लेषण करके लिखा है, कि मतदान करने वाले मुस्लिम मतदाताओं में से ९३ प्रतिशत ने मुस्लिम लीग और विभाजन के पक्ष में मत डाले थे। जिन ७ प्रतिशत ने इनसे विरुद्ध मत डाले थे वे मुख्यतः मुस्लिम बहुल पश्चिमी पंजाब में खिज़र हयात टिवाना की यूनियनिस्ट पार्टी, सीमा प्रान्त में डॉ० खां साहब की कांग्रेस पार्टी और सिंध में अल्लाबख्श की नेशनलिस्ट पार्टी से सम्बन्धित थे। जो क्षेत्र इस समय खण्डित भारत में है, वहाँ के लगभग १००

प्रतिशत मुसलमानों ने मुस्लिम लीग और पाकिस्तान के पक्ष में मत दिए थे। वास्तव में देश-विभाजन के पक्ष में सारा आन्दोलन दिल्ली, उत्तरप्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल और बम्बई के मुसलमानों ने ही चलाया था।

इस प्रकार इस चुनाव ने यह स्पष्ट कर दिया था कि जहाँ मुस्लिम अल्पमत में थे वहाँ उन्होंने राष्ट्रधारा में शामिल होने से स्पष्ट इन्कार ही नहीं किया, अपितु उन्होंने खुलकर यह घोषित कर दिया था कि वे अलग राष्ट्र हैं और कि वे भारतीय राष्ट्र का अंग न तो हैं और न बनने को ही तैयार हैं, इसलिए उनसे भारत के प्रति किसी प्रकार की आस्था की अपेक्षा नहीं की जा सकती।

विभाजन की दूसरी सीख यह है कि मिली-जुली संस्कृति की बातें करना किसी भी देश और राष्ट्र के लिए आत्मघाती सिद्ध होती हैं। संस्कृति देश के लोगों की कला, साहित्य, दर्शन आदि क्षेत्रों में उन उच्चतम उपलब्धियों का जोड़ होता है, जिनके प्रति उस राष्ट्र के लोगों में गर्व का भाव होता है और जो उन्हें एक होने की प्रेरणा देती हैं। भाषा भी राष्ट्र की सांस्कृतिक धरोहर का अंग होती है। हिन्दुस्तान में केवल ५ प्रतिशत के लगभग मुसलमान ऐसे हैं जो विदेशी अरबों, तुर्कों और मुग़लों की सन्तान हैं। शेष ६५ प्रतिशत हिन्दुओं की ही सन्तान हैं। उनकी संस्कृति और जीवन-पद्धति मूलतः वही है जो अन्य हिन्दुओं की है। मुसलमान बनने से उनकी संस्कृति और भाषा नहीं बदली। संस्कृति का सम्बन्ध राष्ट्र से होता है और भाषा का विशिष्ट क्षेत्र से, किसी मजहब या सम्प्रदाय से नहीं। सारा यूरोप ईसाई है परन्तु जर्मनी, फ्रांस, ब्रिटेन और इटली की संस्कृतियाँ अलग-अलग हैं। उन संस्कृतियों के विकास में उन देशों की विशिष्ट भाषाओं का विशेष योगदान रहा है। जर्मन, फ्रेंच, अंग्रेजी इत्यादि अलग-अलग और अति विकसित भाषाएँ हैं, परन्तु उन सबकी लिपि एक ही है।

हिन्दुस्तान की एक विशिष्ट संस्कृति है। एक विशाल देश होने के कारण उसमें अनेक विकसित भाषाएँ हैं जिनमें संस्कृत साँझी कड़ी है। वे देश की क्षेत्रीय भाषाएँ हैं और उन क्षेत्रों में मुसलमानों समेत रहने वाले सभी लोग उन्हें बोलते हैं।

समय-समय पर भारत में आने वाले विदेशी तत्त्व इसकी मुख्य धारा

में आत्मसात् होते गए। उनका भी हमारे खून और संस्कृति में कुछ अंश है; परन्तु उनकी देन उसी प्रकार भारतीय हिन्दू संस्कृति से एक रूप हो गई जिस प्रकार गंगा की सहायक नदियों का जल उसमें मिलकर गंगाजल बन जाता है। गंगा के पानी की तरह भारत की संस्कृति एक और अविभाज्य है। शुद्ध संस्कृति की बात शुद्ध नस्ल की बात की तरह एक मिथक है। परन्तु मजहब के आधार पर अलग-अलग संस्कृति की बात करना खतरनाक और विघटनकारी है।

पाकिस्तान के समर्थकों ने मुसलमानों के अलग राष्ट्र होने की बात का आधार अलग इस्लामिक कल्चर और फारसी लिपि में लिखी जाने वाली उर्दू भाषा को बनाया था। कांग्रेस के नेतृत्व की सबसे बड़ी भूल यह थी कि उसने मुसलमानों के इस संस्कृति और भाषा के निराधार दावे को स्वीकार कर लिया। जब मजहब के आधार पर मुसलमानों की अलग संस्कृति और भाषा की बात मान ली गई तब उस आधार पर उनके अलग राष्ट्र होने के दावे को नकारना कठिन हो गया।

इस सन्दर्भ में उर्दू का रोल विशेष रूप से विनाशक और विघटनकारी रहा है। उर्दू तुर्की भाषा का शब्द है जिसका अर्थ सेना या लश्कर है। इस नाम से ही यह स्पष्ट है कि यह हिन्दी की उस बोली अथवा शैली का नाम है जो भारत में आए विदेशी तुर्क सैनिक अपनी छावनियों में प्रयुक्त करने लगे थे। इसकी सभी क्रियाएँ हिन्दी की हैं परन्तु बहुत-सी संज्ञाएँ और विशेषण तुर्की और फारसी भाषा के प्रयुक्त होते हैं। भाषा विज्ञान की दृष्टि से किसी भाषा का स्वरूप उसकी क्रियाओं के आधार पर तय होता है। इसलिए उर्दू हिन्दी की ही एक ऐसी शैली है जिसमें तुर्की व फारसी शब्दों का बहुतायत से प्रयोग होता है। इसे हिन्दी से अलग करने वाली प्रमुख चीज़ इसकी विदेशी फारसी लिपि है। यह मुस्लिम राज्यकाल के समय के कुछ प्रमुख नगरों को, जहाँ सेना और सुलतान या उसके सूबेदार रहते थे, को छोड़कर किसी क्षेत्र के मुसलमानों की भी बोलचाल की भाषा नहीं है।

मुस्लिम लीग ने उर्दू को सभी मुसलमानों की, चाहे वे बोलचाल में इसका प्रयोग करते थे या नहीं, साँझी भाषा के रूप में पेश किया। इसने

इसकी फ़ारसी लिपि के कारण मुसलमानों में उसके प्रति एक भावात्मक मोह पैदा किया और उसे मुसलमानों में पृथक्ता की भावना पैदा करने का सफल माध्यम बनाया। इस प्रकार उर्दू देश-विभाजन का एक प्रमुख आधार बन गई।

यथार्थवाद और व्यावहारिक राजनीति का तकाज़ा था कि उर्दू लिखने के लिए देवनागरी लिपि का प्रचलन करके इसका भारतीयकरण किया जाता। इस एक पग से उन लोगों के भारतीयकरण का मार्ग प्रशस्त हो जाता जिनके पृथक्वाद का आधार उर्दू और उसकी विदेशी लिपि बन गई थी।

विभाजन की तीसरी सीख यह थी कि अहिंसा ब्रिटिश सरकार के साथ संघर्ष में एक उपयुक्त नीति अवश्य थी परन्तु उसे सिद्धान्त बना लेना अव्यावहारिक, अयथार्थवादी और अमान्य है। मुस्लिम लीग ने इसका लाभ उठाकर अपनी विभाजन की माँग मनवाने के लिए हिन्दुओं के विरुद्ध हिंसक दंगों और सीधी कार्यवाही को अपना प्रमुख शस्त्र बनाया। इसके नेताओं ने धमकियाँ दीं कि यदि उनकी माँग न मानी गई तो वे हलाकू और चंगेज खाँ जैसा आचरण करेंगे। काँग्रेस के नेतृत्व, विशेष रूप में गांधीजी पर मुस्लिम लीग के इस हिंसक दबाव की नीति का प्रभाव सबसे अधिक पड़ा। राष्ट्रवादियों का मुस्लिम लीगी गुण्डों की हिंसात्मक कार्यवाहियों का दृढ़ता से मुकाबला करने का आह्वान करने की बजाय काँग्रेस की कार्यसमिति ने पूना में १९४५ में पारित अपने विभाजन विरोधी प्रस्ताव में यह जोड़कर कि कांग्रेस किसी प्रदेश के लोगों को उनकी इच्छा के विरुद्ध भारत में रहने के लिए बाध्य नहीं करेगी, विभाजन की माँग को सिद्धान्त रूप में मान लिया परन्तु प्रस्ताव के इस भाग को गुप्त रखा गया ताकि लोगों को लगे कि कांग्रेस अखण्ड भारत के लिए प्रतिबद्ध है!

जब डॉक्टर श्यामाप्रसाद मुकर्जी ने १९४६ में केबिनट मिशन के सामने भारत को अखण्ड रखने का पक्ष प्रभावी ढंग से रखा तो मिशन के नेता लॉर्ड पैथिक लॉरेन्स ने उनके सामने कांग्रेस का पूना प्रस्ताव रखकर उनका मुँह बन्द कर दिया। उस समय कांग्रेस उसी तरह हिन्दुओं की प्रतिनिधि संस्था मान ली गई थी जैसे मुस्लिम लीग मुसलमानों की थी। इसने

मुस्लिम लीग की हिंसात्मक धमकियों के आगे झुककर १९४५ में ही विभाजन को सिद्धान्त रूप में स्वीकार कर लिया था। उसके बाद इसका विभाजन का विरोध एक प्रवचना और दिखावा मात्र था। यदि कांग्रेस के नेतृत्व ने देश की एकता की रक्षा के लिए गृहयुद्ध का खतरा मोल लेकर भी मुस्लिम लीग की हिंसक चुनौती का मुकाबला किया होता तो भारत का इतिहास कुछ और होता।

यदि १९४७ के शुरू में जब मुस्लिम लीग ने पश्चिम पंजाब में हिन्दुओं की मारकाट शुरू की थी, पूर्वी पंजाब में इसकी सीमित रूप में भी हिंसक प्रतिक्रिया होती तो भी विभाजन रुक जाता। भारत के मुसलमान हीन भावना से ग्रस्त थे और हैं। वे उन दुर्बल हृदय वाले हिन्दुओं की औलाद है जिन्होंने अपनी जान और माल बचाने के लिए मुसलमान बनना स्वीकार किया था। उनकी हीन भावना उनकी गुण्डागर्दी के द्वारा अभिव्यक्त होती है। ऐसे लोग प्रतिरोध के आगे टिक नहीं सकते। इस्लामवाद के भारतीय अनुयायियों का यह चरित्र मुसलमान के सम्बन्ध में पंजाबी भाषा की इस लोकोक्ति का आधार है—

"अग्गा शेर दा, ते पिच्छा गिद्दड़ दा।"

अर्थात्—मुसलमानों के आगे यदि दबो तो वे शेर की तरह आक्रान्ता का व्यवहार करते हैं, यदि उनके सामने डट जाओ तो उनका व्यवहार गीदड़ जैसा होता है।

इस प्रकार गांधीजी और उनसे प्रभावित कांग्रेस के नेताओं की मुस्लिम चरित्र और इस्लामी परम्पराओं से अनभिज्ञता और अहिंसा के सम्बन्ध में उनकी गलत धारणा हिन्दुस्तान की एकता के लिए घातक सिद्ध हुई।

विभाजन के तर्कसंगत फलितार्थ भी थे। विभाजन को स्वीकार कर लेने के बाद इसके फलितार्थ को स्वीकार करके उन्हें कार्यरूप देना चाहिए था।

विभाजन का पहला तर्कसंगत फलितार्थ यह था कि देश के केवल उन इलाकों को भारत से अलग होने और पाकिस्तान के रूप में इस्लामी राज्य का अंग बनने देना चाहिए था जहाँ के बहुमत ने स्पष्ट रूप से अलग होने

की बात का समर्थन किया था। मुस्लिम लीग का सारे पंजाब और सारे बंगाल पर दावा भौगोलिक, ऐतिहासिक और जनसंख्या सम्बन्धी तथ्यों और तर्क के विरुद्ध था। उसे मानने का कोई औचित्य नहीं था।

भारत के महान् राष्ट्रवादी चिंतक और सच्चे अर्थों में ब्राह्मण, विधिवेत्ता डॉ० भीमराव अम्बेदकर ने उन्हीं दिनों अपनी विचारोत्तेजक पुस्तक 'थॉट्स ऑन पाकिस्तान' लिखकर देश की बहुत बड़ी सेवा की थी। वे विभाजन के विरोधी थे परन्तु एक यथार्थवादी और राजनीति के वस्तुपरक प्रेक्षक के नाते उन्हें इस बात का विश्वास हो गया था कि कांग्रेस का नेतृत्व देश की एकता की रक्षा नहीं कर पाएगा, इसलिए उन्होंने बड़े परिश्रम से उन क्षेत्रों का रेखांकन किया था जो विभाजन की सूरत में पाकिस्तान को मिल सकते थे।

जहाँ तक पंजाब का सम्बन्ध था, उसका लाहौर समेत रावी नदी के पूर्व का सारा क्षेत्र हिन्दू बहुल था। गुरदासपुर जिले में मुसलमान १ प्रतिशत अधिक थे, परन्तु इस जिले का रावी के पूर्व में स्थित भाग जिसमें गुरदासपुर, बटाला और पठानकोट पड़ते हैं, हिन्दू बहुल था। पाकिस्तान और खण्डित भारत के बीच की सीमा तय करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने जो कसौटी रेडक्लिफ़ आयोग के मार्गदर्शन के लिए दी थी उसके अनुसार लाहौर समेत रावी के पूर्व का पंजाब भारत को मिलना चाहिए था।

सिन्ध का थरपारकर ज़िले में, जो राजस्थान और गुजरात के साथ लगता है, हिन्दू ८० प्रतिशत से अधिक थे। आठ हज़ार वर्गमील का यह क्षेत्र सिन्ध का सबसे बड़ा ज़िला था। यह भारत को मिलना चाहिए था। यदि यह भारत को मिल गया होता तो यह पूर्व पंजाब की तरह भारतीय सिन्ध के रूप में सिन्धी हिन्दुओं का, जिनको पाकिस्तान को दिए गए सिन्ध में से निकलना ही पड़ता, होमलैंड बन जाता।

बंगाल के चिटागाँव के पहाड़ी क्षेत्र में हिन्दू-बौद्ध ९५ प्रतिशत के लगभग थे। यह भारत में पड़ने वाले मिजोरम क्षेत्र और त्रिपुरा राज्य के साथ लगा हुआ है। यह सारा क्षेत्र भारत को मिलना चाहिए था। थरपारकर के हिन्दुओं की तरह यहाँ के लोगों ने भी १९४६ के चुनाव में अखण्ड भारत के पक्ष में अपना सामूहिक मत दिया था। कलकत्ता और

ढाका के बीच पड़ने वाले खुलना जिले में हिन्दुओं की जनसंख्या ६० प्रतिशत से अधिक थी। यह भी भारत के पास रहना चाहिए था।

आसाम हिन्दू-बहुल क्षेत्र था, परन्तु उसके सिलहट जिले में बड़ी संख्या में बंगाली मुसलमानों के बस जाने के कारण मुस्लिम जनसंख्या ५१ प्रतिशत हो गई थी।

भारत की सरकार और राजनीतिक नेताओं से यह स्वाभाविक रूप से अपेक्षा की जाती थी कि वे लाहौर, थरपारकर, चिटागांव पहाड़ी क्षेत्र तथा बंगाल के अन्य हिन्दू बहुल इलाकों को, जहाँ के लोगों ने अपनी जान जोखिम में डालकर और हर प्रकार के दबाव का मुकाबला करते हुए अपनी आस्था अखण्ड भारत में व्यक्त की थी, खण्डित हिन्दुस्तान में रखने के लिए हर सम्भव प्रयत्न करते। परन्तु इस नेतृत्व ने सिलहट तो पाकिस्तान को दे दिया। लाहौर, थरपारकर और चिटागांव को खण्डित भारत में रखने के लिए कुछ नहीं किया।

विभाजन और पाकिस्तान के मुस्लिम राज्य के रूप में कायम होने का दूसरा तर्कसंगत फलितार्थ था, पाकिस्तान को दिए गए क्षेत्र में रह गई हिन्दू जनसंख्या और खण्डित हिन्दुस्तान में रह गई मुस्लिम जनसंख्या की पूरी अदला-बदली। जिन्नाह इसके पक्ष में था। पाकिस्तान की मांग का आधार ही यह था कि मुसलमान अलग राष्ट्र हैं और वे कहीं भी हिन्दुओं के साथ मिलकर नहीं रह सकते। पाकिस्तान की मांग के पक्ष में मुस्लिम लीग तथा अन्य मुस्लिम संगठनों द्वारा प्रकाशित किए गए साहित्य तथा इस्लामी राज्यों की परम्परा से भी यह स्पष्ट था कि पाकिस्तान में कोई हिन्दू सम्मान और शान्ति के साथ नहीं रह सकेगा, क्योंकि डॉ० अम्बेडकर को मुस्लिम कानून, परम्परा और इतिहास का गहरा ज्ञान था इसलिए उनका यह दृढ़ विश्वास था कि पाकिस्तान में बचे हुए हिन्दुओं का अस्तित्व खत्म कर दिया जाएगा। इसलिए उनका यह निश्चित मत था जिसे उन्होंने अपनी पुस्तक में सुस्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया था, कि पाकिस्तान और खण्डित हिन्दुस्तान में बच गए हिन्दुओं और मुसलमानों की योजनाबद्ध अदला-बदली "विभाजन का तर्कसंगत फलितार्थ और यथार्थवादिता का तकाजा है।" उन्होंने अपनी पुस्तक में इस अदला-बदली की पूरी योजना

और रूपरेखा भी प्रस्तुत की थी। इस योजना का आधार दूसरे महायुद्ध के के बाद तुर्की और यूनान में रह गई ईसाई और मुस्लिम जनसंख्या की अदला-बदली की योजना थी। १९४७ में पाकिस्तान को दिए गए क्षेत्र में लगभग ढाई करोड़ हिन्दू थे और खण्डित हिन्दुस्तान में लगभग इतने ही मुसलमान रह गए थे।

विभाजन का तीसरा तर्कसंगत फलितार्थ था खण्डित हिन्दुस्तान को स्पष्ट रूप में हिन्दू राष्ट्र मानना और उसे हिन्दू राज्य घोषित करना।

उस समय के हिन्दुस्तान के नेतृत्व की सबसे लज्जाजनक विफलता यह थी कि उसने मातृभूमि का विभाजन तो स्वीकार कर लिया परन्तु उसके तर्कसंगत फलितार्थों को कार्यरूप देने के लिए उसने कोई पग नहीं उठाया। आज के हिन्दुस्तान की अधिकांश समस्याएँ और बीमारियाँ दूरदृष्टि विहीन नेतृत्व की इस विफलता और राष्ट्रहित की द्रोहपूर्ण उपेक्षा का सीधा परिणाम हैं।

यदि इस नेतृत्व ने व्यावहारिक, तर्कसंगत और हिन्दू हित के अनुकूल रुख अपनाया होता तो यह थरपारकर और चिटागाँव क्षेत्र को तो निश्चित रूप में बचा सकता था। यदि ऐसा हुआ होता तो भारत को न केवल सामरिक महत्त्व के ये क्षेत्र मिल जाते अपितु वहाँ के बहादुर राजपूत और चकमा बौद्ध भी योजना-बद्ध नरसंहार से बच जाते।

लाहौर भी भारत को मिलना चाहिए था। रेडक्लिफ़ आयोग के सामने भारत का पक्ष न्यायमूर्ति मेहरचन्द महाजन ने रखा था। उन्होंने लाहौर को भारत के पास रहने देने के पक्ष में जो तथ्यपूर्ण तर्क दिए थे, वे अकाट्य थे। उस समय रावी के पूर्वी तट पर बसा लाहौर जनसंख्या की दृष्टि से हिन्दू-बहुल था। उसके उद्योग, व्यापार और स्थिर सम्पत्ति में हिन्दुओं का भाग ८५ प्रतिशत के लगभग था। परन्तु श्री महाजन इस बात को समझते थे कि लाहौर की किस्मत का फैसला राजनीतिक दबाव के आधार पर भारत के विपरीत हो सकता है। इसलिए उन्होंने प्रधानमन्त्री नेहरू से प्रार्थना की कि वे लार्ड माउण्ट बेटन से आग्रह करें कि वह लाहौर का फैसला करते समय पाकिस्तान के राजनीतिक दबाव में न आ जायें। परन्तु पं० नेहरू ने उनकी प्रार्थना पर ध्यान देने के बजाय यह कहला भेजा

कि कुछ नगर इधर रहें या उधर जाएँ इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। श्री महाजन ने जीवनपर्यन्त पं० नेहरू को राष्ट्रहित के प्रति इस विश्वासघात और जलते हुए भारतीय पंजाब के प्रति इस अन्याय के लिए कभी क्षमा नहीं किया।

उस समय खण्डित भारत और पाकिस्तान में रह गए मुसलमान और हिन्दू अदला-बदली के लिए मानसिक दृष्टि से तैयार थे। भारत में रह गए मुसलमानों ने पाकिस्तान के पक्ष में काम किया था और मत दिया था। वे देश-विभाजन के कुकृत्य के वास्तविक अपराधी थे। उन्होंने और उनके मक्का—अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय ने योजनाबद्ध ढंग से मुसलमानों में विभाजन का जनून पैदा किया था और विशेष रूप में पंजाब और सिन्ध में मुस्लिम जनमत पाकिस्तान के पक्ष में मोड़ा था। इसलिए उनके प्रति किसी प्रकार की सहानुभूति अथवा दया दिखाने का कोई औचित्य नहीं था।

पाकिस्तान में रह गए हिन्दू आतंकित थे। इतिहास और विभाजन के पूर्व घटित घटना चक्र से उन्हें विश्वास हो गया था कि पाकिस्तान में उनका कोई भविष्य नहीं। वे समझ गए थे कि उन्हें या मार दिया जाएगा या बलात् मुसलमान बना लिया जायेगा। इसलिए उनकी ओर से आबादी की अदला-बदली की किसी भी योजना में दोनों सरकारों को पूरा सहयोग मिलता।

परन्तु पं० नेहरू के नेतृत्व और गांधीजी के मार्गदर्शन में भारत सरकार द्वारा अपनाई गई नीति दोगली और अव्यावहारिक थी। इसने सरकारी कर्मचारियों, सैनिकों यहाँ तक कि जेलों के कैदियों की अदला-बदली तो कर ली परन्तु इसने सिविल आबादी की अदला-बदली से इन्कार कर दिया। इससे भी बड़ा पाप इसने यह किया कि इसने पूर्वी बंगाल के हिन्दुओं को उनकी जानमाल और इज्जत की रक्षा करने के झूठे आश्वासन देकर उन्हें पश्चिमी बंगाल अथवा आसाम में आने से रोका।

बंगाल के हिन्दू नेताओं ने भी उस संकट काल में न दूरदर्शिता का परिचय दिया और न पूर्वी बंगाल के हिन्दुओं का ठीक मार्गदर्शन किया।

परन्तु डा० गोकुलचन्द नारंग, भाई परमानन्द और मास्टर तारासिंह जैसे नेताओं की दूरदर्शिता और यथार्थवादिता के कारण पंजाब के सिक्खों

समेत अधिकांश हिन्दू उस संकटकाल में ठीक पग उठा सके। वे विभाजन के पूर्व रावलपिंडी और शेखूपुरा में मुस्लिम सेना और पुलिस के बल पर हुए हिन्दुओं के नरसंहार से यह समझ चुके थे कि अपने घर-घाट को छोड़कर खण्डित हिन्दुस्तान में चले जाने का कड़ुवा घूंट पीना उनके लिए श्रेयस्कर है। इस मामले में सरदार पटेल ने भी उनकी सहायता की। सरदार पटेल उस समय कांग्रेस के एकमात्र सच्चे राष्ट्रवादी और यथार्थवादी नेता थे। वे यह समझ चुके थे कि पश्चिमी पंजाब और पूर्वी पंजाब के हिन्दुओं और मुसलमानों की अदला-बदली उस भयानक स्थिति में उनके बचाव का एकमात्र उपाय है। पं० नेहरू, मौलाना आजाद और गांधीजी द्वारा हर प्रकार की अड़चनें डालने के बावजूद सरदार पटेल के सहयोग से पाकिस्तानी और भारतीय पंजाब में जनसंख्या की सीमित अदला-बदली हो पाई। अपने सम्मान के अतिरिक्त पश्चिमी पंजाब और सीमा प्रान्त के हिन्दू सभी कुछ वहीं छोड़ आये। उनकी जीवन शक्ति और उनके बलिदानों ने हिन्दुस्तान और हिन्दू राष्ट्र के थपेड़ों भरे लम्बे इतिहास में एक गौरवपूर्ण नया अध्याय जोड़ दिया।

सिन्ध के हिन्दू उस समय नेतृत्व-विहीन थे। दिल्ली के केन्द्रीय नेताओं की तरह सिन्ध के कांग्रेसी नेताओं ने भी सिन्ध के हिन्दुओं से विश्वासघात किया। उन्हें शायद विश्वास था कि जिस प्रकार ब्रिटिश राज्य के पूर्व के एक हजार वर्षों में वे मुस्लिम राज्यकाल में येन-केन-प्रकारेण बचे रहे, उसी प्रकार पाकिस्तान में भी वे बच जाएँगे। वे मुस्लिम मानसिकता में आए उस बदल को नहीं समझ पाए जिसने उसे पाकिस्तान माँगने के लिये उद्यत किया था। उनका यह विश्वास उन्हें बहुत महँगा पड़ा। उन्हें भी शीघ्र ही अपना घर-बार छोड़कर भारत में शरण लेनी पड़ी। तब उन्हें समझ आई कि यदि १९४७ में थरपारकर पाकिस्तान में जाने से बचा लिया होता तो वह उनका नया घर बन सकता था। खंडित भारत में भी एक छोटा सिन्ध प्रदेश बना रहता। सिन्ध से हिन्दुओं को निकाले जाने के बाद भारत का वह पश्चिमी क्षेत्र जिसमें एक हजार वर्ष के संघर्ष के बाद भी हिन्दू हिम्मत के साथ टिके रहे थे, उनसे खाली हो गया।

पूर्वी पाकिस्तान, जो अब बँगला देश बन चुका है, में रह गए हिन्दू

वीद्ध तब से तिल-तिलकर मर रहे हैं। अब उन्हें महसूस हो रहा है कि उन्होंने गांधी-नेहरू के आश्वासनों पर विश्वास करके बहुत बड़ी भूल की। विभाजन के समय उनकी जनसंख्या डेढ़ करोड़ थी। जो अब तीन करोड़ से अधिक होनी चाहिये थी। वे पूर्वी पाकिस्तान की कुल जनसंख्या का ३० प्रतिशत थे। अब जनसंख्या में उनका अनुपात कम होकर १५ प्रतिशत के लगभग रह गया है। उनमें एक करोड़ के लगभग या तो मार दिये गए हैं या बलात् मुसलमान बना दिये गए हैं। और एक करोड़ के लगभग शरणार्थी बनाकर पश्चिमी बंगाल, आसाम और त्रिपुरा में खदेड़ दिये गए हैं। जो डेढ़ करोड़ के लगभग हिन्दू वहां बचे हैं, वे अपने दिन गिन रहे हैं। उनकी स्थिति दक्षिण अफ्रीका के कालों से कहीं अधिक बदतर है। बंगला देश में उनके न कोई कानूनी अधिकार हैं, और न मानवीय अधिकार। पश्चिमी बंगाल की कम्युनिस्ट सरकार के एक वरिष्ठ मन्त्री के अनुसार वे भी आने वाले दिनों में "या मुसलमान बना लिये जाएँगे और या मार दिये जाएँगे।"

इसके विपरीत पाकिस्तान के लिए काम करने और उसके पक्ष में मत देने के बाद जो मुसलमान खंडित भारत में टिके रहे, कांग्रेस सरकार ने उनके सामूहिक मत प्राप्त करने के लिए उनके प्रति पटरानी जैसा बर्ताव करना शुरू किया। उन्हें भारत में वे अधिकार प्राप्त हैं जिनसे राष्ट्रीय समाज भी वंचित है। फलस्वरूप उनकी आबादी अप्रत्याशित रूप से बढ़ रही है। वे ढाई करोड़ से बढ़कर लगभग आठ करोड़ हो गए हैं। इससे भयानक बात यह है कि उनका भारतीयकरण होना तो दूर रहा, वे फिर १९४७ के पूर्व का पृथक्‌वादी खेल खेलने लग पड़े हैं। देश के अन्दर और बाहर के घटनाचक्र ने उन्हें न केवल खंडित हिन्दुस्तान की एकता और सुरक्षा के लिए ही नहीं अपितु उसकी हिन्दू पहचान के लिए भी एक बड़ा खतरा बना दिया है।

जहाँ तक हिन्दुस्तान को हिन्दू राज्य घोषित करने का प्रश्न है, भारत सरकार और नेतृत्व का रवैया और भी अधिक लज्जाजनक और निराशाजनक रहा है। देश के राष्ट्रीय हिन्दू समाज ने भी इस विषय में अपना कर्तव्य निभाने में कोताही की है। इस मामले में दो घटनाओं का

हिन्दू मानस और भारत के नीति-निर्धारकों पर विपरीत प्रभाव पड़ा है।

पहली घटना जनवरी, १९४८ में एक हिन्दू नाथूराम गोडसे द्वारा गांधीजी की हत्या थी। इस एक घटना ने विभाजन के फलस्वरूप खंडित भारत में उभरी हुई हिन्दू चेतना को दबाने और भारत सरकार को हिन्दू उन्मुख होने के स्थान पर हिन्दू-विमुख होने में बहुत भयंकर रोल अदा किया है।

हिन्दुस्तान की जनता के मन में देश-विभाजन और उसके परिणामों के कारण गांधीजी की गलत नीतियों और दृष्टिकोणों के प्रति रोष पैदा होना स्वाभाविक था। नेहरू और मौलाना आज़ाद के हाथों का खिलौना बनकर और सरदार पटेल के हाथों को कमजोर करके गांधीजी ने उस समय की भयानक स्थिति को और अधिक हिन्दू घातक बनाने में निन्दनीय भूमिका अदा की थी। सरदार पटेल राष्ट्रवादी थे। वे चाहते थे कि भारत का अधिक से अधिक भाग विभाजन की विभीषिका और पाकिस्तान के हाथों में पड़ने से बचा लिया जाय और वहाँ रह गए हिन्दुओं पर आए संकट से उनको यथासम्भव राहत दी जाय। इसके विपरीत गांधीजी ने न केवल पाकिस्तान में रह गए हिन्दुओं को गलत परामर्श और आश्वासन देकर उनकी मुसीबतों को बढ़ाया, अपितु पाकिस्तान की अमानुषी सरकार की पीठ ठोककर और उसे ५६ करोड़ रुपये दिलवाने के लिए मरणव्रत रखकर पीड़ित हिन्दुओं और खंडित हिन्दुस्तान के जख्मों पर मानो नमक छिड़कने का काम भी किया। फलस्वरूप उनकी लोकप्रियता तेजी से खत्म होने लगी। सरदार पटेल जैसे उनके अनन्य भक्त भी उनके रवैये से हताश होने लग पड़े। उस समय लगता था कि देश की जनता उनसे पूरी तरह विमुख हो जाएगी और वे इतिहास के कूड़ेदान में फेंक दिये जाएँगे।

परन्तु नाथूराम गोडसे उनके बचाव का माध्यम बन गया। उसने उनकी हत्या करके उन्हें शहीद बना दिया। इस कुकृत्य के कारण मृत गांधी जीवित गांधी से कहीं अधिक शक्तिशाली बन गए।

देश में राष्ट्रीय हिन्दू चेतना के उभार और गांधीजी की गिरती हुई साख के कारण पं० नेहरू, मौलाना आजाद और जयप्रकाश नारायण जैसे लोग घबरा उठे थे। उन्हें अपना भविष्य अन्धकारमय दिखने लगा।

उन्होंने गांधी हत्या को एक दैवी अवसर समझकर अपने संगठन और सरकार की सारी शक्ति हिन्दू भावना को दबाने में लगा दी। हिन्दू महासभा और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर प्रतिबन्ध लगाने और महान् देशभक्त और क्रान्तिकारियों के शिरोमणि वीर सावरकर समेत असंख्य हिन्दू नेताओं और कार्यकर्ताओं को जेलों में डालकर उन्होंने हिन्दुओं में आतंक पैदा कर दिया। हिन्दू अपने आपको हिन्दू कहलाने में भी घबराने लगे। इस प्रकार देश में ऐसा वातावरण पैदा हो गया जिसमें हिन्दुस्तान को हिन्दू राज्य घोषित करना तो दूर रहा, सरकारी तौर पर देश का हिन्दुस्तान नाम भी मिटा दिया गया। नए संविधान में हिन्दुस्तान को इण्डिया यानी भारत की संज्ञा दी गई।

दूसरी घटना जिसे हिन्दुस्तान को हिन्दू-राज्य घोषित करने के विरुद्ध तर्क के रूप में इस्तेमाल किया गया और आज भी किया जा रहा है, वह काश्मीर से सम्बन्धित है। यह कहा जाता है कि मुस्लिम बहुल जम्मू-काश्मीर राज्य का भारत में विलय दो राष्ट्र सिद्धान्तों का खंडन है और काश्मीर हिन्दुस्तान के अन्तर्गत रखने के लिए यह आवश्यक है कि इसे हिन्दू राज्य घोषित न किया जाय। ये दोनों तर्क मिथ्या हैं।

देशी राज्य अंग्रेजों के भारत छोड़ने के बाद औपचारिक रूप में स्वतन्त्र हो जाने थे। ब्रिटिश सरकार ने ३ जून, १९४७ को घोषणा, जिसे तत्कालीन ब्रिटिश वायसराय के नाम पर माउंटबेटन योजना भी कहा जाता है, के साथ उन देशी नरेशों को सलाह दी थी कि वे १५ अगस्त, १९४७ से पहले अपनी भौगोलिक सीमाओं को ध्यान में रखते हुए खंडित भारत या पाकिस्तान में शामिल हो जाएँ। इस योजना ने हैदराबाद और जूनागढ़, जो चारों ओर से भारत के क्षेत्र से घिरे थे, समेत अधिकांशतः राज्यों का भारत में विलय का प्रश्न तय कर लिया था। केवल जम्मू-काश्मीर, जोधपुर, जैसलमेर और बहावलपुर जैसे कुछ ही ऐसे राज्य थे जिनकी सीमाएँ भारत और पाकिस्तान दोनों से मिलती थीं। इसलिए उनके लिए भारत या पाकिस्तान में शामिल होने का विकल्प था। जोधपुर और जैसलमेर हिन्दू बहुल राज्य थे और उनके शासक भी हिन्दू थे, इसलिए उन्होंने भारत में विलय होने का फैसला किया। बहावलपुर

मुस्लिम बहुल राज्य था और उसका शासक भी मुसलमान था, इसलिए वह पाकिस्तान में शामिल हो गया।

जम्मू-काश्मीर की स्थिति विचित्र थी। उसके ८४,००० वर्गमील वाले विस्तृत राज्य की सीमाएँ न केवल खंडित हिन्दुस्तान और पाकिस्तान से मिलती थीं अपितु अफगानिस्तान, सोवियत रूस, चीन और तिब्बत से भी मिलती थीं। इस सारे राज्य में मुसलमानों की जनसंख्या हिन्दुओं से अधिक थी; परन्तु भारत के साथ लगने वाले इसके पूर्वी क्षेत्र—जम्मू और लद्दाख—हिन्दू बहुल थे, मीरपुर, मुजफ्फराबाद, गिलगिस और बल्टिस्तान जैसे पाकिस्तान के साथ रहने वाले पश्चिमी क्षेत्र मुस्लिम-बहुल थे और इन सबके बीचोंबीच स्थित हिमालय की शृंखलाओं से घिरी हुई ३,००० वर्गमील क्षेत्रफल वाली काश्मीर घाटी भी मुस्लिम बहुल थी।

रेडक्लिफ आयोग की नियुक्ति से पहले पंजाब के सांकेतिक बँटवारे में जम्मू-काश्मीर में प्रवेश द्वारा रावलपिण्डी, स्यालकोट और पठानकोट पाकिस्तान को दे दिये गए थे।

इन हालात में जम्मू-काश्मीर के हिन्दू महाराजा के सामने एक वास्तविक और कठिन दुविधा उपस्थित हो गई थी। वे अपने राज्य को पाकिस्तान में शामिल नहीं करना चाहते थे परन्तु दूसरी ओर भौगोलिक और भौतिक कठिनाइयों के साथ-साथ पं० नेहरू के महाराजा के प्रति शत्रुतापूर्ण रवैये ने इस रियासत के भारत में विलय के रास्ते में एक भावात्मक अड़चन खड़ी कर दी थी। फलस्वरूप महाराजा ने स्वतन्त्र रहने का फैसला किया और उस हेतु हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की सरकारों के साथ यथास्थिति सन्धियाँ करने का प्रस्ताव किया। पाकिस्तान सरकार के साथ यथास्थिति सन्धि पर हस्ताक्षर भी हो गए।

जो हालात उस समय थे, उनके रहते हुए जम्मू-काश्मीर राज्य और उसके पड़ोसी पाकिस्तान और भारत के सामने दो विकल्प थे। या तो भारत और पाकिस्तान अपनी सहमति और सद्भाव से जम्मू-काश्मीर को स्वतन्त्र राज्य रहने देते या जम्मू-काश्मीर राज्य को भी उसी आधार पर बाँट दिया जाता जिस आधार पर ब्रिटिश भारत बाँटा गया था। इस स्थिति में जम्मू और लद्दाख का विलय भारत में हो जाता और शेष

रियासत का पाकिस्तान में। इसके लिए आवश्यक था कि भारत और पाकिस्तान दोनों महाराजा की दुविधा को सहानुभूतिपूर्वक समझते और धैर्य से काम लेते।

रियासत के अन्दर काश्मीर घाटी क्षेत्र में राजनीतिक चेतना सर्वाधिक थी। उसके मुसलमानों का नेता शेख अब्दुल्ला काश्मीर घाटी की सत्ता प्राप्त करना चाहता था। यदि पाकिस्तान उसे इसका आश्वासन देता तो वह रियासत को पाकिस्तान में शामिल करने के पक्ष में अपने प्रभाव का प्रयोग करता। उसने ऐसा आश्वासन प्राप्त करने के लिये ५ अक्तूबर, १९४७ को जिन्नाह के पास अपने दूत भी भेजे। उन्होंने लाहौर में जिन्नाह से मिलकर कहा कि यदि वे आश्वासन दें कि पाकिस्तान में शामिल होने के बाद वे काश्मीर घाटी का शासन शेख अब्दुल्ला को देंगे तो शेख अब्दुल्ला अपने प्रभाव का रियासत को पाकिस्तान में मिलाने के पक्ष में प्रयोग करने को तैयार है। परन्तु जिन्नाह ने ऐसा कोई भी आश्वासन देने से इन्कार कर दिया। उसका कहना था कि पके हुए सेब की तरह काश्मीर उसकी झोली में गिरने ही वाला है। उस हेतु वह काश्मीर पर आक्रमण की तैयारियाँ भी कर रहा था। वह आक्रमण २१ अक्तूबर, १९४७ को शुरू हो गया।

जम्मू-काश्मीर राज्य की सेना में मुसलमान भी बड़ी संख्या में थे। वे सब आक्रान्ताओं से जा मिले। इस कारण काश्मीर की सेनाओं के लिए अपने बल पर पाकिस्तानी आक्रमण का मुकाबला करना सम्भव न रहा। श्रीनगर और अन्य सीमावर्ती इलाकों में लाखों हिन्दू नर-नारी पाकिस्तानियों और उनके काश्मीरी मुसलमान समर्थकों के घेरे में आ चुके थे। उनकी जान और इज्जत की रक्षा के लिए भारत से सैनिक सहायता का तुरन्त पहुँचना अनिवार्य था। इस स्थिति ने महाराजा को बाध्य किया कि वे तुरन्त अपनी रियासत का भारत के साथ विलय कर दें।

परन्तु उस स्थिति में पं० नेहरू जम्मू-काश्मीर का भारत में विलय स्वीकार करने को तैयार न थे। उन्हें काश्मीर और उसमें घिरे हुए लाखों हिन्दुओं की सुरक्षा की अपेक्षा पाकिस्तान से मैत्री बनाए रखने की चिन्ता अधिक थी। उनका यह रवैया जम्मू-काश्मीर के तत्कालीन प्रधानमन्त्री

श्री महरचन्द महाजन को न केवल भीरुतापूर्ण और अव्यावहारिक अपितु हिन्दू विरोधी और राष्ट्रविरोधी लगा। वे जानते थे कि यदि भारत से सैनिक सहायता तुरन्त न मिली तो काश्मीर के लाखों हिन्दू पुरुष मौत के घाट उतार दिये जाएँगे और स्त्रियाँ गुलाम बनाकर बेची जाएँगी। इसलिए उन्होंने पं० नेहरू को कहा कि यदि भारत विलय को स्वीकार करने और सेना भेजने को तैयार नहीं तो उन्हें महाराजा के आदेशानुसार कराची जाकर हिन्दुओं को अभय देने की शर्त पर काश्मीर का विलय पाकिस्तान के साथ करना पड़ेगा। यह कहकर जब श्री महाजन कराची जाने के लिए उठने लगे तो सरदार पटेल ने उन्हें रोका और कहा कि भारत काश्मीर का विलय स्वीकार करता है। इस प्रकार सरदार पटेल के कारण विलय स्वीकार हुआ और भारत की सेनाएँ जिन्हें सरदार ने काश्मीर जाने के लिए तैयार रहने का आदेश दे रखा था, विमानों द्वारा काश्मीर में पहुँचने लगीं। तब तक काश्मीर घाटी का आधा भाग पाकिस्तानी आक्रान्ताओं के अधिकार में जा चुका था और वे श्रीनगर के द्वार पर खड़े थे। भारतीय सेनाओं ने अपने शौर्य और बलिदान से उन्हें खदेड़ दिया और श्रीनगर तथा शेष काश्मीर को बचा लिया।

इस घटनाचक्र से स्पष्ट है कि भारत का काश्मीर पर अधिकार केवल विलयपत्र के आधार पर ही नहीं है। विलयपत्र ने तो भारत को काश्मीर पर केवल कानूनी अधिकार दिया। वास्तविक अधिकार तो सेना ने वहाँ से पाकिस्तानियों को खदेड़कर दिलाया। इस सैनिक विजय को अनदेखी करना काश्मीर के शेष भारत के साथ सम्बन्ध की दृष्टि से न उचित है और न व्यावहारिक। जहाँ तक शेख अब्दुल्ला और उसके मुस्लिम अनुयायियों का सम्बन्ध था, उनका काश्मीर के भारत के साथ कानूनी विलय और सैनिक विजय में कोई रोल नहीं था। जब पाकिस्तानी आक्रमण शुरू हुआ तब शेख अब्दुल्ला अपने परिवार समेत काश्मीर से भागकर अपने साले के पास इन्दौर चला गया था और उसके अनुयायियों ने मकबूल शेरवानी का अपवाद छोड़कर जहाँ कहीं पाकिस्तानी आक्रान्ता पहुँचे, उनका साथ दिया था।

ऊपर दिये गए तथ्यों से स्पष्ट है कि काश्मीर का भारत के साथ

विलय शेख अब्दुल्ला और उनके संरक्षक पं० नेहरू के कारण नहीं, बल्कि उनके विरोध के बावजूद हुआ था।

विलय के बाद पं० नेहरू द्वारा काश्मीरी होने के नाते काश्मीर का मामला सरदार पटेल के कार्यक्षेत्र से बाहर रखकर अपने पास रखना एक बड़ी भूल थी। उससे भी बड़ी भूल शेख अब्दुल्ला को काश्मीर घाटी के अतिरिक्त शेष रियासत की सत्ता का सौंपना था।

उस समय भारतीय सेना पाकिस्तानी आक्रान्ताओं को सारी रियासत से खदेड़ने में सक्षम थी, परन्तु पं० नेहरू ने सेना के काम में भी अड़चनें डालीं। पहले उन्होंने काश्मीर का मामला जो भारत का आन्तरिक मामला था, संयुक्त राष्ट्रसंघ में ले जाकर उसका अन्तर्राष्ट्रीयकरण कर दिया और फिर ऐसे समय पर जब भारत की सेनाएँ सब मोर्चों पर आगे बढ़ रही थीं, युद्धबन्दी की घोषणा करके काश्मीर घाटी को छोड़कर रियासत का सारा मुस्लिम बहुल क्षेत्र पाकिस्तान को मानो तश्तरी पर रखकर दे दिया।

इन दो भूलों से भी पं० नेहरू की बड़ी भूल लोगों की भारत में रहने या पाकिस्तान में जाने की इच्छा का पता लगाने के लिए वहाँ जनमत कराने की पेशकश थी। यह पेशकश मुख्य रूप में काश्मीर घाटी के लिए थी क्योंकि सब कोई जानते थे कि जम्मू और लद्दाख के लोग तो भारत के साथ ही रहना चाहते हैं। यदि इस पेशकश को कार्यरूप दिया जाता तो काश्मीर घाटी के मुसलमानों की पाकिस्तान के पक्ष की मानसिकता स्पष्ट हो जाती।

जब पण्डित नेहरू को अपनी भूल का अहसास हुआ तो उन्होंने इस पेशकश से पीछे हटना चाहा। इससे शेख अब्दुल्ला को शह मिल गई। जो शेख अब्दुल्ला पूर्णरूपेण भारत पर निर्भर था, वह अब भारत को आँखें दिखाने लगा और पं० नेहरू को ब्लैकमेल करने लगा।

यदि सरदार पटेल जीवित रहते तो वे शेख अब्दुल्ला को उसकी वास्तविकता का ज्ञान कराकर काश्मीर समस्या को स्थायी रूप में हल कर देते। १९५० में उनके निधन से स्थिति बदल गई। शेख अब्दुल्ला के हौसले और बढ़ गए। वह काश्मीर और अपने लिए विशेष दरजे की माँग

करने लगा। डॉक्टर अम्बेदकर जो उस समय विधिमन्त्री थे शेख अब्दुल्ला को तुष्ट करने के लिए तैयार न हुए। उन्होंने शेख से स्पष्ट कह दिया कि भारत के विधिमन्त्री के नाते वे काश्मीर में ऐसी स्थिति नहीं बनने देंगे जिसमें भारत का उसपर कोई अधिकार न हो और उसे केवल जिम्मेदारियाँ ही उठानी पड़ें। परन्तु पं० नेहरू ने फिर शेख अब्दुल्ला का पक्ष लिया। संविधान की अस्थायी धारा ३७० पं० नेहरू की इसी दुर्बलता का परिणाम है।

इस समय स्थिति यह है कि काश्मीर भारत का है भी और नहीं भी। काश्मीर घाटी वस्तुतः एक छोटा पाकिस्तान बन चुकी है जहाँ से हिन्दू लगातार खदेड़े जा रहे हैं। हर जनगणना में काश्मीर घाटी में हिन्दुओं की जनसंख्या में लगातार कमी इसका परिणाम है। काश्मीर घाटी भारत के विरुद्ध अन्तर्राष्ट्रीय षड्यन्त्रों का अड्डा भी बन गई है। मुस्लिम देश इसे फिलस्तीन के समकक्ष कर रहे हैं और पाकिस्तान की पीठ ठोंक रहे हैं।

जम्मू और लद्दाख क्षेत्र, जिनका क्षेत्रफल काश्मीर घाटी से दस गुना बड़ा है, भारत में पूर्ण विलय चाहते हैं। वे न संविधान में धारा ३७० चाहते हैं और न विशेष दर्जा। उन्हें काश्मीर घाटी के साथ नत्थी किये रखने का भी कोई औचित्य नहीं। देर या सवेर जम्मू-काश्मीर का पुनर्गठन करके उन्हें भारत का अलग राज्य बनाना होगा।

ऊपर दिये गए तथ्यपूर्ण विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत को हिन्दू राज्य घोषित करने के विरोध में काश्मीर को तर्क के रूप में पेश करना गलत है। काश्मीर घाटी इतिहास में सदा भारत का अंग रही है। उसका हिन्दू राज्य भारत में भी सम्मानपूर्ण स्थान होगा परन्तु इसके लोगों और नेताओं को यह समझ लेना होगा कि काश्मीर भारत का अभिन्न और अविभाज्य अंग है; भारतीय क्षेत्र में पाकिस्तान का विस्तार नहीं।

यदि विभाजन के तुरन्त बाद खण्डित हिन्दुस्तान को हिन्दू राज्य घोषित कर दिया गया होता तो वे अनेक समस्याएँ, जिनके कारण भारत का राजनीतिक जीवन दूषित हो रहा है, और भारत की एकता और हिन्दू पहचान के लिए नया खतरा उत्पन्न हो गया है, पैदा ही न होतीं। परन्तु गलती सुधारने में कभी देर नहीं होती।

गत ३५ वर्षों में भारत के अन्दर और उसके इर्द-गिर्द के इस्लामी राज्यों में घटने वाले घटनाचक्र ने यह स्पष्ट कर दिया है कि १९४७ में मुसलमानों द्वारा लगाया जाने वाला नारा—"हँस के लिया पाकिस्तान, लड़ के लेंगे हिन्दुस्तान", केवल तात्कालिक भावना का उबाल नहीं था। यह खण्डित भारत की सीमा के दोनों ओर के मुसलमानों की चेतन मानसिकता की सही अभिव्यक्ति थी।

मौलाना आज़ाद जैसे मुसलमानों का चिन्तन भी ऐसा ही था। उनके चिन्तन और मुस्लिम लीग में केवल इतना अन्तर था कि मुस्लिम लीग वाले समझते थे कि सारे भारत के इस्लामीकरण का सरल रास्ता पहले उसके अन्तर्गत एक सर्वसत्ता सम्पन्न इस्लामी राज्य कायम करना और फिर उसके बल पर शेष भारत को हस्तगत करना है। मौलाना आज़ाद का चिन्तन जो उनकी आत्मकथा 'इण्डिया विन्स फ्रीडम' में स्पष्ट लक्षित होता है, कि विभाजन से इस्लाम का क्षेत्र सीमित हो जाएगा। उनकी दृष्टि में कांग्रेस के अन्दर रहकर अखण्ड भारत का इस्लामीकरण करने का प्रयत्न अधिक फलदायक हो सकता था। विभाजन के बावजूद मौलाना आज़ाद ने इस दिशा में अपने प्रयत्न जारी रखे। उन्होंने गांधीजी और पं० नेहरू की सहायता से भारत में रह गए मुसलमानों को पाकिस्तान जाने से रोका और स्वतन्त्र भारत के शिक्षा-मन्त्री के नाते उन्होंने मुसलमानों में साम्प्रदायिक अलगाव का भाव बनाए रखने के लिए अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय और उर्दू को पुनर्जीवित किया और जमायत-उल-उलेमा जैसी इस्लामी सिद्धान्तवाद की पोषक संस्थाओं को सरकारी संरक्षण देकर पुनः सक्रिय किया। मुसलमानों को अपना सुरक्षित 'वोट बैंक' बनाने हेतु नेहरूवादी कांग्रेस मौलाना के हाथ का खिलौना बन गई।

भारतीय जनसंघ को छोड़कर अन्य राजनीतिक दलों ने भी मुस्लिम मतों के लिए मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति अपनानी शुरू की। १९७७ में सत्ता में आई जनता पार्टी ने तो अल्पसंख्यक आयोग गठित करके मुसलमानों के भारतीयकरण और उनको राष्ट्रीय धारा में लाने का रास्ता ही बन्द कर दिया।

इस बीच कच्चे तेल की कीमतों के तेजी से बढ़ने के कारण तेल के

भण्डारों वाले मुस्लिम राज्यों के पास अथाह धन इकट्ठा होने लगा। उन्होंने इस धन का प्रयोग अफ्रीका और एशिया के गैर मुस्लिम देशों, विशेष रूप में हिन्दुस्तान के इस्लामीकरण के लिए करने का फैसला किया। इस प्रकार तेल इस्लाम के राजनीतिकरण और इसे नयी आक्रामक दिशा देने का कारण बन गया।

यह क्रम लीबिया से शुरू हुआ। कर्नल गद्दाफ़ी लीबिया के सुलतान को एक सैनिक क्रान्ति द्वारा उखाड़कर १९७० में सत्ता में आया। उसने अपनी स्थिति को तेल के धन और इस्लाम के बल पर सुदृढ़ करने की नीति अपनाई।

१९७३ में सऊदी अरब ने पश्चिमी देशों को तेल के निर्यात पर पाबन्दी लगाकर इस्लामी देशों की नव अर्जित धन शक्ति को नया आयाम दिया। उसका उद्देश्य पश्चिमी देशों पर फलस्तीनी मुक्ति मोर्चा के पक्ष में और इस्राइल के विरोध में दबाव डालना था। इस प्रकार अरबों के इस्राइल के विरुद्ध संघर्ष ने इस्लाम के काफिरों के विरुद्ध ज़िहाद का रूप लेना शुरू किया।

इस समय संसार के खनिज तेल वाले देश के संगठन 'ओपेक' के तेरह सदस्य देशों में ग्यारह मुस्लिम देश हैं। वे सभी देश जिनमें तेल के भण्डार अत्यधिक और जनसंख्या बहुत कम है, अरबी भाषा-भाषी हैं। इनमें भी सबसे अधिक तेल भण्डार वाले देश लीबिया और सऊदी-अरब हैं। ये दोनों इस्लामिक सिद्धान्तवाद के अगुआ हैं।

इन तेल वाले मुस्लिम देशों के पास अब दो प्रकार की शक्ति इकट्ठी हो गई है। तेल की कीमत प्रति बैरल एक डॉलर से तीन डॉलर से भी अधिक हो जाने के कारण इनके पास अथाह पूँजी इकट्ठी हो गई है। इसके फलस्वरूप सारे संसार में इस्लामिक चेतना उग्र रूप ले रही है। डेनियल पाइप ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि, "इस तेलजनक समृद्धि के कारण गरीब मुसलमानों के मनों में इस्लाम की एक नई तस्वीर जगी है। वह तस्वीर है धन से लोट-पोट अरब के इस्लामी शेखों की। अब सभी मुसलमान अपना रिश्ता इस्लामी अरब से कायम करना चाहते हैं। इसी भाव ने विभिन्न देशों में इस्लामी आन्दोलनों को जन्म दिया है। इन आन्दोलनों को बढ़ावा

देने में सोवियत रूस से जुड़ा लीबिया और अमेरिका से जुड़ा सऊदी-अरब प्रमुख भूमिका अदा कर रहे हैं। इन दोनों के ढंग अलग-अलग हैं। लीबिया उग्रवादी आन्दोलनों को चलाने में सहयोग देता है और घुसपैठियों तथा आतंकवादियों को प्रशिक्षण देता है। सऊदी-अरब उन्हें आर्थिक सहायता देता है, और लीबिया उन्हें शस्त्र देता है। सऊदी-अरब इस्लाम के लिए मित्र और साथी जुटाता है और लीबिया इस्लाम के तथाकथित शत्रुओं को गिराता है। एक इस्लामवाद को प्रोत्साहन देता है और दूसरा इस्लाम-वाद के विरोधियों को दण्ड देता है।"

सऊदी-अरब इस्लामी आन्दोलनों और संस्थाओं को खुलेआम धन दे रहा है। इसके द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय इस्लामिक कान्फ्रेंस का गठन किया गया है जिसके अन्तर्गत इस्लामी देशों के प्रमुख और विदेश मन्त्री समय-समय पर मिलते रहते हैं। इस कान्फ्रेंस ने इस्लामी समाचार और दूर संचार संस्था, इस्लामी बैंक और इस्लामी कल्चर केन्द्रों जैसे अनेक संगठनों का निर्माण किया है। इसके द्वारा मक्का में इस्लामी विश्वविद्यालय, इस्लामिक कॉन्सिल ऑफ यूरोप और इस्लामी सुरक्षा और तकनीकी संस्थान भी स्थापित हुए हैं। इसने मक्का में 'राबिता-एल-आलम-ए-इस्लामी' नामक संगठन भी बनाया है। खरबों रुपयों का उसका सारा खर्च सऊदी-अरब देता है। हिन्दुस्तान में पिछड़े हुए हरिजन हिन्दुओं को मुसलमान बनाने में इस संगठन का मुख्य हाथ है। इससे सम्बन्धित कई अन्य संगठन हैं जिनका काम संसार भर में पुरानी मस्जिदों का नवीकरण करना, नई मस्जिदें और मदरसे बनाना तथा इस्लामी शिक्षा और सांस्कृतिक संस्थान कायम करना है।

इन पैट्रो-डॉलरों से चलने वाले सभी इस्लामी संस्थानों का हिन्दुस्तान पर विशेष ध्यान है। वे हिन्दू सहिष्णुता और भारत सरकार की मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति का पूरा-पूरा लाभ उठाकर यहाँ मुस्लिम जनसंख्या तेजी से बढ़ाने का प्रयास कर रहे हैं।

सऊदी-अरब की अपेक्षा लीबिया अधिक खुलकर काम कर रहा है। डेनियल पाइप के अनुसार, "यह हिन्दुस्तान में दंगे कराने वाले उग्रवादी मुस्लिम संगठनों और थाइलैंड और फिलिपाइन्स के विद्रोहियों को हर

प्रकार की सहायता देता है।"

इस नवार्जित धन और वोट शक्ति का प्रयोग, मुस्लिम देश राष्ट्रसंघ इत्यादि अरब राष्ट्रीय संगठनों में इस्राइल और काश्मीर जैसे प्रश्नों पर मुस्लिम-पक्ष को प्रभावी बनाने और इनके सैनिक हल के लिए शक्ति जुटाने के लिए भी कर रहे हैं। वे फिलिस्तीनियों के इस्राइल के विरुद्ध और पाकिस्तान के काश्मीर के मामले में हिन्दुस्तान के विरुद्ध अभियान को इस्लामी रंग देने में सफल हो गए हैं।

पैट्रो-डॉलरों से सम्बल प्राप्त करनेवाले इस्लामी देशों की राजनीतिक और सैनिक क्षमता बहुत है। संसार के सत्ताईस देशों में मुस्लिम जनसंख्या ९० प्रतिशत के लगभग है। पच्चीस देशों में उनकी जनसंख्या २५ प्रतिशत से लेकर ८९ प्रतिशत तक है और तीस अन्य देशों में उनकी संख्या ४ प्रतिशत से लेकर २४ प्रतिशत तक है। हिन्दुस्तान में वे सात करोड़, सोवियत रूस में साढ़े चार करोड़ और चीन में दो करोड़ के लगभग हैं। इस समय वे भारत की जनसंख्या का लगभग ११ प्रतिशत हैं। तुर्की इत्यादि से जर्मनी और फ्रांस में गए हुए मुस्लिम कामगारों की संख्या भी कई लाख है। इस प्रकार इस्लामी देशों के पैट्रो-डालरों के बल पर चलाये जाने वाले इस्लामी सिद्धान्तवादी और विघटनकारी आन्दोलन लगभग नब्बे देशों को अन्दर से प्रभावित कर सकते हैं।

हिन्दुस्तान गत कई शताब्दियों से इस्लामिक गतिविधियों का एक प्रमुख केन्द्र रहा है। कई शताब्दियों तक हिन्दुस्तान के अनेक भागों पर राज करने के बावजूद भारत का मिस्र और ईरान की तरह का इस्लामीकरण न हो सका। संसार के मुस्लिम नेता इसे इस्लाम की विफलता मानते हैं। भारत में विदेशी उद्गम के मुसलमानों को यह बात विशेष रूप में खलती है। जब उन्हें लगा कि अंग्रेज भारत को छोड़कर चले जाएँगे और लोकतान्त्रिक स्वतन्त्र भारत में सत्ता हिन्दुओं के हाथ में आ जाएगी तो इनमें से कुछ ने हिन्दुस्तान को छोड़कर इस्लामी देशों में जा बसने का विचार किया। ऐसे लोगों का दृष्टिकोण कवि हाली ने इन शब्दों में व्यक्त किया था—

"रुखसत ए हिन्दुस्तान, गुलिस्तान बेखज़ान,
बहुत दिन रह चुके हम तेरे विदेशी मेहमान।"

परन्तु हिजरत करके जो मुसलमान अफ़गानिस्तान, ईरान, अरब और तुर्की में गए, उन्हें शीघ्र यह पता लग गया कि वे वहाँ अवांछित मेहमान हैं। वहाँ की जलवायु भी उन्हें रास न आई। इसलिए उनमें से बहुत से फिर भारत लौट आए। तब उन्होंने हिन्दुस्तान के अन्तर्गत अलग इस्लामी राज की आवाज उठानी शुरू की।

यही कारण था कि हिन्दुस्तान के मुसलमान साधारणतया आजादी के आन्दोलन से अलग रहे। फलस्वरूप भारत में यूरोपीय उपनिवेशवाद के विरुद्ध संघर्ष मुख्यतः हिन्दुओं का संघर्ष रहा। प्रो० अली मजूराइ के अनुसार, "जबकि हिन्दू अंग्रेजों के विरुद्ध आजादी की लड़ाई लड़ रहे थे, भारत के मुसलमान आजादी के बाद सम्भावित हिन्दू आधिपत्य के विरुद्ध संघर्ष कर रहे थे। उनकी अंग्रेजों के विरुद्ध आजादी की लड़ाई में कोई रुचि नहीं थी।"

इन्हीं प्रो० अली के अनुसार, "विभाजन के बाद खण्डित हिन्दुस्तान में रह गए मुसलमानों की भारत और पाकिस्तान के बीच युद्ध के मामले में आस्था बँटी हुई थी; क्योंकि आणविक शक्ति के उपार्जन से भारत की शक्ति पाकिस्तान के मुकाबले में बढ़ सकती है, इसलिए भारत के मुसलमान नहीं चाहते कि भारत आणविक शक्ति बने।" चीन से युद्ध में हार के समय में भी भारतीय मुसलमानों का दृष्टिकोण इसी भाव से प्रभावित था क्योंकि उसके पहले के भारत-पाक संघर्ष में भारत का पलड़ा भारी रहा था और क्योंकि काश्मीर का भारत के पास होना भारत की पाकिस्तान से अधिक शक्ति का परिचायक है, इसलिए चीन के हाथों भारत की पराजय पर मुसलमानों के दुःखी होने की अपेक्षा करना ऐसे ही है जैसे सीरिया के यहूदियों से गोलन पहाड़ियों पर इस्राइल का कब्जा होने से दुःखी होने की अपेक्षा करना है।

प्रो० अली द्वारा भारत में रहने वाले मुसलमानों की मानसिकता का सीरिया में रहने वाले यहूदियों की मानसिकता से तुलना करना महत्त्वपूर्ण और विचारणीय है। वे स्वयं मुसलमान हैं और इतिहास और राजनीति के ज्ञाता हैं। वे यह मानकर चलते हैं कि भारत में रहने वाले मुसलमानों की सहानुभूति उसी प्रकार पाकिस्तान और अन्य इस्लामी देशों के साथ

है जिस प्रकार सीरिया और अन्य देशों में रहने वाले यहूदियों की सहानुभूति इस्राइल के साथ है। निश्चित ही प्रो० अली भारत में रहने वाले मुसलमानों की मानसिकता श्रीमती इन्दिरा गांधी, श्री चन्द्रशेखर, श्री बहुगुणा और श्री अटलबिहारी वाजपेयी से बेहतर जानते और समझते हैं। यदि हिन्दुस्तान की सरकार और राजनेता आने वाले दिनों में हिन्दुस्तान की विशिष्ट सांस्कृतिक और राजनीतिक पहचान कायम रखना चाहते हैं तो आवश्यक है कि वे इस वस्तुस्थिति को स्वीकार करें और मुसलमानों के प्रति अपनी नीति और दृष्टिकोण बदलें। इस्लाम के तेल के बल पर फिर उभरे आक्रान्ता रूख की पृष्ठभूमि में यह और भी आवश्यक हो गया है।

प्रो० अली के शब्दों में, "१९७० के बाद इस्लाम और इस्लामी देशों में तीन बातें स्पष्ट रूप में दिखाई देने लगी हैं— पहली है इस्लाम का राजनीतिकरण, दूसरा है इसका पैट्रोलीकरण और तीसरा है इसका अणुशक्ति बनने की तीव्र इच्छा। पहले का सम्बन्ध मुस्लिम जगत् की नई राजनीतिक चेतना से है, दूसरे का इस्लाम का प्रभाव-क्षेत्र बढ़ाने में पैट्रो-डालर शक्ति की भूमिका से है और तीसरे का युद्धक्षेत्र में इस्लाम की अपनी अणुशक्ति के विकास से है। इस्लाम का राजनीतिकरण का उदाहरण ईरान ने प्रस्तुत किया है, इसके पैट्रोलीकरण का उदाहरण अरब देश हैं और इसके आणविकीकरण का केन्द्र पाकिस्तान है।"

"किसी भी मज़हब के अनुयायियों की राजनीतिक चेतना के दो कारण होते हैं—पहला असुरक्षा का भाव और दूसरा आत्मविश्वास का बढ़ना। इस्लामिक चेतना के उभार में इन दोनों तत्त्वों का हाथ है। मुस्लिम जगत् ने यह समझ लिया है कि यह संसार के आर्थिक जीवन और शक्तिशाली गैर-मुस्लिम राज्यों के भाग्य को प्रभावित कर सकने की क्षमता रखता है। इस्लामी जगत् के इस नए आत्मविश्वास का भौतिक आधार तेल है और आध्यात्मिक आधार इस्लामिक सिद्धान्तवाद। दोनों के मेल से इस्लाम ने संसार भर में इस्लामी हितों की रक्षा और गैर-इस्लामी देशों को इस्लाम के प्रभाव में लाने के लिए इस्लामी ज़िहाद शुरू कर रखा है। तीसरी दुनिया का अन्तर्राष्ट्रीय नेतृत्व मुसलमानों के हाथों में आ गया है।"

"इस्लाम के आणविकीकरण में अरब जगत् की इस्राइल के प्रति और

पाकिस्तान की भारत के प्रति शत्रुता ने प्रमुख भूमिका अदा की है। पाकिस्तान का अणुबम बनाने का संकल्प १९७४ में भारत द्वारा आणविक विस्फोट से प्रभावित हुआ है। भारत की इस घटना की पाकिस्तानियों में प्रतिक्रिया का आधार उनकी सांस्कृतिक और मजहबी अनुभूति है। अणुबम बनाने के प्रयत्न में पाकिस्तान का मुस्लिम-अभिमान और सांस्कृतिक महत्वाकांक्षा झलकती है। पाकिस्तानियों की मानसिकता एक ओर सकारात्मक इस्लामी भाव और दूसरी ओर हिन्दुइज्म के प्रति नकारात्मक भाव का मिश्रण है। यही मानसिकता पाकिस्तान के अणुबम बनाने के प्रोग्राम तथा उसकी राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय नीतियों की प्रेरक शक्ति है।"

अपनी समाज रचना और सामाजिक मूल्यों के कारण इस्लाम जन-संख्या के मामले में भी हिन्दुस्तान जैसे गैर-मुस्लिम देशों पर बाजी मार रहा है। बहु-विवाह, गैर-मुसलमानों को मुसलमान बनाने के मजहबी कर्तव्य और परिवार नियोजन का विरोधी होने के कारण मुसलमान जनसंख्या तेजी से बढ़ती है। फलस्वरूप एक ओर इस्लामी जनसंख्या का बम भी न केवल भारत में अपितु सोवियत रूस में भी तैयार हो रहा है। इसके कारण भारत के मुसलमानों में सारे हिन्दुस्तान का इस्लामीकरण करके इसे इस्लामी राज्य बनाने की महत्वाकांक्षा बढ़ी है। वे अधिक बच्चे पैदा करके और पैट्रो-डॉलरों और खाड़ी के देशों में नौकरियाँ दिलाने के लालच से हिन्दू समाज के कमजोर वर्गों को मुसलमान बनाकर अपनी जन-संख्या बढ़ाने के काम में जुट गए हैं।

इस्लाम और पानइस्लामवाद के पुनरोदय का सारे संसार पर प्रभाव पड़ने लगा है। ईरान, पाकिस्तान और बंगला देश जैसे इस्लामी देशों पर इसका प्रभाव उनकी राजनीति के पूर्ण इस्लामीकरण और कानूनी, व्यक्ति-गत आचरण और गैर-मुस्लिमों के साथ व्यवहार के मामले में सातवीं शताब्दी के अरब के युग में वापस जाने के योजनाबद्ध अभियान के रूप में निकला है। यह स्थिति मलयेशिया में भी, जो केवल ५१ प्रतिशत जनसंख्या के बल पर इस्लामी देश बन बैठा है, परिलक्षित हो रही है।

जिन देशों में मुसलमान अच्छे अल्पमत में हैं या जहाँ के कुछ भागों में

उनका बहुमत है, वहाँ पर मुसलमान इस्लामी देशों की सहायता से स्वायत्तता के नाम पर अपने अलग राज्य बनाने के लिए आन्दोलन चलाने लगे हैं। फिलीपाइन्स के कुछ भागों में मुसलमान लीबिया और सऊदी-अरब की सहायता से वहाँ की सरकार और अपने ईसाई पड़ोसियों के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह कर रहे हैं। थाईलैण्ड में मलयेशिया के साथ लगने वाले और बर्मा के बंगलादेश के साथ लगने वाले मुस्लिम बहुल क्षेत्रों में वहाँ की बौद्ध सरकारों के विरुद्ध वे सशस्त्र अलगाववादी आन्दोलन चला रहे हैं।

पश्चिमी एशिया में लेबेनान जो कल तक ईसाई और मुसलमान सह-अस्तित्व का असाधारण नमूना था, अब वह मुसलमानों और ईसाइयों में गृहयुद्ध की आग में झुलस रहा है। गत पाँच वर्षों में वहाँ दो लाख के लगभग ईसाई और मुसलमान मारे जा चुके हैं। सीरिया और अन्य इस्लामी देशों की सहायता से मुसलमान लेबेनान को भी इस्लामी देश बनाना चाहते हैं। ईसाई इसका प्रतिरोध कर रहे हैं। साइप्रस में १८ प्रतिशत मुस्लिम अल्पमत ने तुर्की की सैनिक सहायता से उस द्वीप की ३० प्रतिशत भूमि पर बलात् अधिकार कर लिया है और वे प्राचीन द्वीप राज्य ईसाई और मुसलमान दो अलग-अलग राज्यों में बँट गया है।

उत्तर और मध्य अफ्रीका के अधिकांश देशों में ईसाई और मुसलमान युद्धरत हैं। नाइजीरिया, माण्टिनिया, चड इत्यादि देशों में वर्षों से गृहयुद्ध चल रहा है। नाइजीरिया में लगभग पाँच लाख ईसाई और मुसलमान मारे जा चुके हैं। जहाँ मुसलमान केवल १० प्रतिशत हैं, उसे उगांडा के ईदी अमीन ने सत्ता हथिया कर मुस्लिम राज्य घोषित कर दिया था। अब भी वहाँ ईसाइयों और मुसलमानों के बीच संघर्ष चल रहा है। मध्य अफ्रीका के कई राज्यों के राज्याध्यक्षों और नरेशों को पैट्रो-डॉलरों के बल पर मुस्लिम बना लिया गया है, या बनाने का प्रयत्न चल रहा है। कोई दिन नहीं बीतता जब इन देशों में अनेक ईसाई मुस्लमानों के हाथों और अनेक मुसलमान ईसाइयों के हाथों न मारे जायें।

परन्तु इस उभरते हुए पान इस्लामवाद का सबसे बड़ा निशाना हिन्दुस्तान रहा है। १९४७ में भारत का विभाजन करके इसके अन्तर्गत पाकिस्तान के रूप में इस्लामी राज्य का निर्माण मुगल साम्राज्य के पतन

के बाद हिन्दुस्तान में इस्लामी आन्दोलन की सबसे बड़ी विजय थी। अब इसका उद्देश्य खंडित हिन्दुस्तान का भी इस्लामीकरण करके इसे पाकिस्तान की तरह का इस्लामी राज्य यानि 'दार-उल-इस्लाम' बनाना है। भारत में इस उद्देश्य से कार्यरत मुस्लिम संस्थाओं और पाकिस्तान के एजेन्टों को मुस्लिम जगत्, विशेष रूप से लीबिया और सऊदी-अरब से हर प्रकार का सहयोग मिल रहा है।

इस हेतु तीन प्रकार के प्रयत्न चल रहे हैं। पहला प्रयत्न हिन्दुस्तान की अधिक से अधिक भूमि को काटकर पाकिस्तान या बंगला देश के इस्लामी राज्यों के साथ मिलाना है। गत पैंतीस वर्षों में भारत के साथ चार बार युद्ध करके पाकिस्तान भारत की भूमि के कई बड़े टुकड़ों को हड़प कर चुका है। १९४७-४८ के प्रथम भारत-पाक युद्ध में पाकिस्तान जम्मू-कश्मीर राज्य के तीस हजार वर्गमील भारतीय क्षेत्र को हड़पने में सफल हुआ है। इस क्षेत्र में गिलगित, पामीर और बल्तिस्तान का वह भाग भी है जिसमें से अब पाकिस्तान ने चीन के साथ जोड़ने वाली सामरिक महत्त्व की 'सिल्क रोड' बनाई है। १९६४ में इसने भारत के कुछ क्षेत्र पर बिना किसी कारण के हमला करके कच्छ का तीन सौ वर्गमील का क्षेत्र हथिया लिया। १९६५ के युद्ध का लाभ उठाकर इसने पाकिस्तान में भारतीय नागरिकों की करोड़ों रुपये की सम्पत्ति और औद्योगिक संस्थान जब्त कर लिये और पूर्वी बंगाल और सिन्ध से लाखों हिन्दुओं को खदेड़ दिया। १९७१ के चौथे युद्ध में भारतीय सेना की निर्णायक विजय के बावजूद भारत के राजनीतिक नेतृत्व की मूर्खता के कारण पाकिस्तान जम्मू के सामरिक महत्त्व के छम्ब-जोड़ियाँ क्षेत्र को पाकिस्तान में मिला पाया और वहाँ के पचास हजार हिन्दुओं को शरणार्थी बनाकर वहाँ से निकाल दिया। इस युद्ध में भारत ने पाकिस्तान के न केवल ९३,००० सैनिकों को बन्दी बनाया था अपितु इसका ५,००० वर्गमील क्षेत्र भी अपने अधिकार में कर लिया था। परन्तु शिमला सन्धि के द्वारा श्रीमती इन्दिरा गांधी ने इस सैनिक विजय को राजनीतिक पराजय में बदल डाला। पाकिस्तान को इसके बन्दी और विजित क्षेत्र तो वापस कर दिये गए परन्तु छम्ब-जोड़ियाँ का भारतीय क्षेत्र पाकिस्तान के हाथ में ही

रहने दिया गया।

हिन्दुस्तान के राजनीतिक नेतृत्व द्वारा प्रदर्शित इस अयथार्थवादिता, अदूरदर्शिता और भारत और हिन्दुओं के हितों के प्रति उपेक्षा भाव के कारण ही पाकिस्तान के स्वर्गीय प्रधान मन्त्री श्री भुट्टो ने कहा था कि, "हिन्दु अपना राज्य चलाने के अयोग्य हैं।" यह सारे राष्ट्र और विशेष रूप में भारत के वीर जवानों का अपमान है। इन भूलों के लिए हिन्दुस्तान के राजनेताओं की जितनी भी भर्त्सना की जाय, कम है।

१९७१ में पाकिस्तान के दो टुकड़े हो जाने और पाकिस्तान की सैनिक दुर्बलता स्पष्ट हो जाने के बाद से सारा मुस्लिम जगत् पाकिस्तान को शक्तिशाली बनाने के लिए उसे पूरा सहयोग दे रहा है। इस्लामिक विकास बैंक, इस्लामिक शस्त्र बैंक और अन्य अन्तर्राष्ट्रीय इस्लामी संस्थाओं का पूरा सहयोग पाकिस्तान को मिल रहा है। सऊदी-अरब और जोर्डन सहित अनेक अरब इस्लामी देशों के लड़ाकू विमानों और टैंकों के चालक पाकिस्तानी हैं। भारत के साथ भावी किसी युद्ध में उनकी वायुसेना और टैंक पाकिस्तान के काम आ सकते हैं। सऊदी-अरब की आर्थिक सहायता के बल पर पाकिस्तान अमरीका से आधुनिकतम विमान और शस्त्र भी बड़ी मात्रा में खरीद रहा है।

सैनिक क्षेत्र में मुस्लिम जगत् की सबसे बड़ी उपलब्धि पाकिस्तान द्वारा अणु बम और अणु शस्त्र बनाने की क्षमता प्राप्त करना है। पाकिस्तान द्वारा निर्मित किये जाने वाले अणु बमों के दो ही निशाने हैं — हिन्दुस्तान और इस्राइल। क्योंकि इस्लामिक बम पाकिस्तान में बन रहा है इसलिए इसका प्रयोग सम्भवतः पहले हिन्दुस्तान पर ही होगा।

१९७७ के बाद पाकिस्तान की स्थिति हिन्दुस्तान के मुकाबिले में एक और ढंग से भी मजबूत हुई है। १९७७ और १९८० के बीच के जनता पार्टी के राज्यकाल में इसके विदेश मन्त्री की पाकिस्तान परस्ती और पाकिस्तानियों को भारत में आने की नई सुविधाओं के कारण पाकिस्तान लगभग एक लाख सुशिक्षित गुप्तचरों और तोड़-फोड़ करने वालों को भारत में भेज पाया। इस कारण श्री बाजपेयी भले ही मुसलमानों की आँखों के तारे बन गए हों और उनके सहयोग से लोकसभा का चुनाव

जीत गए हों परन्तु उनकी भूल के कारण सुरक्षा की दृष्टि से हिन्दुस्तान को अन्दर से स्थायी खतरा पैदा हो गया है।

इन कारणों से भारत में रहने वाले मतान्ध मुसलमानों के हौंसले बहुत बढ़ गए हैं। १९८१ में हैदराबाद में हुए जमाते स्लामी के सम्मेलन में हिन्दुस्तान का इस्लामीकरण करने का और ३०-३१ दिसम्बर, १९८१ को दिल्ली में हुए मुस्लिम युवा सम्मेलन में फलस्तीना गुरिल्लों की तरह शस्त्र उठाने का खुला आह्वान इस दृष्टि से दिशा-दर्शक है। अब यह स्पष्ट दिखने लगा है कि अब जब कभी पाकिस्तान भारत पर हमला करेगा उसे भारत के अन्दर के कुछ मुसलमानों का संगठित सहयोग मिलेगा। केन्द्रीय गुप्तचर विभाग के एक वरिष्ठ अधिकारी के अनुसार यह बात एक मुस्लिम नेता ने रुहेलखण्ड क्षेत्र के उच्च अधिकारियों के सामने कही। १९८१ में बरेली के लोकसभा के उपचुनाव में मैंने स्वयं भी देहाती क्षेत्र के एक मुसलमान भाई को यह कहते सुना कि "शीघ्र ही यह फैसला हो जाएगा कि हिन्दुस्तान काशी रहेगा या काबा बनेगा।"

इस योजना का दूसरा अंग पाकिस्तान और बंगला देश के निकटवर्ती भारतीय क्षेत्रों में घुसपैठ कर उन्हें मुस्लिम बहुसंख्यक क्षेत्र बनाना है। आसाम, त्रिपुरा, बिहार, पश्चिमी बंगाल, कच्छ और जम्मू-काश्मीर राज्य का जम्मू-क्षेत्र इस योजना के प्रमुख निशाने हैं। इन मुस्लिम घुसपैठियों ने इन सभी क्षेत्रों में, विशेष रूप से आसाम में भारत की एकता और सुरक्षा की दृष्टि से गम्भीर समस्या पैदा कर दी है।

इस योजना का तीसरा अंग योजनाबद्ध ढंग से भारत में मुसलमानों की जनसंख्या बढ़ाना है ताकि कालान्तर में सारा हिन्दुस्तान मुस्लिम बहुल देश बन जाय।

१९४७ में ब्रिटिश भारत में मुसलमानों की जनसंख्या २२ प्रतिशत के लगभग थी। देशी रियासतों में उनकी जनसंख्या १० प्रतिशत के लगभग थी। विभाजन के बाद खण्डित भारत में वे ७ प्रतिशत के लगभग रह गए। तब से बहु-विवाह, परिवार नियोजन का योजनाबद्ध विरोध, घुसपैठ और धर्मान्तरण के बल पर उनकी जनसंख्या अनुपातत: बहुत तेजी से बढ़ी है। १९५१ की जनगणना में हिन्दुस्तान में मुसलमानों की संख्या लगभग ३

करोड़ थी, १९६१ में यह ४ करोड़ २० लाख और १९७१ में ५ करोड़ ७० लाख हो गई। १९८१ की जनगणना में उनकी संख्या ८ करोड़ के निकट जा पहुँची है और देश की कुल जनसंख्या में उनका अनुपात अब ११ प्रतिशत हो गया है।

मक्का में केन्द्रित इस्लामिक कॉन्फ्रेंस ने कुछ वर्षों से पिछड़े वर्गों का धर्मान्तरण करके भारत में मुसलमानों की जनसंख्या बढ़ाने का योजनाबद्ध अभियान चला रखा है। इसका पहला खुला प्रमाण १९८१ में तमिलनाडु प्रदेश के मीनाक्षीपुरम गाँव में मिला। वहाँ हजारों हिन्दुओं को लालच देकर मुसलमान बना लिया गया और गाँव का नाम भी बदलकर रहमतनगर कर दिया गया। इस्लामिक कल्चरल सेण्टर, लन्दन के, जो इस धर्मान्तरण के आन्दोलन का नियन्त्रण करता है, अनुसार १९८१ में इस प्रकार के सामूहिक धर्मान्तरण से ५०,००० से अधिक दलित हिन्दू मुसलमान बनाए गए। उनमें कुछ उच्च सरकारी अधिकारी भी शामिल हैं।

एक और ढंग से भी मुस्लिम आबादी बढ़ रही है। चूँकि मुसलमानों को साँझे सिविल कानून की परिधि से बाहर रखा गया है और वे वैध रूप में चार पत्नियाँ रख सकते हैं, कई मनचले समृद्ध हिन्दू युवक दूसरा विवाह करने के लिए मुसलमान बन रहे हैं। पिछले दिनों फिल्म अभिनेता धर्मेन्द्र द्वारा हेमामालिनी से दूसरा विवाह करने के लिए मुसलमान बनने के समाचार से इस प्रकार होने वाले धर्मान्तरण की ओर सारे देश का ध्यान गया है।

इस प्रकार के धर्मान्तरण का अति खतरनाक प्रभाव लद्दाख क्षेत्र में देखने को मिलता है। जम्मू-काश्मीर रियासत के इस ३६,००० वर्गमील वाले विस्तृत क्षेत्र में १९४७ तक ९० प्रतिशत से अधिक लोग बौद्ध थे। उस क्षेत्र में जीवन-यापन के साधन अति सीमित होने के कारण बहु-पति विवाह की प्रथा थी। शेख अब्दुल्ला के सत्ता में आने के बाद काश्मीरी मुसलमान लद्दाख में बड़ी सख्या में बसने लगे और बौद्ध स्त्रियों से विवाह करने लगे फलस्वरूप वहाँ मुसलमानों की संख्या तेजी से बढ़ी है। ज्योंही लद्दाख मुस्लिम बहुल क्षेत्र हो जाएगा, पाकिस्तान काश्मीर की तरह उसपर भी अपना दावा करने लगेगा। इस प्रकार देश के सामरिक दृष्टि से एक अति

महत्त्वपूर्ण क्षेत्र के हिन्दुस्तान से स्थायी रूप में कट जाने का खतरा पैदा हो गया है। इसको बचाने के लिए आवश्यक है कि लद्दाखियों की चिरकाल से उठायी जाने वाली माँग कि, लद्दाख को काश्मीर से अलग करके केन्द्र शासित राज्य बनाया जाए, को तुरन्त मान लिया जाय।

मुस्लिम परिवारों में बच्चों की संख्या के सर्वेक्षण के परिणाम आँखें खोलने वाले हैं। हाल में संसद के सदस्यों के परिवारों का सर्वेक्षण करने पर पता लगा है कि मुस्लिम सदस्यों के परिवारों में १० या इससे अधिक बच्चे हैं जबकि हिन्दू सदस्यों के परिवार दो या तीन बच्चों तक सीमित हैं। निम्न वर्ग के मुस्लिम परिवारों में बच्चों की संख्या कहीं-कहीं पचास तक जाती है। मुल्ला लोग मुसलमानों को मज़हबी फर्ज के रूप में अधिक बच्चे पैदा करने की प्रेरणा देते रहते हैं ताकि मुस्लिम जनसंख्या तेजी से बढ़ सके।

इस दृष्टि से मुस्लिम महिलाओं की स्थिति अति दयनीय है। उनका न कोई अधिकार है और उनकी न किसी को चिन्ता है। उनको सन्तान देने वाली मशीनों के रूप में प्रयोग किया जाता है। तलाक की तलवार उनके सिर पर सदा लटकती रहती है। उन्हें अनेक सौतों को सहन करना पड़ता है। यह एक विडम्बना है कि श्रीमती गांधी स्वयं एक महिला होते हुए भी मुस्लिम स्त्रियों को बहु-विवाह के अभिशाप से बचाने के लिए मुसलमानों पर साँझा सिविल कानून लागू करने को तैयार नहीं। उन्हें मुसलमानों के वोट चाहिए। मुसलमानों के वोट मुल्लाओं की जेब में रहते हैं, इसलिए उन्हें मुल्लाओं की चिन्ता है, मुस्लिम महिलाओं की नहीं।

इस समय स्थिति यह है कि मुस्लिम जगत् हिन्दुस्तान में मुसलमानों की जनसंख्या बढ़ाने और उन्हें प्रबल राजनीतिक शक्ति बनाने के लिए हजारों करोड़ रुपये खर्च कर रहा है। पूरे समय के लिए काम करने वाले वेतनभोगी मुल्लाओं और कार्यकर्ताओं की एक फौज तैयार की गई है। ये लोग गाँव-गाँव में जाकर इस्लामी सिद्धान्तवाद का प्रचार कर रहे हैं, नई मस्जिदें बना रहे हैं, पुरानी मस्जिदों का नवीकरण कर रहे हैं। जगह-जगह कब्रें बनाकर सरकारी भूमि पर अनधिकृत कब्जा करके मजार बना रहे हैं और तबलीग़ इत्यादि अनेक ढंगों से मुसलमानों की जनसंख्या और उन

का प्रभाव-क्षेत्र बढ़ाने में लगे हुए हैं। उन सबका एकमात्र उद्देश्य हिन्दुस्तान को यथाशीघ्र मुस्लिम बहुल देश बनाना है।

ज्यों ही हिन्दुस्तान में मुसलमानों की जनसंख्या ५० प्रतिशत के निकट पहुँचेगी, मलयेशिया के मॉडल पर इसे इस्लामिक राज्य घोषित करने की माँग जोर से उठाई जाएगी। इस माँग के पीछे पाकिस्तान और बंगला देश की सैनिक शक्ति भी होगी और देश के अन्दर से उनके एजेंटों का सशस्त्र दबाव भी। तब भारत में न केवल तथाकथित सेक्यूलरिज्म और मज़हबी स्वतन्त्रता का, अपितु लोकतन्त्र, विचार-स्वातन्त्र्य और धर्मरूपी उन नैतिक मूल्यों का भी अन्त होगा जिनके कारण हिन्दुस्तान इतिहास के थपेड़ों के बावजूद अभी तक अपना अस्तित्व बनाए रख सका है। यह कोई भयावह काल्पनिक चित्र नहीं, यह एक कटु और क्रूर वास्तविकता है। जिसकी ओर हिन्दुस्तान तेजी से बढ़ रहा है। यदि इसकी उपेक्षा की गई तो हिन्दुस्तान और उसकी महान् संस्कृति का वही हश्र हो सकता है जो यूनान और मिस्र जैसे प्राचीन देशों और उनकी संस्कृतियों का हो चुका है।

अतः हिन्दुस्तान के सामने दो विकल्प हैं, या तो यह इस स्थिति की ओर से कबूतर की तरह आँखें बन्द कर ले और सारे हिन्दुस्तान को बड़े पाकिस्तान में परिवर्तित होने दे। यह आत्महत्या का मार्ग है। इस्लामवादी यह समझ चुके हैं कि हिन्दुओं की श्रेष्ठ संस्कृति के कारण उन्हें इस्लाम में आत्मसात् करना सम्भव नहीं। उन्होंने यह भी देखा है कि किस प्रकार हिन्दुओं ने अफगानिस्तान, पंजाब और सिन्ध के शताब्दियों के मुस्लिम राज्य और दबाव के बावजूद अपनी संस्कृति और जीवन-पद्धति को बनाए रखा। इसलिए यदि वे अब हिन्दुस्तान को हस्तगत करने में सफल हो गए तो वे सारे हिन्दुओं को बलात् मुसलमान बना डालेंगे या उनका नरसंहार कर देंगे। उनकी स्थिति वह होगी जो पाकिस्तान में हुई है और बंगला देश में हो रही है।

दूसरा विकल्प है हिन्दुस्तान को हिन्दू राज्य घोषित करना। हिन्दुस्तान को हिन्दू राष्ट्र बनाए रखने और इसकी संस्कृति और जीवन-पद्धति और हिन्दू पहचान को कायम रखने का यही एकमात्र प्रभावी और पक्का

रास्ता है।

वर्तमान स्थिति लम्बे काल तक कायम नहीं रह सकती। हिन्दुस्तान या हिन्दू राज्य के रूप में जियेगा, आगे बढ़ेगा और फिर जगद्गुरु बनेगा या इसका अन्त इस्लामी राज्य के रूप में होगा। सभी राष्ट्रवादियों और देशभक्तों का चयन स्पष्ट है। वे चाहेंगे कि हिन्दुस्तान हिन्दू राज्य के रूप में जिये और आगे बढ़े।

: ४ :

हिन्दू राज्य और सेक्यूलरिज़्म

मुस्लिम जगत्, विशेष रूप में ईरान, पाकिस्तान और बंगला देश में इस्लामी सिद्धान्तवाद की बाढ़ और हिन्दुस्तान के मुसलमानों द्वारा भी खुलकर हिन्दुस्तान के इस्लामीकरण का नारा लगाने से हिन्दुस्तान के राष्ट्रवादी लोगों से स्थिति की गम्भीरता और उसमें निहित हिन्दुस्तान की एकता, सुरक्षा और हिन्दू पहचान के लिये नए संकट के सम्बन्ध में चेतना और सोच पैदा हुई है। उनमें यह अहसास भी पैदा होना शुरू हुआ है कि १९४७ में खण्डित हिन्दुस्तान को हिन्दू राज्य घोषित न करना भारी भूल थी और कि इस भूल का सुधार होना चाहिये। हिन्दुस्तान को हिन्दू राज्य घोषित करने की आवश्यकता और उपादेयता के विषय में विचारवान् हिन्दू सोचने लगे हैं। परन्तु इस अहसास और चिन्तन की सार्वजनिक अभिव्यक्ति नहीं हो रही। इसके दो कारण हैं। राजनीतिक पार्टियाँ मुस्लिम और ईसाई मतों की खातिर हिन्दू राज्य की बात कहने से घबराती हैं। तथाकथित बुद्धिजीवी और समाचार-पत्र इस बात को कहने से इसलिए घबराते हैं कि उन्हें कोई प्रतिक्रियावादी न कहे। इन सबको प्रगतिवादी और सेक्यूलर कहलाने का चस्का-सा लगा हुआ है।

इसलिए मुझे हैरानी हुई जब मैंने बम्बई के विख्यात अंग्रेजी साप्ताहिक 'इलस्ट्रेटेड वीकली' की ५ जून, १९८० के अंक में 'क्या हिन्दुस्तान हिन्दू राज्य होना चाहिये ?' विषय पर एक परिचर्चा प्रकाशित हुई देखी। इसने इस विषय पर लिखने के लिए जिन लोगों को निमन्त्रित किया उनके नाम और लेख देखने से लगा कि शायद उसका उद्देश्य हिन्दू राज्य के विचार को झुठलाना था परन्तु इसमें प्रकाशित सम्पादक के नाम पत्रों के रूप में

पाठकों की प्रतिक्रिया से यह स्पष्ट हो गया कि देश में बहुत बड़ा बहुमत भारत को हिन्दू राज्य घोषित करने के पक्ष में है।

इस परिचर्चा का श्रीगणेश आर० जी० के० नाम के सज्जन के लेख से किया गया था। लेख पढ़ने से लगा कि उसके पास हिन्दू राज्य के विरुद्ध लिखने को कुछ नहीं। उन्होंने स्वीकार किया कि हिन्दू राज्य-पद्धति के सैद्धान्तिक पहलू का विकास हजारों वर्षों के लम्बे काल में हुआ और कि उसका मूल भारतीय लोगों का धर्म और नैतिकता सम्बन्धी चिन्तन है कोई मजहब नहीं। उनके अनुसार हिन्दू राज्य पद्धति की तुलना ग्रीक राजपद्धति से की जा सकती है—ईसाई अथवा मुस्लिम राजपद्धति से नहीं। परन्तु उनका कहना है कि पड़ोसी मुस्लिम राज्यों की प्रतिक्रिया के रूप में हिन्दुस्तान को हिन्दू राज्य घोषित करना ठीक नहीं होगा।

दूसरा लेख श्री पी० एन० ओक का था। उनसे हिन्दू दृष्टिकोण प्रस्तुत करने की अपेक्षा हो सकती थी परन्तु उनका लेख पढ़ने से लगा कि उनके पास इस विषय पर लिखने को कुछ है ही नहीं।

ईसाई और मुस्लिम दृष्टिकोण श्री डी० मेलो कामथ और डॉ० रफीक ज़करिया ने पेश किया था। उनके पास भी हिन्दू राज्य के विरुद्ध कहने को कुछ नहीं। डी० मेलो ने यह स्वीकार किया कि हिन्दुइज्म कोई मतवादी मजहब नहीं। इसके पक्ष में उन्होंने डॉ० राधाकृष्णन के विचार उद्धृत किये। परन्तु उनके अनुसार, "हिन्दू राज्य फासिस्ट राज्य होगा जिसमें अल्पमतों को दबाया जाएगा।" इसलिए हिन्दुस्तान को हिन्दू राज्य घोषित करना वांछित नहीं। डॉ० ज़करिया के पास हिन्दुस्तान को हिन्दू राज्य घोषित करने के विरुद्ध कोई तर्क नहीं। इसलिये उन्होंने अपने लेख में करांची में १९३१ में पारित कांग्रेस प्रस्ताव की शरण लेते हुए लिखा कि हिन्दुस्तान को हिन्दू राज्य घोषित करना गांधी और नेहरू की धरोहर और संविधान के सेक्यूलर चरित्र के विरुद्ध होगा। वे लिखते समय यह भूल गए कि करांची अब इस्लामी पाकिस्तान में है और गांधी और नेहरू ने उस करांची प्रस्ताव और अपनी तथाकथित धरोहर को उस दिन दफना दिया जिस दिन उन्होंने द्विराष्ट्र के सिद्धान्त पर देश का बँटवारा चुपचाप स्वीकार कर लिया।

'इलस्ट्रेटेड वीकली' में छपे लेखों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो गया कि हिन्दुस्तान को हिन्दू राज्य घोषित करने पर प्रमुख आपत्तियाँ तीन हैं —

१. हिन्दू राज्य सेक्यूलरिज़म के प्रतिकूल होगा।
२. हिन्दू राज्य में अल्पमत असुरक्षित हो जाएंगे।
३. हिन्दू राज्य फासिस्ट राज्य होगा।

इन आपत्तियों का एक-एक करके विश्लेषण और विवेचन करना आवश्यक है ताकि उन लोगों के भ्रम और डर दूर हो सकें जो यह समझ बैठे हैं कि हिन्दू राज्य मुस्लिम राज्यों की तरह मज़हबी राज्य होगा जिसमें अल्पमत असुरक्षित होते हैं और जहाँ लोकतन्त्र पनप नहीं सकता।

पहले हम सेक्यूलरिज़म सम्बन्धी आपत्ति को लेते हैं। उसके लिए पहले यह जानना आवश्यक है कि सेक्यूलरिज़म है क्या ?

सेक्यूलर, सेक्यूलरिज़म और सेक्यूलर राज्य गत कुछ शताब्दियों में यूरोप में प्रचलित हुए शब्द और अवधारणाएँ हैं। उनको ठीक प्रकार समझने के लिए इनके जन्म की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, इनके विकास के क्रम और इनके व्यावहारिक रूप को जानना आवश्यक है। यह थियोक्रेसी अर्थात् मज़हब प्रधान राजतन्त्र और थियोक्रेटिक स्टेट अर्थात् मज़हबी राज्य को नकारने वाले शब्द और अवधारणाएँ हैं। इनका जन्म मज़हब के नाम पर मज़हबी राज्यों द्वारा होने वाले अनर्थ और मारकाट की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ।

थियोक्रेसी और थियोक्रेटिक राज्य सेमिटिक मज़हबों के साथ हुई अवधारणाएँ हैं। इनके तात्त्विक आधार और व्यावहारिक रूप और इनसे सम्बन्धित सेमेटिक परम्परा को समझना आवश्यक है।

इन तीनों सेमेटिक मज़हबों की आस्था का प्रथम केन्द्र उनके अपने पैगम्बर—मूसा, ईसा और मोहम्मद—तथा उनके साथ जुड़ी हुई पुस्तकें ओल्डटेस्टामेण्ट, न्यूटेस्टामेण्ट या बाईबल और कुरान हैं। ये तीनों मज़हब इन पैगम्बरों और पुस्तकों के साथ जुड़े हुए मतवाद को अधिक महत्त्व देते हैं। उनका परमात्मा, उनके पैगम्बरों के साथ जिनके द्वारा उसने अपना सन्देश अपने लोगों को दिया, जुड़ा हुआ है। इसलिए वे सभी अलगाववादी

और उन सब लोगों के प्रति जो उनके पैगम्बरों और उनकी किताबों में आस्था नहीं रखते असहिष्णु हैं। उन सबका आग्रह अपने पैगम्बरों, पुस्तकों और मतों में अन्धभक्ति पर है, सार्वभौमिक परमात्मा जो सभी प्राणियों के प्रति समान दया और प्रेम का भाव रखता हो, के प्रति तर्कसंगत आस्था में नहीं। जो उनके विशेष पैगम्बर और पुस्तक पर ईमान नहीं लाता, उसे वे काफ़िर घोषित कर देते हैं, जिसका परमात्मा की दया पर कोई दावा नहीं रहता, चाहे वह कितना ही भला, नेक और आस्तिक व्यक्ति क्यों न हो। इसलिए विधर्मियों या काफिरों को अपने-अपने मजहब में शामिल करना इन मज़हबों के अनुयायियों का मज़हबी कर्तव्य बन गया। क्योंकि इनमें हर मज़हब यह दावा करता है कि उसी के पैगम्बर के पास सच्चाई का एकाधिकार है और मानव जाति के प्रति भ्रातृभाव का कोई स्थान नहीं। इसीलिये उनमें से किसी मज़हब का नेता और अधिकृत प्रवक्ता यह मानने और कहने को तैयार नहीं कि सभी मज़हब परमात्मा तक पहुंचने के भिन्न-भिन्न मार्ग हैं और इसलिये सबके प्रति समान भाव रखना चाहिये। उनमें से किसी भी मज़हब का नेता इस बीसवीं शताब्दी में भी "एकम् सद् विप्रा बहुधा वदन्ति" और सर्वधर्म/पन्थ समभाव के तर्कसम्मत मानववादी वेदमूलक भारतीय आदर्श को मानने को तैयार नहीं।

थियोक्रेसी और थियोक्रेटिक स्टेट्स अर्थात् मज़हबी राज्य इन अलगाववादी असहिष्णु मज़हबों के प्रादुर्भाव का राजनीतिक क्षेत्र में स्वाभाविक परिणाम थे।

थियोक्रेसी शब्द थियो से जो एक यूनानी देवता का नाम था, निकला है। इसका अर्थ ऐसी राज्यपद्धति है जिसमें राजशक्ति और मज़हब एक-दूसरे से जुड़े हुए हों और उस मज़हब के मत और सिद्धान्त राज्य के चलाने में और व्यवहार में व्याप्त हों। प्रजा के सभी लोगों को इस मत को स्वीकार करने के लिए बाध्य करना और उस मत के प्रचार में राज्यशक्ति का प्रयोग इस राज्यपद्धति में राज्य का कर्तव्य माना जाता है। जिन राज्यों में ऐसी राज्य पद्धति चालू हो जाती थी उन्हें थियोक्रेटिक राज्य कहा जाने लगा।

यहूदी मज़हब सेमेटिक मज़हबों में सबसे पुराना है। यहूदी राज्य शुरू

से ही मज़हबी राज्य रहा है।

ईसाई मत यहूदी मत के अनुयायी ईसा द्वारा चलाए गये एक सुधारवादी आन्दोलन की उपज है। ईसा को फलस्तीन के रोमन गवर्नर ने यहूदियों द्वारा उकसाने से सूली पर चढ़ा दिया था। ईसा और ईसाइयत की पीठ पर कोई राज्य अथवा राज्यशक्ति नहीं थी। इसलिये शुरू में ईसाई मतावलम्बी लोग तो थे परन्तु कोई ईसाई राज्य नहीं था। तीसरी शताब्दी में रोम के सम्राट् कान्स्टेनटाइन के ईसाई बनने से यह स्थिति बदल गई। उसने रोमन राज्य की शक्ति से रोम के साम्राज्य में ईसाई मत के प्रचार का बीड़ा उठाया। तब रोम ईसाइयत का मज़हबी और राजनीतिक केन्द्र बन गया और रोमन राज्य मज़हबी राज्य बन गया। जब रोमन साम्राज्य दो भागों में बँट गया तब कान्स्टेन्टीनोपल (अब इस्तम्बोल) पूर्व रोमन साम्राज्य का मज़हबी और राजनीतिक केन्द्र बन गया और रोम पश्चिमी रोमन साम्राज्य का।

पाँचवीं शताब्दी में पश्चिमी रोमन साम्राज्य के पतन के बाद यूरोप अनेक सामन्ती राज्यों में बँट गया। परन्तु यूरोप की मज़हबी एकता बनी रही। रोमन साम्राज्य की राजनीतिक शक्ति के क्षीण होने के अनुपात में रोमन चर्च के प्रमुख के रूप में रोमन पोप की शक्ति बढ़ती गई। इस प्रकार यूरोप के छोटे-छोटे राज्यों पर पोप का और ईसाई चर्च का वर्चस्व कायम हो गया। वे सभी राज्य थियोक्रेटिक राज्य बन गये।

मोहम्मदी मत तीसरा सेमिटिक मजहब है। इसने यह घोषणा करके कि मोहम्मद आखिरी पैगम्बर है और जो कोई यह नहीं मानेगा, वह काफिर है और मृत्युदण्ड का अधिकारी है, किसी नये सेमेटिक मजहब के पैदा होने का मार्ग अवरुद्ध कर दिया।

जब मोहम्मद ने सातवीं शताब्दी के शुरू में अपना मज़हब चलाया, उस समय अरब के बड़े भाग, विशेष रूप में मदीना क्षेत्र में यहूदी मत का वर्चस्व था। इसलिये मोहम्मद साहिब पर यहूदी परम्परा का गहरा प्रभाव था। मोहम्मदी मत के लिए इस्लाम नाम का प्रयोग, अभिवादन के लिए सलाम कहने की प्रथा, लड़कों की सुन्नत करने की प्रथा, सूअर के मांस को हराम घोषित करना, मोहम्मदी मत पर यहूदी का प्रभाव है। इस्लाम

समेत बहुत से मुस्लिम नाम और अरबी वर्णमाला और लिपि का स्रोत भी यहूदी और उनकी हिब्रू भाषा और लिपि ही है।

ईसा मसीह के विपरीत मोहम्मद शान्ति के व्यक्ति न थे। उनको अपनी पैगम्बरी और अपने सिद्धान्तों को मनवाने के लिए अरब लोगों के साथ लम्बा संघर्ष करना पड़ा था। इस संघर्ष के कारण सन् ६२२ में उन्हें मक्का छोड़कर मदीना आना पड़ा था। मदीना के गैर-यहूदी लोगों ने, जिनकी यहूदियों के साथ लड़ाई चल रही थी, उन्हें अपना नेता और पैगम्बर स्वीकार कर लिया। उनके नेतृत्व में उन्होंने यहूदियों पर विजय पाई। पराजित यहूदियों को इस्लाम या मौत में से एक को चुनने का विकल्प दिया गया। जिन्होंने मोहम्मद साहब पर ईमान लाने से इन्कार किया, उन्हें मौत के घाट उतार दिया गया। मोहम्मद साहब ने स्वयं इस दिशा में पहल की।

यहूदियों को परास्त करने के बाद मोहम्मद साहिब अपने अनुयायियों के राजनीतिक नेता—इमाम—और मज़हबी नेता—खलीफ़ा—बन गए। इस प्रकार मुस्लिम राज्यों में इस्लाम के प्रादुर्भाव के समय से ही राजनीति और मज़हब का मेल हो गया। इस प्रकार थियोक्रेसी इस्लाम का एक आवश्यक अंग बन गई। यही कारण है, कोई भी इस्लामिक राज्य मज़हबी राज्य के अतिरिक्त कुछ और हो ही नहीं सकता।

जब फलस्तीन और यूरोशलम रोमन साम्राज्य के अन्तर्गत आ गये तब यहूदी मत का एक राजनीतिक शक्ति के रूप में अन्त हो गया। तब यहूदियों को अपनी जान और मज़हब की रक्षा के लिए संसार के विभिन्न भागों में शरण लेनी पड़ी। उनमें से कुछ हिन्दुस्तान में भी आये। यह हिन्दुस्तान के लिए गर्व का विषय है कि यहाँ यहूदी शरणार्थियों को पूरी मज़हबी आज़ादी दी गई। इसका श्रेय हिन्दू धर्म और परम्परा को जाता है। यह यहूदियों के लिए गौरव की बात है कि उन्होंने अपनी जीवन-पद्धति और पूजा-पद्धति को अनेक अत्याचारों के बावजूद बनाए रखा और १९४८ में अपने पुराने घर में इस्राइल नाम से अपना यहूदी राष्ट्र और राज्य स्थापित करने में सफल हुए। इस्राइल में आज भी थियोक्रेसी है, परन्तु इस्राइल की थियोक्रेसी यहूदियों द्वारा सहे गये थपेड़ों के कारण अपना उग्र

रूप छोड़ चुकी है। अब इस्राइल में सर्वपंथ समभाव के वैदिक हिन्दू आदर्श को व्यवहारत: स्वीकार कर लिया है, परन्तु इस्लामी राज्यों द्वारा इस्राइल के विरुद्ध लगातार चलाए जाने वाले जिहाद के कारण इस्राइलियों ने अपनी संघर्ष-वृत्ति को बनाए रखा है। वे गत पैंतीस वर्षों से मुस्लिम जगत् के हमलों और षड्यन्त्रों को विफल कर रहे हैं।

इस्लामिक राज्यों के रूप में इस्लाम के राजनीतिक शक्ति के रूप में उदय के बाद ईसाई थियोक्रेसी और इस्लामी थियोक्रेसी के एक लम्बे संघर्ष की शुरुआत हुई। यूरोप के ईसाई राज्यों द्वारा सामूहिक रूप में लड़े गये 'क्रुसेड' अर्थात् ईसाइयत की रक्षा के लिए किये गये युद्धों के बावजूद इस्लाम ने ईसाइयत की कीमत पर पश्चिमी एशिया और पूर्वी यूरोप में अपने पाँव फैलाने में सफलता प्राप्त की। १४५३ में ईस्टर्न रोमन साम्राज्य का पतन हुआ और कान्स्टेंटीनोपल पर तुर्कों का अधिकार हो गया। इसके बाद इस्लाम की ताकत यूरोप में भी तेजी से फैलने लगी। सारा बलकान उपमहाद्वीप मुस्लिम-तुर्क साम्राज्य का अंग बन गया। इस्लाम ने पश्चिमी यूरोप में भी बढ़ने का प्रयत्न किया परन्तु ईसाइयों ने सत्रहवीं शताब्दी में विश्राना के द्वार पर इस्लामी आक्रान्ताओं को करारी हार देकर मध्य और पश्चिमी यूरोप को इस्लाम की मार से बचा लिया। इस बीच इस्लाम ने मिस्र से आगे बढ़ते हुए सारे उत्तरी अफ्रीका को अपनी लपेट में ले लिया और जिब्राल्टर को पार करके स्पेन पर भी अधिकार कर लिया। स्पेन का इस्लामी राज्य सात शताब्दियों तक चला।

कालान्तर में इस्लामी राज्यों और ईसाई राज्यों में शक्ति-सन्तुलन की स्थिति पैदा हो गई। ईसाइयों ने स्पेन के मुसलमानों के साथ वैसा ही व्यवहार किया जैसा मुसलमान विजित देशों के ईसाइयों के साथ करते आ रहे थे।

ईसाई जगत् और इस्लामी जगत् के बीच के लम्बे संघर्ष के, जो आज तक चल रहा है, दोनों पक्षों पर अनेक प्रभाव पड़े। पहला यह था कि क्योंकि वे एक-दूसरे से बदला लेने की स्थिति में थे, इसलिये दोनों ने अपने-अपने राज्यों में दूसरे मज़हब के अल्पमत को कुछ हद तक बर्दाश्त करना सीख लिया। दोनों मज़हबों के अल्पमत यह मानकर रहने लगे कि वे शासक

मज़हब के लोगों के साथ बराबरी नहीं कर सकते और न समान अधिकार पा सकते हैं।

दूसरा प्रभाव यह था कि उनके बीच के लम्बे संघर्षकाल में विचारों का आदान-प्रदान भी हुआ। अरबों ने सिन्ध से जो विज्ञान, गणित और शून्य का ज्ञान प्राप्त किया था, वह उनके द्वारा ईसाई यूरोप तक पहुँचा।

यूरोप में पुनर्जागरण लाने में भी इस संघर्ष का योगदान था। कान्स्टेंटीनोपल पर तुर्कों का अधिकार हो जाने पर वहाँ से जो यूनानी विद्वान् भागकर इटली और यूरोप के अन्य भागों में गये, वहाँ उन्होंने पुनर्जागरण का बीज बोया।

'पुनर्जागरण' का एक परिणाम यह निकला कि बहुत-से प्रबुद्ध ईसाई चर्च के रूढ़िवाद और राजनीतिक प्रभाव के विरुद्ध खड़े होने लगे। उनके इस विरोध में से रेफरमेशन का सूत्रपात हुआ, जिसका लाभ उठाकर जर्मन राज्यों ने राजनीतिक मामलों में पोप के प्रभाव को चुनौती देनी शुरू कर दी। उनका अनुकरण यूरोप के अन्य राजाओं ने भी करना शुरू किया।

परिणामस्वरूप जीवन के हर पहलू पर छाया हुआ चर्च का प्रभाव कम होने लगा और मानव के जीवन के गैर-मज़हबी अथवा सेक्यूलर पहलू का महत्त्व बढ़ने लगा। कई ईसाई राजाओं ने राजनीतिक और गैरमज़हबी क्षेत्र में रोमन चर्च और उसके प्रतिनिधियों के प्रभाव से मुक्त होने की घोषणा कर दी। सेक्यूलर, सेक्यूलरिज़्म और सेक्यूलर स्टेट इत्यादि शब्दों का यूरोप में प्रचलन इस नई स्थिति का एक परिणाम था।

ऑक्सफोर्ड शब्दकोश के अनुसार सेक्यूलर का अर्थ है सांसारिक, गैर-मज़हबी, अपवित्र आदि। सोशल साइंसेज़ के ज्ञानकोश के अनुसार "दार्शनिक क्षेत्र में सेक्यूलरिज़्म का अर्थ मज़हब से विद्रोह है और राजनीतिक क्षेत्र में इसका अर्थ है कि चर्च से भिन्न राजा और राज्य को अपनी शक्ति का प्रयोग अपने बल और अधिकार से करने की छूट।"

रेफरमेशन के कारण यूरोप के लोग दो भागों में बँट गये। एक वे थे जो पोप के प्रति वफादार रहे और दूसरे वे जिन्होंने रोमन चर्च का वर्चस्व मानने से इन्कार कर दिया। पहले रोमन कैथोलिक कहलाए जाने लगे और दूसरे प्रोटेस्टेंट।

शुरू में रोम के पोप ने वफादार रोमन कैथोलिक राज्यों की सहायता से प्रोटेस्टेंट लोगों और राज्यों को दबाना चाहा। फलस्वरूप इन दोनों ईसावादी सम्प्रदायों के बीच मजहबी युद्ध शुरू हुए जिनमें असंख्य बेगुनाह ईसाई मारे गये। उनमें से अनेक जिन्दा भी जलाए गये।

इस मारकाट की प्रतिक्रिया स्वरूप बहुत से ईसाइयों के मनों में न केवल चर्च अपितु मज़हब के प्रति भी विद्रोह का भाव पैदा हुआ। व्यक्तिगत मज़हब अथवा पूजा-पद्धति और संगठित मज़हब अथवा चर्च, जो जीवन के हर पहलू पर अपना प्रभाव रखना चाहता था, में भेद किया जाने लगा। भौतिक जीवन को मज़हब के प्रभाव से मुक्त करने के इस रुझान से यूरोप के लोगों का दृष्टिकोण सेक्यूलर बनने लगा और मज़हब के प्रति उनमें उदासीनता ही नहीं, अपितु विरोध का भाव भी पैदा होने लगा।

इस मानसिक बदल की गति काफी धीमी थी। प्रोटेस्टेंट ब्रिटेन को मज़हब के आधार पर अपने नागरिकों में भेदभाव समाप्त करने में दो सौ वर्ष लगे। बीसवीं शताब्दी के शुरू में आयरलैण्ड का विभाजन मज़हब के आधार पर किया गया। उत्तरी आयरलैण्ड के लोग क्योंकि प्रोटेस्टेंट हैं इसलिये वे आज भी रोमन कैथोलिक आयरलैंड की बजाय प्रोटेस्टेंट ब्रिटेन के साथ रहना चाहते हैं। पिछले दिनों लॉर्ड मांउटबेटन की एक आयरिश रोमन कैथोलिक द्वारा हत्या इस बात का प्रमाण है कि अभी भी ब्रिटेन और आयरलैंड के लोगों और राजनीति पर मज़हब का प्रभाव और साया कायम है।

ब्रिटेन अति सेक्यूलर राज्य होने का दावा करता है क्योंकि अब वहाँ नागरिकों के बीच मज़हब के आधार पर भेदभाव नहीं किया जाता। वहाँ सबके लिए साँझा सिविल कोड है और कानून के सामने सब बराबर हैं। वहाँ कोई मुसलमान शरीयत के कानून के नाम पर एक से अधिक पत्नियाँ नहीं रख सकता और न ही उत्तराधिकार के मामले में वह मुस्लिम कानून की दुहाई दे सकता है। सच तो यह है कि कोई भी लोकतन्त्र जिसमें सभी वयस्कों को मत देने का अधिकार हो इस अर्थ में सेक्यूलर के सिवाय कुछ और हो ही नहीं सकता।

परन्तु इसके बावजूद ब्रिटेन आज भी एक ईसाई राज्य है। इसका एक

सरकारी चर्च है। ब्रिटेन का राजा या रानी प्रोटेस्टेंट ही होने चाहिए। वहाँ के राजा या रानी आज भी अपने नाम के साथ 'डिफेंडर ऑफ द फेथ' अर्थात् 'मजहब के रक्षक' की उपाधि गर्व के साथ लगाते हैं। वहाँ की संसद का सत्र और अन्य महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय कार्यक्रम चर्च ऑफ इग्लैण्ड के प्रमुख आर्क बिशप ऑफ केन्टरबरी की प्रार्थना से ही शुरू होते हैं।

यही बात यूरोप के अन्य गैर-कम्युनिस्ट राज्यों पर लागू होती है। वे सब ईसाई हैं परन्तु सेक्यूलर राज्य होने का दावा करते हैं। यूरोप के अनेक देशों में क्रिश्चियन डेमोक्रेटिक पार्टियाँ प्रमुख राजनीतिक दल हैं और कई राज्यों में वे सत्तारूढ़ दल भी हैं। पोलैण्ड जैसे कई कम्युनिस्ट राज्य भी चर्च के प्रभाव से अभी तक मुक्त नहीं हो पाये। यही कारण है कि कम्युनिस्टों की सेक्यूलरिज़्म की व्याख्या भिन्न है। वे सेक्यूलरिज़्म का अर्थ मजहब और परमात्मा के अस्तित्व को नकारना कहते हैं। इसलिए उनका मत है, कि केवल वही कम्युनिस्ट राज्य, जहाँ से मजहब और परमात्मा को देश-निकाला दे दिया गया है सच्चे अर्थ में सेक्युलर राज्य हो सकते हैं। उनके अनुसार मजहब के आधार पर नागरिकों में भेदभाव न करने वाले और सर्वपंथ समभाव के सिद्धान्त पर अमल करने वाले राज्य थियोक्रेटिक राज्यों से तो बेहतर हैं परन्तु उन्हें सेक्यूलर राज्य नहीं कहा जा सकता।

सहअस्तित्व और विचार स्वतन्त्रता का नमूना माने जाने वाले संयुक्त राज्य अमेरिका में भी स्थिति अधिक भिन्न नहीं है। वहाँ विभिन्न सम्प्रदायों के ईसाइयों का बहुमत है। परन्तु वहाँ यहूदी, मुसलमान, बौद्ध और हिन्द महासंघ के पंथों के अनुयायी भी काफी संख्या में हैं। उन सबको मजहबी स्वतन्त्रता है। वे अपने मन्दिर, गुरुद्वारे और मस्जिदें बना सकते हैं, परन्तु अमरीकन जीवन-पद्धति और जीवनमूल्यों में आज भी ईसाइयत का प्रमुख स्थान है। कोई गैर ईसाई अमेरिका का राष्ट्रपति बनने का स्वप्न भी नहीं देख सकता। वहाँ का राष्ट्रपति बाइबिल पर हाथ रखकर अपने पद की शपथ लेता है। वहाँ की अनेक नगर-परिषदों और राज्य-विधान सभाओं की कार्रवाई ईसाई पादरी द्वारा प्रार्थना से शुरू होती है।

इस सम्बन्ध में मेरा व्यक्तिगत अनुभव है। डलास की नगर-परिषद्

ने मुझे एक विदेशी अतिथि के रूप में निमन्त्रित किया था। मैं समय पर पहुँच गया। महापौर और अन्य सभासद भी आ गये। परन्तु जब तक एक पादरी ने आकर प्रोटेस्टेंट ईसाई ढंग से प्रार्थना नहीं कर ली, सभा की कार्रवाई शुरू नहीं हुई। जब उसने प्रार्थना शुरू की, सब लोग खड़े हो गये।

समारोह समाप्त होने पर मैंने पूछा कि क्या अमेरिका सेक्यूलर राज्य नहीं, सभा की कार्रवाई ईसाई प्रार्थना से कैसे शुरू हुई? उसका उत्तर आँखें खोलने वाला था। मुझे बताया गया कि हम अधिकांश अमेरिकन आस्तिक हैं और अपना दिन और समारोह परमात्मा को याद करके शुरू करना चाहते हैं। क्योंकि हममें से अधिकांश लोग ईसाई हैं इसलिये हम ईसाई ढंग से परमात्मा को याद करते हैं। यह बताने के बाद मुझसे पूछा गया कि बताओ, इसमें गलत या गैर-सेक्यूलर बात क्या है?

इस घटना से स्पष्ट है कि अमेरिका का सेक्यूलरिज़म भी ईसाई जीवन मूल्यों से कटा हुआ नहीं है। इतना ही नहीं, वरन् अमेरिका की सरकार भी एशिया और अफ्रीका के देशों में ईसाइयत के प्रचार में रुचि लेती है। वह समझती है कि ईसाई और ईसाई देश कम्युनिस्ट रूस के साथ विश्व-व्यापी टकराव में अमेरिका का साथ देंगे।

जहाँ तक मुस्लिम जगत् और मुस्लिम राज्यों का सम्बन्ध है, सेक्यूलरिज़म वहाँ पाँव नहीं जमा पाया। वास्तव में मुस्लिम जगत् में पश्चिमी देशों के साथ सम्पर्क के कारण मुस्लिम समाज और मुस्लिम देशों पर आधुनिक विचारों और सेक्यूलर रंग-ढंग का जो थोड़ा-बहुत प्रभाव पड़ा था, उसे भी निरस्त किया जा रहा है। तुर्की इसका ज्वलन्त उदाहरण है। कमाल अता तुर्क पहला मुस्लिम नेता था जिसने तुर्की को सेक्यूलर बनाने का सफल प्रयत्न किया था और तुर्की को सेक्यूलरिज़म के मार्ग पर डाला था। परन्तु उसकी मृत्यु के थोड़ी देर बाद ही वहाँ पर थ्योक्रेटिक रुझान फिर उभरने लगे। इस समय तुर्की फिर व्यावहारिक रूप में थ्योक्रेटिक इस्लामिक राज्य बन चुका है।

इस्लामवाद और साम्यवाद में बहुत-कुछ साँझा है। इस्लामवाद भी पूजा-पद्धति से बढ़कर एक विस्तारवादी साम्राज्यवादी राजनीतिक विचार-

धारा है। दोनों एकाधिकार की पक्षधर और किसी प्रकार के मतभेद के प्रति असहिष्णु हैं। जैसाकि बरकत अली ने १ अप्रैल, १९८२ के हिन्दुस्तान टाइम्स में छपे अपने लेख में लिखा था, कि "मार्क्सिस्ट और मुल्ला में बहुत-सी बातें साँझी हैं। दोनों गैर लचीले हैं, दोनों का मन एक ही पटरी पर चलने का अभ्यस्त है, दोनों किसी प्रकार के विरोध के प्रति असहिष्णु हैं, दोनों राजनीतिक सत्ता के लिए हिंसात्मक तरीके अपनाने के पक्ष में हैं और दोनों अवसरवादी हैं।" इसलिए इस्लामी राज्यों की आर्थिक नीतियों को वामपंथी मोड़ देने और सारी आर्थिक सत्ता उनके तानाशाहों के हाथ में इकट्ठी करने के लिए मार्क्स को आसानी से मोहम्मद के साथ नत्थी किया जा सकता है। इसलिए साम्यवाद की ओर झुकाव और साम्यवादी रूस से मित्रता इस्लामी राज्यों के मज़हबी चरित्र पर प्रभाव नहीं डालती। लीबिया और सीरिया इसके उदाहरण हैं।

इस्लामी देशों में न सेक्यूलरिज़्म चलता है और न लोकतन्त्र। पाकिस्तान और बँगला देश इसके उदाहरण हैं। वहाँ, अंग्रेजी राज्य के प्रभावों के बावजूद न सेक्यूलरिज़्म बना है और न लोकतन्त्र। वहाँ सेक्यूलरिज़्म और बहु-दलीय लोकतन्त्र दोनों समाप्त हो गये हैं। यही स्थिति इण्डोनेशिया की भी है। हिन्दू-बौद्ध संस्कृति के प्रभाव के कारण इण्डोनेशिया ने अभी तक सर्वपंथ समभाव की परम्परा निभाई है। परन्तु वहाँ पर भी मुल्लाओं और इस्लामी सिद्धान्तवाद का प्रभाव बढ़ रहा है।

मलयेशिया एकमात्र मुस्लिम राज्य है जहाँ लोकतन्त्र अभी कायम है। इसका बड़ा कारण यह है कि वहाँ मुसलमान केवल ५१ प्रतिशत हैं। शेष ४९ प्रतिशत चीनी और भारतीय उद्गम के बौद्ध और हिन्दू हैं जिनकी विचार स्वतन्त्रता और सहिष्णुता की लम्बी परम्परा है। परन्तु क्योंकि ५१ प्रतिशत मुसलमान इकट्ठे हैं, इसलिए लोकतांत्रिक उपायों से भी सत्ता उनके हाथ में केन्द्रित है और वे मलयेशिया को इस्लामी राज्य घोषित कर चुके हैं। वहाँ गैर-मुस्लिमों के साथ कई ढंग से भेदभाव होता है। मलयेशिया के हिन्दू, बौद्ध और ईसाई स्वाभाविक रूप से इस भेदभाव से दुःखी हैं। १९६८ में मैं मलयेशिया सरकार के अतिथि के रूप में एक सप्ताह के लिए वहाँ गया था। वहाँ पर सांसदों समेत अनेक लोगों ने मुझे

इस भेदभाव के विषय में बताया। जब मैं मलयेशिया के प्रधानमन्त्री से मिला तो मैंने उनसे इस भेदभाव की भी चर्चा की। इस पर वे बोले, कि "मलयेशिया एक इस्लामी राज्य है। हम गैर मुसलमानों को मन्दिर, गुरुद्वारे और गिरजे बनाने की अनुमति देते हैं। हमसे वे और क्या अपेक्षा करते हैं?" उनका तात्पर्य शायद यह था कि अन्य इस्लामी राज्यों में तो गैर-मुस्लिमों को अपने पूजागृह बनाने की भी अनुमति नहीं दी जाती।

यदि ५१ प्रतिशत मुस्लिम बहुमत वाले मुस्लिम राज्य में गैर-मुसलमानों की यह दशा है तो उन मुस्लिम राज्यों में जहाँ मुसलमानों की जनसंख्या बहुत अधिक है, गैर-मुस्लिमों की हालत का अनुमान लगाया जा सकता है। वस्तुस्थिति यह है कि पश्चिमी एशिया के अधिकांश मुस्लिम राज्यों में कोई गैर-मुस्लिम, विशेष रूप में सिक्खों समेत हिन्दू न अपना मन्दिर या गुरुद्वारा बना सकते हैं और न सार्वजनिक रूप में भजन-कीर्तन कर सकते हैं। कुछ राज्यों में तो वे अपने घरों में भी ऐसा नहीं कर सकते। यदि कोई हिन्दू वहाँ मर जाये तो उसके शव का दाह-संस्कार भी नहीं किया जा सकता। शव को या तो समुद्र में फेंकना पड़ता है और या दाह-संस्कार के लिए अन्यत्र ले जाना पड़ता है। किसी मुसलमान का धर्म परिवर्तन नहीं किया जा सकता। यदि कोई अमुस्लिम किसी कारणवश मुसलमान बन जाए तो फिर वह अपने पैतृक धर्म में लौट नहीं सकता। सऊदी-अरब में कोई सिक्ख दाखिल नहीं हो सकता। और तो और भारत सरकार ने अभी तक किसी केशधारी हिन्दू को अपना राजदूत बनाकर भेजने की भी हिम्मत नहीं की। ये सभी राज्य इस्राइल के विरुद्ध जिहाद की रट लगाते रहते हैं और काश्मीर के मामले में भारत के मुकाबले में पाकिस्तान का साथ देते आ रहे हैं।

जिस किसी राज्य में मुसलमानों का बहुमत हो जाय वहाँ सेक्यूलरिज़म की क्या दशा होती है इसका अनुमान लेबेनान की स्थिति से लगाया जा सकता है। पहले महायुद्ध के बाद लेबेनान को फ्रांस के संरक्षण में दे दिया गया था। यह संरक्षण १९४८ में समाप्त हुआ। उस समय लेबेनान की जनसंख्या में आधे ईसाई थे और आधे मुसलमान थे। उस समय लेबेनान

का जो संविधान बनाया गया उसके अनुसार लेबेनान एक सेक्यूलर, लोकतांत्रिक राज्य बना। उस संविधान में यह भी प्रावधान था कि लेबेनान की संसद में आधे सांसद ईसाई होंगे और आधे मुसलमान, राष्ट्रपति ईसाई होगा और प्रधानमन्त्री मुसलमान।

जबतक मुस्लिम और ईसाई जनसंख्या में सन्तुलन रहा, तब तक वह संविधान चलता रहा, परन्तु फिलिस्तीनी मुस्लिम शरणार्थियों के बड़ी सख्या में लेबेनान में बस जाने से स्थिति बदल गई। मुसलमानों की जनसंख्या तो वैसे भी बहु-विवाह के कारण तेजी से बढ़ रही थी, ईसाइयों से अधिक हो गई। इसपर मुसलमानों ने इस संविधान को बदलने और लेबेनान को मुस्लिम राज्य बनाने की माँग उठाई। ईसाइयों ने इसका विरोध किया। फलस्वरूप वहाँ गृहयुद्ध शुरू हो गया जो अभी तक चल रहा है। गत सात वर्षों में वहाँ दो लाख के लगभग ईसाई और मुसलमान मारे जा चुके हैं और अब भी दोनों में मारकाट चल रही है। ईसाई अब लेबेनान का विभाजन चाहते हैं ताकि उन्हें अपना होमलैंड मिल जाय जहाँ वे चैन से रह सकें। परन्तु मुसलमान जिनकी पीठ पर सीरिया और अन्य मुस्लिम राज्य हैं, विभाजन भी नहीं होने देते। भारत और साइप्रस में तो मुसलमानों ने विभाजन करवाया क्योंकि वहाँ वे अल्प-संख्यक थे परन्तु लेबेनान में क्योंकि उनका बहुमत हो गया है, वे विभाजन भी नहीं होने देते। इस्राइल के समर्थन के कारण लेबेनान के ईसाई बचे हुए हैं अन्यथा अभी तक उनका सफाया हो गया होता।

सेक्यूलर और सेक्यूलरिज़्म की अवधारणा के ऊपर लिखे तथ्यात्मक विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि ये अवधारणाएँ उन विशिष्ट परिस्थितियों के कारण जनमी जो वर्तमान युग के आरम्भ के समय सेमेटिक परम्परा वाले थियोक्रेटिक देशों में विद्यमान थीं।

अधिकतर ईसाई राज्यों ने अब व्यावहारिक रूप में सेक्यूलरिज़्म को मज़हब के आधार पर भेदभाव न करने के अर्थ में स्वीकार कर लिया है। वे ईसाइयों और अन्य धर्मावलम्बियों के बीच मताधिकार, कानून और नागरिक अधिकारों के मामले में कोई भेदभाव नहीं करते।

परन्तु इस्लामी राज्य साधारणतया अभी भी व्यवहार में थियोक्रेटिक

राज्य ही बने हुए हैं। वे अपने गैर-मुस्लिम नागरिकों के साथ कई ढंग का भेदभाव करते हैं और राज्यशक्ति का प्रयोग इस्लाम के प्रचार और 'कुफ्र' के दमन के लिए करते हैं। कमाल पाशा और रज़ाशाह पहलवी द्वारा तुर्की और ईरान के समाज और राज्यों को सेक्यूलर बनाने के प्रयत्न अल्पकालिक सिद्ध हुए हैं। इस्लामवादियों की बहुलता वाले देशों में मानववादी और सेक्यूलर विचार जड़ें नहीं जमा पाए।

क्योंकि सेक्यूलर और सेक्यूलरिज़म थियोक्रेसी और थियोक्रेटिक राज्य का उलट है, यह उन्हीं समाजों और राज्यों के लिए प्रासंगिक हैं जहाँ मज़हब और राजनीति को मिलाने की सेमेटिक परम्परा रही है और आज भी कायम है।

हिन्दू परम्परा सेमेटिक परम्परा से सर्वथा भिन्न है। एक पैगम्बर, एक पुस्तक, और एक मत से बँधे हुए मज़हब की अवधारणा ही वैदिक हिन्दू विचारधारा और परम्परा के प्रतिकूल है। "एकम् सद् विप्रा बहुनां वदन्ति" – सत्य अथवा परमात्मा एक है; परन्तु विद्वान् उसे बिभिन्न नामों से पुकारते हैं – वैदिक हिन्दू संस्कृति का निचोड़ है। वैदिक ऋषियों की कल्पना का परमात्मा सत्यम् शिवम् सुन्दरम् है। वह सार्वभौमिक है, और किसी एक पैगम्बर अथवा किताब के साथ बँधा हुआ नहीं।

हिन्दू परम्परा परमात्मा पर आस्था से भी अधिक धर्म याने नैतिक मूल्यों पर बल देती है। इसके अनुसार चार्वाक जैसा नास्तिक भी ऋषि और वन्दनीय हो सकता है। इसके अनुसार समाज को धर्म चलाता है न कि कोई विशेष पूजा-पद्धति। यही कारण है कि हिन्दुस्तान में शैव, वैष्णव, बौद्ध, जैन, सिक्ख इत्यादि अनेक पंथ पैदा हुए और आज भी पनप रहे हैं। उनकी पूजा-पद्धति अलग-अलग है परन्तु सब धर्म को महत्त्व देते हैं। गुरु गोविन्दसिंह की विख्यात वाणी—

सकल जगत में खालसा पंथ गाजे।
जगे धर्म हिन्दू सकल भंड भाजे।।

इसी तथ्य को प्रकट करती है।

किसी मत अथवा पूजा-पद्धति की अपेक्षा धर्म अथवा नैतिक व्यवहार पर आग्रह का ही परिणाम है कि हिन्दू सदा पंथ, जाति और लिंग के भेद

के विना सारी मानव-जाति के सुख की कामना करता है—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया,
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चित् दुःख भाग भवेत।

वैदिक प्रार्थनाओं का सार है।

वैदिक संस्कृति में निहित इस व्यापक मानववादी दृष्टिकोण को न किसी सेमेटिक मजहब और न उनके किसी कर्णधार ने अपनाया है और आज भी कोई ईसाई पोप या मुस्लिम मुल्ला यह कहने को तैयार नहीं कि सभी पन्थ सच्चे हैं और कोई भी व्यक्ति कल्याण, सद्गति अथवा स्वर्ग को प्राप्त कर सकता है यदि वह शुद्ध और धार्मिक जीवन व्यतीत करे। ज्यों ही वे इस सत्य को अंगीकार करेंगे उनके मजहब और मत का सारा महल ढहकर गिर जाएगा और दूसरे मज़हब के लोगों को ईसाई और मुसलमान बनाने का आधार और औचित्य समाप्त हो जाएगा।

हिन्दू संस्कृति और परम्परा के इस मूल तत्त्व के कारण थियोक्रेसी का इसमें कभी कोई स्थान नहीं रहा, अतः जिस अर्थ और रूप में इस्लामी राज्य मज़हबी राज्य है, उस अर्थ और रूप में हिन्दू राज्य न कभी मज़हबी राज्य हुआ है और न हो सकता है। हिन्दू राज्यों का इतिहास और स्वरूप इस बात का साक्षी है। राज्य सम्बन्धी नीतिशास्त्र और धर्मशास्त्र भी इसी बात का प्रतिपादन करते हैं। महाभारत का शान्तिपर्व, याज्ञवल्क्य का नीतिशास्त्र इसके साक्षी हैं। उन सबने इस बात पर बल दिया है कि राजा को सारी प्रजा के हित के लिए काम करना चाहिए और उसपर अपनी मर्जी नहीं थोपनी चाहिए। चाणक्य द्वारा अर्थशास्त्र में हिन्दुस्तान के सभी राजाओं को दिया गया निम्न उपदेश इसी बात को प्रकट करता है—

प्रजा सुखे सुख राज्ञः प्रजानां च हितम् रतम्,
नात्मप्रिय हित राज्ञः प्रजानां तु प्रियम् हितम्।

हिन्दू राजा अपने पन्थ या पूजा-पद्धति के मामले में स्वतन्त्र होता है, परन्तु इसे अपनी प्रजा पर थोपना न इसका काम है और न अधिकार। प्रजा के लोग भी अपनी पूजा-पद्धति चुनने के मामले में स्वतन्त्र हैं। राजा को धर्मशास्त्रों द्वारा राजा के लिए बनाये गए धर्म यानी नियमों—राज-धर्म—का पालन करना चाहिये और उसे व्यवस्था करनी चाहिये कि उसकी

प्रजा के लोग भी अपनी जाति, बिरादरी, पन्थ और व्यवसाय के नियमों और धर्म का निर्विघ्न पालन कर सके हैं। यही कारण है कि थियोक्रेटिक या मज़हबी राज्य का विचार ही हिन्दू संस्कृति, परम्परा और व्यवहार-संहिता से मेल नहीं खाता।

प्राचीन भारत में केवल अशोक ऐसा राजा हुआ है जो इस मामले में हिन्दू आदर्शों से हटा था। बौद्ध बनने के बाद उसने राज्य की शक्ति और साधनों का बौद्ध धर्म और बौद्ध संघ के प्रचार के लिए उपयोग करना शुरू किया। हालाँकि अशोक के "धम्म" में ऐसी कोई बात नहीं थी जो दूसरों के हितों के विपरीत हो, तो भी लोगों को लगा कि अशोक हिन्दू राजा और हिन्दू राज्य के आदर्शों से पीछे हट रहा है। इसकी प्रतिक्रिया हुई। डॉ० रमेशचन्द्र मजूमदार और डॉ० आर० सी० दत्त जैसे प्रमुख इतिहास-कारों का मत है कि अशोक का हिन्दू राज्य के सेक्यूलर आदर्श से पीछे हटना मौर्य साम्राज्य के पतन का एक प्रमुख कारण बना।

अशोक के अपवाद को छोड़कर सभी हिन्दू राजा, चाहे वे शैव या वैष्णव, जैन या बौद्ध, या सिक्ख, सर्वपन्थ समभाव के अर्थ में सेक्यूलर थे और उनके राज्य गैर-मज़हबी राज्य थे। कोई हिन्दू राजा किसी पन्थ विशेष का 'रक्षक' नहीं था। हिन्दू राजा राज्याभिषेक के समय जो शपथ लेता और प्रार्थना करता है, उसका सार है—

"मेरे राज्य के सभी लोगों का कल्याण हो और राजा के रूप में धर्मानुसार आचरण करूँ। मेरे राज्य में गऊ सुरक्षित हो, ब्राह्मण निश्चिन्त हो और संसार के सभी लोग सुखी हों।"

शपथ में गौ और ब्राह्मण का विशेष उल्लेख महत्त्वपूर्ण है। डी० मेलो और डॉ० ज़करिया ने 'वीकली' में छपे अपने लेख में यह आपत्ति भी की है कि हिन्दू राज्य में गौवध पर रोक लगा दी जाएगी और जात-पांत को बढ़ावा मिलेगा। इन आपत्तियों पर भी विचार करना उचित है।

जहाँ तक ब्राह्मण का सम्बन्ध है, वैदिक साहित्य में इस शब्द का प्रयोग सच्चरित्र, बुद्धिजीवी और विद्वज्जन के लिए किया गया है। जन्म के आधार पर किसी एक वर्ग या जाति विशेष के लिए नहीं। किसी भी राज्य के लिए विद्वज्जनों, वैज्ञानिकों और बुद्धिजीवियों को सन्तुष्ट रखना आव-

श्यक है। ऐसे लोगों की ओर कम्युनिस्ट राज्यों में भी विशेष ध्यान दिया जाता है। वैदिक प्रार्थनाओं में सभी लोगों के सुखी रहने की कामना है, केवल ब्राह्मणों के सुख की नहीं।

जहाँ तक गौरक्षा का सम्बन्ध है, यह हिन्दू राजा और राज्य की सदा विशेष जिम्मेदारी मानी गई है। इसके अनेक कारण हैं। गाय एक अति उपयोगी जीव है। गाय का दूध गुणों की दृष्टि से मानव माँ के दूध से सबसे अधिक मेल खाता है। गाय का अपने बछड़े के प्रति प्यार तो मातृप्यार का उत्कृष्ट नमूना माना जाता है। भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में कई दृष्टियों से गाय और बैल आज भी जीवन का आधार हैं। यही कारण है कि हिन्दुस्तान में गाय का कल्याण जनकल्याण का अंग माना जाता रहा है। इसीलिए गो-रक्षा के साथ जनभावना जुड़ गई है।

जब पारसी लोग इस्लामी दमन से शरण लेने के लिए भारत में आये, उनपर गुजरात के राजा ने केवल एक शर्त लगाई थी कि वे गौ-वध नहीं करेंगे। पारसियों ने इस शर्त को सहर्ष स्वीकार किया था क्योंकि इसका उनके मजहब और जन-कल्याण के साथ किसी प्रकार का टकराव नहीं था।

जब मुस्लिम भारत में आए तब भारत के हिन्दू शासकों द्वारा मुसलमान शासकों के साथ की गई संधियों में इस बात का स्पष्ट उल्लेख रहता था कि उनके राज्य में गोवध नहीं होगा। अकबर जैसे कुछ मुस्लिम शासकों ने भी गोवध पर रोक लगाई थी। उन्हें यह एहसास हो गया था कि हिन्दू जनता का सहयोग प्राप्त करने और अपनी गद्दी को सुरक्षित करने के लिए गौहत्या बन्द करना आवश्यक है। अकबर के निधन के बाद मुग़ल साम्राज्य के विरुद्ध उठे राष्ट्रवादी आन्दोलनों का एक प्रमुख कारण उसके उत्तराधिकारियों द्वारा गौरक्षा की नीति को त्यागना था। १८५७ में ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध जनविद्रोह में भी गो के सम्बन्ध में इस जन-भावना ने प्रमुख भूमिका अदा की थी।

ब्रिटिश राज्यकाल में भी हिन्दू राजाओं द्वारा ब्रिटिश सरकार के साथ सन्धियों में अपने राज्य में गोवध न होने देने की शर्त रहती थी।

जब महाराजा रणजीतसिंह ने अपनी सेना के आधुनिकीकरण के लिए कुछ ईसाई-फ्रेंच जर्नल भरती किये तब उन्होंने भी उन पर केवल एक शर्त

लगाई कि वे गौवध नहीं करेंगे और गौ माँस नहीं खाएँगे, उसी महाराजा रणजीतसिंह ने अपने इन ईसाई अफसरों के लिए लाहौर में पहला गिर्जाघर स्वयं बनवाया। इससे स्पष्ट है कि गौरक्षा के राज्य का सेक्यूलर होने या न होने से कोई सम्बन्ध नहीं। वास्तव में गौवध न होना हिन्दुस्तान की प्रभुसत्ता का एक अभिन्न अंग है। जब तक हिन्दुस्तान में गौवध होता रहेगा, इसे प्रभुसत्तासम्पन्न स्वतन्त्र देश नहीं माना जा सकता। यही कारण था कि गांधीजी ने बार-बार कहा और लिखा था कि स्वतन्त्रता के बाद भारत सरकार का पहला काम गौ हत्या पर पूर्ण रोक लगाना होगा।

हिन्दू संस्कृति और परम्परा के रचनात्मक और तर्कात्मक पंथ निरपेक्ष-वाद के साथ प्रतिबद्धता के लिए मुस्लिम राज्य काल एक बड़ा चुनौती और परीक्षा का समय था। मुस्लिम राज्य थियोक्रेटिक राज्य थे। वे हिन्दू मन्दिरों को तोड़ना और हिन्दुओं को अपमानित करना, मारना और मुसलमान बनाना अपना मज़हबी कर्तव्य समझते थे। यही स्थिति गोवा के ईसाई राज्य की थी। उस काल में भी छत्रपति शिवाजी और महाराजा रणजीतसिंह ने जो हिन्दू राज्य स्थापित किये उन्होंने इस्लामी राज्यों का अनुकरण न करके सहिष्णुता और सर्वपंथ समभाव की हिन्दू परम्परा को कायम रखा। यदि ये हिन्दू शासक मुसलमानों के प्रति वही व्यवहार करते जो मुस्लिम राज्यों में हिन्दुओं के साथ होता था, तो उन पर कोई लांछन न आता। परन्तु उन्होंने अपनी परम्परा का पालन करके यह सिद्ध कर दिया कि हिन्दू राज्य कभी मुस्लिम राज्य की तरह मज़हबी राज्य नहीं हो सकता।

छत्रपति शिवाजी जीवनपर्यन्त धर्मान्धता और धर्मान्ध मुस्लिम शासकों से लड़ते रहे परन्तु अपना हिन्दू स्वराज्य स्थापित करने के बाद उन्होंने अपनी मुस्लिम प्रजा के साथ किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया। औरंगजेब का सरकारी इतिहासकार काफी खाँ, जो शिवाजी को 'नरक का कुत्ता' कहकर सम्बोधित करता है, वह भी यह लिखने पर बाध्य हुआ कि शिवाजी मुसलमानों के धर्मस्थान और धर्मपुस्तकों का भी आदर करता है और मज़हब के आधार पर भेदभाव नहीं करता।

महाराजा रणजीतसिंह का आचरण भी ऐसा ही था। उनका विदेश

मन्त्री फकीर अजीजुद्दीन मुसलमान था। कुछ लोगों द्वारा यह मांग की जाने पर भी कि वे अपने महल के निकट स्थित शाही मस्जिद को नष्ट करा दें, उन्होंने ऐसा नहीं किया और वह मस्जिद आज भी लाहौर में खड़ी है।

शिवाजी की तरह राजा रणजीतसिंह भी अच्छे हिन्दू थे और गुरुओं के सच्चे शिष्य यानी सिक्ख थे। वे नियमित रूप में हरिद्वार तथा अन्य पवित्र स्थानों की यात्रा करते थे। उन्होंने कोहिनूर हीरा उड़ीसा के जगन्नाथ मन्दिर पर चढ़ाने का संकल्प किया था। उनका राज्य अच्छा हिन्दू राज्य या, अच्छा सिक्ख राज्य था। परन्तु यह आज के ब्रिटेन से कम 'सेक्यूलर' नहीं था।

जिस समय संसार भर में सेमेटिक मजहबों के लोग मजहबी राज्य चला रहे थे और काफ़िरों पर भीषण अत्याचार कर रहे थे, उस समय भी भारत के हिन्दू राज्यों का यह गैरमज़हबी और सहिष्णु चरित्र हिन्दू परम्परा की सार्वभौमिकता, मानवता और सब पंथों के अनुयायियों के प्रति समान भाव रखने का ज्वलन्त प्रमाण और हिन्दू राज्य के गैरमज़हबी होने की गारंटी है।

यह कहना कि भारत में सेक्यूलरिज़्म गांधीजी और नेहरू की देन है, सर्वथा गलत है। जिस समय शिवाजी और रणजीतसिंह ने अत्यन्त कठिन परिस्थितियों में भी सच्चे अर्थों में गैरसम्प्रदायक हिन्दू परम्परा का दीपक जलाए रखा था, उस समय गांधी और नेहरू का जन्म भी नहीं हुआ था। वास्तविकता यह है कि गांधी और नेहरू ने सहिष्णुता और रवादारी को हिन्दू परम्परा का राष्ट्रविरोधी तत्त्वों के तुष्टीकरण के लिए दुरुपयोग किया और हिन्दुस्तान की एकता को नष्ट करने का पाप किया। उनका दृष्टिकोण दूषित था। उनका सेक्यूलरिज़्म राष्ट्रीय हितों की कीमत पर राष्ट्र-द्रोही और राष्ट्रविरोधी तत्त्वों के तुष्टीकरण का दूसरा नाम था। उन्होंने अपने मुस्लिम-परस्त उलटे सम्प्रदायवाद को सेक्यूलरवाद के रूप में पेश करके जनता को धोखा देने का प्रयत्न किया।

यही कारण है कि उनकी नीतियों का उलटा परिणाम निकला। सम्प्रदायवादी मुसलमानों का जितना अधिक तुष्टीकरण उन्होंने किया वे उतने ही अधिक सम्प्रदायवादी और अड़ियल होते चले गए। इस दृष्टिकोण

की अव्यावहारिकता और विफलता विभाजन ने सिद्ध कर दी। इस मामले में गांधी-नेहरू की देन यदि कुछ थी तो वह अखंड भारत के साथ ही दफन हो गई।

हिन्दुस्तान के मजहब के आधार पर विभाजन और पाकिस्तान के ऐसे इस्लामी राज्य जिसमें हिन्दुओं के इस्लाम या मौत के सिवाय कोई विकल्प नहीं था, बन जाने के बाद भी खंडित हिन्दुस्तान गैर-साम्प्रदायिक राज्य बनने का फैसला केवल इसलिए कर सका क्योंकि यह हिन्दू है। हिन्दू परम्परा और संस्कृति के प्रभाव के कारण ही इसने पाकिस्तान का अनुकरण नहीं किया।

भारत राज्य में आज जो कुछ भी 'सेक्यूलर' तत्त्व है, वे इसकी हिन्दू परम्परा और हिन्दू चरित्र के कारण है, गांधी, नेहरू या किसी और नेता के कारण नहीं।

इस समय भारत का तथाकथित 'सेक्यूलरवादी' उन परम्पराओं का जो संसार में सर्वमान्य है, उल्लंघन कर रहा है। 'सेक्यूलरिज़्म' का तकाजा है कि नागरिकों के बीच मजहब के नाम पर कोई भेदभाव न हो और सबके लिए समान कानून हो। भारत के संविधान में भी यह बात स्पष्ट रूप में कही गई है। परन्तु भारत में अभी तक मुसलमानों पर अलग मजहबी कानून लागू होता है जिसके अनुसार वे एक साथ चार बीवियाँ रख सकते हैं और कई प्रकार की और खुराफात भी कर सकते हैं।

इस समय भारत में मुसलमान तथा अन्य अल्पमतों द्वारा चलाई जाने वाली शिक्षा तथा अन्य संस्थाओं को ऐसी विशेष सुविधाएँ प्राप्त हैं जो राष्ट्रीय समाज द्वारा चलाई जाने वाली संस्थाओं को उपलब्ध नहीं। सेक्यूलरिज़्म सबसे समान बर्ताव की माँग तो करता है, किसी एक सम्प्रदाय के लोगों के पक्ष में अल्पमत के अधिकारों के नाम पर भेदभाव या विशेष बर्ताव करना 'सेक्यूलरिज़्म' और सार्वजनिक नैतिकता के विपरीत है। संसार में कहीं भी अल्पमतों को वह अधिकार नहीं दिये जाते जिनसे बहुमत को भी वंचित रखा गया हो।

इस प्रकार की विकृतियाँ दूर करने का एकमात्र उपाय भारत को हिन्दू राज्य घोषित करना है। हिन्दुस्तान का हिन्दूपन ही इस बात की

गारंटी है कि हिन्दू राज्य गैर साम्प्रदायिक रहेगा। इसके हिन्दूपन को कायम रखने के लिए आवश्यक है कि इसे औपचारिक रूप में हिन्दू राज्य घोषित किया जाय। यह कहकर कि हिन्दू राज्य मज़हबी राज्य या, थियोक्रेटिक स्टेट होगा, हिन्दुस्तान को हिन्दू राज्य घोषित करने के विरोध का न कोई तार्किक आधार है और न कोई औचित्य है। यह तर्क और तथ्यों के विपरीत भी है।

संसार में इस समय नेपाल एकमात्र हिन्दू राज्य है जहाँ कोई इसपर इस कारण उँगली नहीं उठा सकता है कि वहाँ के मुस्लिम नागरिकों के साथ समान व्यवहार नहीं होता; नेपाल के मुस्लिमों की स्थिति बंगला देश, पाकिस्तान और अन्य मुस्लिम राज्यों में हिन्दू, बौद्ध और ईसाइयों की स्थिति की अपेक्षा कई गुना बेहतर है। यदि हिन्दुस्तान हिन्दू-बहुल न रहा, यदि यह कभी मुस्लिम-बहुल बन गया तो इसके 'सेक्यूलरिज़म' और गैर साम्प्रदायिक चरित्र को वास्तविक खतरा पैदा होगा। इसलिए हिन्दुस्तान को गैर-साम्प्रदायिक और सर्वपंथ समभाव से प्रतिबद्ध राज्य बनाए रखने के लिए इसका हिन्दू राज्य होना आवश्यक है।

अब जबकि हिन्दुस्तान के इस्लामीकरण के योजनाबद्ध प्रयास चल रहे हैं और जब अरबों की धनशक्ति और पाकिस्तान की सैनिक शक्ति का हिन्दुस्तान के हिन्दू चरित्र को बदलने के लिए गठजोड़ हो गया है, हिन्दुस्तान में सर्वपंथ समभाव के अर्थ में सेक्यूलरिज़म और लोकतन्त्र दोनों का भविष्य खतरे में पड़ गया है। यदि परमात्मा न करे यहाँ मुसलमानों की संख्या ५० प्रतिशत के निकट हो जाय तो तुरन्त हिन्दुस्तान को इस्लामी राज्य घोषित करने की माँग उठेगी। वह भारत में सर्वपथ-समभाव तथा लोकतन्त्र दोनों के लिए मौत की घंटी होगी। इसलिए समय पूर्व चेत जाना बेहतर है। हिन्दुस्तान को हिन्दू राज्य घोषित करना इसके गैर-साम्प्रदायिक चरित्र को बनाए रखने, इसमें धार्मिक स्वतन्त्रता और विचार की स्वतन्त्रता को कायम रखने और सभी वफादार नागरिकों के प्रति रवादारी का भाव बनाए रखने के लिय आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी हो गया है। हिन्दू राज्य में ही सेक्यूलरिज़म की आत्मा जीवित रह सकती है।

: ५ :

हिन्दू राज्य और अल्पमत

सेमेटिक मजहबों के अनुयायियों, मैकाले के मानसपुत्रों व तथाकथित सेक्यूलरवाद के ठेकेदारों द्वारा हिन्दुस्तान को हिन्दू राज्य घोषित करने के विरुद्ध एक अन्य तर्क यह दिया जाता है कि हिन्दू राज्य में अल्पमत सुरक्षित नहीं होंगे। वे पूछते हैं कि क्या हिन्दू राज्य में अल्पमतों को शान्ति मिल सकेगी। इससे न केवल उनके अज्ञान और ऐतिहासिक तथ्यों से अनभिज्ञता झलकती है, अपितु इस्लामी राज्यों में अमुस्लिमों, विशेष रूप में हिन्दू-बौद्ध अल्पमतों की दुर्दशा के कारण चोर की दाढ़ी में तिनके, के अनुरूप उनकी अपराधी मानसिकता भी सामने आ जाती है। अतः यह आवश्यक है कि संसार-व्यापी अल्पमत समस्या, विशेष रूप में मज़हबी अल्पमतों की समस्या का गहराई से अध्ययन किया जाय।

अल्पमतों की समस्या केवल हिन्दुस्तान में ही नहीं है। यह संसार के सभी देशों और राज्यों में विद्यमान है। राष्ट्र राज्यों के उदय और राष्ट्रीय अधिकारों से अलग मानवाधिकारों की कल्पना के कारण यह समस्या उभर कर सामने आई। फलस्वरूप 'लीग ऑफ नेशन्ज़' और संयुक्त राष्ट्र संघ को इसकी ओर ध्यान देना पड़ा। उनके सामने पहले यह प्रश्न प्रस्तुत हुआ कि अल्पमत की व्याख्या कैसे की जाय। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा गठित मानवाधिकार आयोग ने इस काम के लिए १९४० में एक उपसमिति बनाई। इस उपसमिति ने लम्बे अध्ययन और वाद-विवाद के बाद अपने ८ जनवरी, १९५० में पारित प्रस्ताव के द्वारा अल्पमत की निम्नलिखित व्याख्या की है—

"The term minority includes only those non-domi-

nant groups in a population which possess and wish to preserve stable ethnic, religions or linguistic traditions or characteristics markedly different from those of the rest of the population. Such minorities should properly include a number of persons sufficient by themselves to develop such characteristics and the *'members of such minorities must be loyal to the state of which they are nationals'."*

अर्थात् "अल्पमत के अन्तर्गत किसी राज्य की जनसंख्या के ऐसे कम शक्ति वाले तत्व आते हैं जो शेष आबादी से भिन्न अपनी नसली, भाषाई अथवा साम्प्रदायिक विशिष्टताओं को बनाये रखना चाहते है। ऐसे अल्पमतों की संख्या इतनी होनी चाहिये कि वे अपने में उन विशिष्टताओं को व्यावहारिक रूप में कायम रख सकें। दूसरे, ऐसे **अल्पमत समुदायों के सदस्यों की आस्था उस राज्य के प्रति जिसके कि वे नागरिक हैं, असंदिग्ध होनी चाहिये'।"**

इस व्याख्या से यह स्पष्ट है कि संसार में तीन प्रकार के अल्पमत हैं; नसली या जाति सम्बन्धी, भाषाई और मजहबी या पंथिक।

जाति सम्बन्धी या नसली अल्पमत लोग राष्ट्र की मुख्य धारा से रंग और नक्शभेद से पहिचाने जाते हैं। हिन्दुस्तान इत्यादि एशियाई देशों से गये लोग और श्वेत जातियों के लोग जो अफ्रीका के राज्यों में रहते हैं तथा अफ्रीकी उद्गम के नीग्रो लोग और एशियाई उद्गम के लोग जो ब्रिटेन और अमरीका के देशों में रहते हैं उन्हें जातीय अथवा नसली अल्पमत कहा जाता है। उनका उन देशों की राष्ट्रीय धारा के साथ पूरी तरह एक रूप होना कठिन होता है क्योंकि रंग और नक्शभेद मिटाए नहीं जा सकते। ऐसे अल्पमत समुदायों को वहाँ के बहुमत लोगों, जिनके हाथ में सत्ता केन्द्रित होती है, की दया पर रहना पड़ता है। यदि ऐसे लोगों के पास कोई ऐसा विशिष्ट क्षेत्र या इलाका न हो जिसे वे अपना अलग होमलैण्ड बना सकें तो उन्हें सदा यह खतरा रहता है कि वहाँ का बहुमत या राष्ट्रीय समुदाय उन्हें कहीं खदेड़ न दे। उगांडा जैसे कई अफ्रीकी देशों से एशियाई

अल्पमत खदेड़े जा चुके हैं। जिम्बाब्वे के श्वेत अल्पमत का भी वही हश्र होना दिखता है।

सोवियत संघ और कम्युनिस्ट चीन अपने-अपने क्षेत्र के नसली अल्पमतों को, जिनमें से अधिकांश इस्लामवाद के अनुयायी हैं, आत्मसात् करने के लिए कई उपाय कर रहे हैं। एक उपाय इस्लामवाद के ऊपर साम्यवाद का चोगा डालकर एक नए प्रकार के मजहब और राजनीति का मिश्रण बनाना है। साम्यवाद और इस्लामवाद के कई दृष्टियों से समस्वरूप के कारण यह उपाय कहीं-कहीं कारगर हो रहा है। इस नए मिश्रण के लिए मोहम्मद के स्थान पर या मार्क्स को लादा जाता है और या मोहम्मद तथा मार्क्स को जोड़ दिया जाता है। इस उपाय से अनेक मुसलमान समुदाय और राज्य कम्युनिज़म के शिकंजे में आ चुके हैं।

दूसरा उपाय है अपने-अपने अल्पमतों का रूसीकरण या चीनीकरण करना। इस हेतु योजनाबद्ध ढंग से इन अल्पमतों में साम्यवाद का प्रचार किया जा रहा है और उनपर रूसी अथवा चीनी भाषा और संस्कृति थोपी जा रही है। सोवियत संघ के मध्य एशिया के मुस्लिम बहुल राज्यों के लोगों ने रूसी नाम, रूसी रीति-रिवाज और जीवन पद्धति बहुत कुछ अपना ली है। इस्लाम को कम्युनिज़म के रंग में रंगने से इस प्रक्रिया को बल मिला है। चीन भी यही कुछ कर रहा है। इसने अपने मध्य एशियाई क्षेत्रों के तुर्क उद्‌गम के मुसलमानों का पूरी तरह चीनीकरण कर डाला है। तिब्बत में भी चीन यही प्रक्रिया चला रहा है।

परन्तु इस्लाम के गत अनुभव और पड़ोसी ईरान और पाकिस्तान में इस्लामी सिद्धान्तवाद की बाढ़ के कारण रूस के कर्णधारों को सन्देह है कि वे अपने राज्यों के मुसलमानों का पूरी तरह रूसीकरण कर पाएँगे कि नहीं, इसलिए वे उनको अप्रभावी बनाने के लिए उन क्षेत्रों में श्वेत रूसियों को बड़ी संख्या में बसा रहे हैं। फलस्वरूप रूस के मध्य एशिया के कुछ राज्यों की जनसंख्या में अब रूसियों का अनुपात ३५ से ४० प्रतिशत तक पहुँच चुका है। इससे उन्हें दो लाभ हुए हैं, एक तो रूसी जनसंख्या के बढ़ने से इन क्षेत्रों और वहाँ के लोगों के रूसीकरण की प्रक्रिया तेज हो गई है और दूसरे इन क्षेत्रों के मुसलमानों द्वारा विद्रोह करने और सोवियत रूस से

अलग होने का खतरा कम हो गया है। चीन भी ऐसा ही कर रहा है। वह चीन साम्राज्य के गैर-चीनी क्षेत्रों में इन चीनियों को योजनाबद्ध और प्रभावी ढंग से बसा रहा है।

सोवियत रूस के नेता इन उपायों की उपादेयता और सार्थकता से इतने प्रभावित हैं कि सोवियत प्रधान-मन्त्री श्री निकिता ख्रुश्चेव ने पं० नेहरू को काश्मीर घाटी के भारतीयकरण करने के लिए यह उपाय अपनाने की सलाह दी थी। यह और बात है कि पं० नेहरू ने काश्मीर घाटी में पाकिस्तान से आए शरणार्थियों और अन्य क्षेत्रों के हिन्दुओं को बसाने की सलाह नहीं मानी और काश्मीर को एक छोटा पाकिस्तान बनने दिया। फलस्वरूप काश्मीर घाटी भारत के अन्तर्गत पाकिस्तानी एजेंटों और षड्-यन्त्रों का अड्डा बन गई है।

जहाँ तक भाषाई अल्पमतों का सम्बन्ध है, वे न केवल संसार के प्रायः सब देशों और राज्यों में विद्यमान हैं, अपितु हिन्दुस्तान, रूस और चीन जैसे बड़े राज्यों के विभिन्न प्रदेश में भी मिलते हैं। भाषा-विज्ञान के अनुसार आठ मील पर शब्दों के उच्चारण में कुछ फर्क पड़ जाता है। जहाँ बीच में समुद्र, नदी अथवा पहाड़ पड़ता हो, वहाँ इस प्रकार का अन्तर इससे कम फासले पर भी आ जाता है और वह अधिक स्पष्ट होता है। भाषा-विज्ञान के अनुसार भाषाओं में बदल की इस प्रक्रिया के कारण ही वैदिक संस्कृत में से भारत की अनेक क्षेत्रीय भाषाएँ उपजी हैं।

भाषाई अल्पमत दो प्रकार के होते हैं। एक वे जो एक ही बड़े बहु-भाषी देश के विभिन्न क्षेत्रों या उपराज्यों के सीमावर्ती क्षेत्रों में मिलते हैं। इस प्रकार के भाषाई अल्पमतों की समस्याओं का समाधान राष्ट्र-भाषा अथवा सम्पर्क भाषा के प्रचार व प्रसार, सभी भाषाओं के लिए एक ही लिपि के प्रयोग और अल्पमतों की भाषा का अपनी भाषा के पढ़ने-पढ़ाने और स्थानीय शासन में उसके प्रयोग की सुविधा उपलब्ध कराके किया जा सकता है।

दूसरी प्रकार के भाषाई अल्पमत वे होते हैं जो किसी एक सर्व सत्ता सम्पन्न राष्ट्रीय राज्य में रहते हों। इस प्रकार के भाषाई अल्पमतों को राष्ट्रीय अल्पमत भी कहा जाता है क्योंकि इस प्रकार के अल्पमतों की भाषा

बहुधा पड़ोसी राष्ट्रीय राज्य की भाषा होती है। इस प्रकार के भाषाई अल्पमतों की समस्या अधिक जटिल होती है क्योंकि इसके साथ बहुत बार राजनीति भी जुड़ी रहती है। पाकिस्तान में पश्तो भाषाभाषी, श्रीलंका में तमिल भाषाभाषी और सोवियत रूस में पोलिश भाषाभाषी अल्पमतों की समस्या इस दूसरे प्रकार की है। इस प्रकार के अल्पमत साधारणतया या तो अपने लिए अलग राज्य चाहते हैं और या अपने क्षेत्र को अपनी भाषा के राष्ट्रीय राज्य में मिलाना चाहते हैं। इस प्रकार के आन्दोलनों को अलगाववादी आन्दोलन कहकर 'पुर्नमिलनवादी' आन्दोलन कहा जाता है।

संयुक्त राष्ट्र संघ ने भाषाई अल्पमतों के प्रति व्यवहार के लिए कुछ मार्गदर्शक सिद्धान्त तय कर रखे हैं। ऐसे अल्पमतों को अपनी भाषा के प्रयोग की दृष्टि से जो सुविधाएँ मिलनी चाहिये उनका ब्योरा भी दे रखा है।

संयुक्त राज्य अमेरिका की सारी जनसंख्या विविध भाषाभाषी लोगों के मेल से बनी हुई है जो कालान्तर में यूरोप के राष्ट्रीय राज्यों से जाकर वहाँ बस गये हैं। परन्तु अमेरिका ने अपनी भाषा-समस्या का हल सारे देश में रोमन लिपि में लिखी जाने वाली अमेरिकन इंग्लिश के राष्ट्रभाषा के रूप में प्रचार और प्रसार से कर लिया है।

सोवियत संघ, हिन्देशिया और चीन ने भाषा के मामले में ऐसी ही नीति अपनाई है। हिन्देशिया में 'भाषा-हिन्देशिया', सोवियत संघ में रूसी भाषा और चीन में चीनी भाषा इन विशाल देशों में बोली जाने वाली विभिन्न बोलियों और क्षेत्रीय भाषाओं पर पूरी तरह हावी हो चुकी है। इन सभी देशों में अपनी सभी बोलियों और भाषाओं के लिए एक-एक साँझी लिपि अपनाकर अपने भाषाई अल्पमतों को राष्ट्रीय धारा और उन की बोलियों को राष्ट्रभाषा से एकरूप होने का मार्ग सुगम कर दिया है।

हिन्दुस्तान में दो सौ के लगभग बोलियाँ और बीस विकसित क्षेत्रीय भाषाएँ प्रचलित हैं। परन्तु हिन्दुस्तान में हर काल में एक साँझी भाषा और साँझी लिपि रही है जिसने विभिन्न भाषाभाषी भारतीयों को एक-दूसरे के साथ और राष्ट्रीय समाज के साथ ताल-मेल बैठाने में सकारात्मक

भूमिका अदा की है।

संस्कृत भाषा और पाली प्राकृत ने साँझी भाषा का रोल लम्बे काल तक अदा किया। अब हिन्दी भाषा यह भूमिका अदा कर रही है।

यदि देवनागरी लिपि को भारत की सभी भाषाओं की साँझी लिपि मान लिया गया होता और सभी भाषाओं के सरल और तकनीकी शब्दों का एक साँझा शब्दकोश बनाकर हिन्दी और अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में लिखी जाने वाली पाठ्य-पुस्तकों में उन्हीं शब्दों का प्रयोग किया जाता तो स्वतन्त्र भारत में हिन्दी के प्रचार और प्रसार का कार्य बहुत सुगम हो जाता। यदि ये दो काम अब भी कर लिये जाएं तो भारत में भाषाई अल्पमतों की समस्या बहुत-कुछ हल हो जाय। बेहतर होगा कि इस साँझे शब्दकोश का प्रयोग करने वाली देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिन्दी को राष्ट्र-भाषा के रूप में भाषा-भारती की संज्ञा दे दी जाय।

उर्दू, जिसे मुस्लिम अल्पमत की भाषा के रूप में बढ़ावा दिया जा रहा है, हिन्दी की ही एक शैली है क्योंकि इसकी सारी क्रियाएं हिन्दी और संस्कृत से ली गई हैं। परन्तु इसको लिखने के लिए प्रयुक्त होने वाली फारसी लिपि न केवल एक विदेशी लिपि है, अपितु अति कठिन और अवैज्ञानिक भी है। यदि उर्दू को १९४७ के पूर्व की तोड़-फोड़ की भूमिका फिर अदा करने से रोकना है तो इसके लिखने के लिए देवनागरी लिपि का अपनाया जाना आवश्यक ही नहीं अपितु अनिवार्य भी है।

मजहबी अथवा साम्प्रदायिक अल्पमतों की समस्या अधिक कठिन और पेचीदा है। कुछ-न-कुछ मात्रा में यह समस्या सभी देशों में है। कुछ देशों में साम्प्रदायिक अल्पमत के लोग विशिष्ट इलाकों में केन्द्रित हैं। परन्तु आम-तौर पर मजहबी अल्पमत विभिन्न देशों के सभी भागों में फैले हुए मिलते हैं। जो लोग यह पूछते हैं कि यदि हिन्दुस्तान हिन्दू राज्य बन गया तो अल्पमतों का क्या होगा? वे मुख्यतः मजहबी अल्पमतों के विषय में ही सोचते हैं।

संसार में दो प्रकार के मजहबी अल्पमत मिलते हैं, सेमेटिक मजहबों, विशेष में इस्लाम से सम्बन्धित अल्पमत एक विशेष प्रकार के अल्पमत हैं

और वे जहाँ कहीं भी रहते हैं वहाँ एक विशेष समस्या प्रस्तुत करते हैं। दूसरे प्रकार के मज़हबी अल्पमत वे हैं जिनका सम्बन्ध भारतीय वैदिक उद्गम के पंथों जैसे बौद्ध, जैन, सिक्ख पन्थ इत्यादि के साथ है। मज़हबी अल्पमतों के प्रति रवैया और व्यवहार भी उन देशों में जहाँ सेमेटिक मतों के लोग विशेष रूप में इस्लामवादी सत्ता में हैं, उन देशों से जहाँ भारतीय पन्थों के लोग सत्ता में अथवा बहुमत में हैं, बहुत भिन्न है।

इसलिए मज़हबी अल्पमतों के प्रश्न पर विभिन्न देशों के बहुमत और सत्ता वाले मज़हब और अल्पमत समुदाय के पन्थ अथवा सम्प्रदाय के परि-प्रेक्ष्य में विचार करना होगा।

सेमेटिक मज़हबों अथवा पन्थों के अनुयायियों के वर्चस्व वाले राज्य अन्य पन्थों के लोगों का बराबरी के आधार पर सह-अस्तित्व का अधिकार स्वीकार नहीं करते। यह सेमेटिक परम्परा जो पहले-पहल यहूदी मत के वर्चस्व वाले फिलिस्तीन से शुरू हुई, ईसाई राज्यों ने भी अपनाई और आज भी मुस्लिम राज्यों में कायम है। परन्तु यहूदी लोगों का वर्चस्व उस समय समाप्त हो गया जब फिलिस्तीन पर गैर-यहूदी लोगों का अधिकार हो गया और यहूदी लोगों को अपनी जान और मज़हब को बचाने के लिए संसार भर के देशों में शरण लेनी पड़ी। उन यहूदियों को छोड़कर जिन्होंने हिन्दुस्तान के हिन्दू राज्यों में शरण ली, अन्य सभी यहूदियों को जिन्होंने ईसाई अथवा इस्लामी वर्चस्व वाले राज्यों में शरण ली, अथाह यातनाएँ सहनी पड़ीं। नाजी जर्मनी में यहूदियों के नरसंहार की स्मृति अभी ताजी है। कम्युनिस्ट रूस में, जो अपने-आपको सेक्यूलर राज्य कहता है, यहूदी अभी भी उत्पीड़ित हैं। सीरिया इत्यादि इस्लामी देशों में रहने वाले यहूदियों की दशा और भी दयनीय रही है।

१९४८ में इस्राइल के रूप में स्वतन्त्र यहूदी राज्य कायम होने से अन्य देशों के यहूदी अल्पमतों की दशा में कुछ सुधार हुआ है। संसार के सभी देशों के यहूदी अलपमत अब इस्राइल की ओर सहायता और शरण के लिए देख सकते हैं। लम्बे काल तक यातनाएँ सहन करने के कारण यहूदी कुछ लचकीले भी हो गए हैं। अतः वे इस्राइल में बसे गैर-यहूदी अल्पमतों, जिनमें मुसलमान प्रमुख हैं, के प्रति सहिष्णु हो गए हैं। इस्राइल में मुसल-

मान अल्पमत लगभग २० प्रतिशत है, परन्तु वे और अन्य अल्पमत इस्राइल राज्य में यहूदियों के विशेष अधिकारों और कर्तव्यों की वास्तविकता को स्वीकार करके रहते हैं।

ईसाई राज्य में गैर-ईसाई नागरिकों के उत्पीड़न की भी लम्बी कहानी और परम्परा है। हिन्दुस्तान के अन्तर्गत गोआ क्षेत्र जब पुर्तगाली ईसाइयों के अधिकार में आ गया तब वहाँ पर भारतीय हिन्दू पन्थों के अनुयायियों के प्रति जो दुर्व्यवहार किया जाता रहा वह सर्वविदित है। १६वीं शताब्दी में जब ईसाई जगत् रोमन कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट सम्प्रदायों के बीच बंट गया तो उनका आपसी व्यवहार और भी कटु और असहिष्णु हो गया। प्रोटेस्टेंट ब्रिटेन में रोमन कैथोलिकों और फ्रांस में प्रोटेस्टेंटों के प्रति अमानुषिक व्यवहार की कहानी लम्बी और दर्दनाक है। इस समय भी उत्तरी आयरलैण्ड में जहाँ प्रोटेस्टेंट लोगों का वर्चस्व है, रोमन कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट ईसाइयों के बीच खूनी संघर्ष चल रहा है। हिन्दुस्तान के अन्तिम ब्रिटिश वायसराय लॉर्ड माउण्टबेटन की एक रोमन कैथोलिक द्वारा हाल ही में हुई हत्या ने ईसाई राज्यों और ईसाई समाजों में आज भी व्याप्त मजहबी असहिष्णुता को उजागर कर दिया है। हिन्दुस्तान के अन्तर्गत ईसाई-बहुल नागालैण्ड राज्य में गैर-ईसाई नागरिकों के प्रति होने वाला दुर्व्यवहार भी ईसाई पन्थ वालों की इसी असहिष्णुता का परिचायक है।

मुस्लिम राज्यों में गैर-मुसलमानों के प्रति व्यवहार का रिकार्ड इससे कहीं अधिक बदतर है। मुस्लिम राज्यों में गैर-मुस्लिमों के प्रति कोई दया न दिखाने की परम्परा स्वयं हजरत मोहम्मद ने शुरू की थी। जब उन्होंने मदीना पर अधिकार कर लिया और मदीना के लोगों ने उन्हें आप मजहबी गुरु (खलीफा) और राजनीतिक नेता (इमाम) मान लिया, तब उन्होंने यहूदियों को इस्लाम या मौत में से एक को चुनने के लिए आह्वान किया। जिन्होंने इस्लाम कबूल करने से इन्कार किया उन्हें तलवार के घाट उतार दिया गया। इस प्रकार इस्लामी राज्य में गैर-मुसलमानों को समाप्त करने की परम्परा शुरू हुई।

कालान्तर में इस्लामवादियों ने यह महसूस किया कि उनके द्वारा विजित देशों में रहने वाले सभी यहूदियों, ईसाइयों और पारसियों को, जो

मुसलमान बनने के लिए तैयार न हों, जान से मार देना न सम्भव है और न उनके अपने लिए हितकर। इसलिए खलीफ़ा उमर को परिस्थितियों से बाध्य होकर इस्लामी राज्यों में गैर-मुसलमानों को कुछ शर्तों पर जिन्दा रहने देने की अनुमति देनी पड़ी। इन शर्तों पर इस्लामी राज्यों में उन गैर-मुसलमानों को जीने का अधिकार दिया गया जिनके अपने-अपने पैगम्बर और पवित्र किताबें हैं और जिन्हें सामूहिक रूप में 'अहल-ए-किताब' कहा जाता है। शेख हमदानी ने अपनी पुस्तक 'जसीरात-ए-उल-मुल्क' में इन शर्तों का उल्लेख किया है। ये शर्तें इस प्रकार हैं—

१. वे नये मन्दिर या पूजागृह नहीं बनाएँगे।

२. वे पुरानी इमारतों का, जो तोड़ दी गई हैं, पुनर्निर्माण नहीं करेंगे।

३. मुस्लिम यात्रियों को मन्दिरों में ठहरने पर कोई रोक नहीं होगी।

४. कोई मुसलमान किसी गैर-मुस्लिम के घर में तीन दिन तक रह सकता है और इस काल में उसके द्वारा किये गये किसी कृत्य को गुनाह नहीं माना जाये।

५. यदि कोई अमुस्लिम मुसलमान बनना चाहे तो उसे रोका नहीं जाय।

६. मुसलमानों का आदर किया जाय।

७. यदि अमुस्लिम कहीं सभा कर रहे हों तो मुसलमानों को उसमें आने से रोका न जाय।

८. वे मुसलमानों जैसे नाम न रखें।

९. वे मुसलमानों जैसे कपड़े न पहनें।

१०. वे काठी और लगाम वाले घोड़ों पर न चढ़ें।

११. वे अपने पास खड्ग और तीर कमान न रखें।

१२. वे अंगूठी न पहनें।

१३. वे शराब का प्रयोग न करें, न बेचें।

१४. वे अपना पुराना लिबास न छोड़ें।

१५. वे अपने रीति-रिवाजों और धर्म का प्रचार न करें।

१६. वे अपने घर मुसलमानों के घरों के निकट न बनाएं।

१७. वे अपने मृतकों के शव मुसलमानों के कब्रिस्तान के निकट न लाएं।

१८. वे अपने मृतकों के लिए ऊँची आवाज में मातम न करें।

१९. वे मुस्लिम दास न खरीदें।

२०. वे न गुप्तचरी करें और न किसी गुप्तचर को किसी प्रकार की सहायता दें।

इन शर्तों पर सख्ती से अमल किया जाता था। फलस्वरूप मुस्लिम राज्यों में गैर-मुस्लिमों की हालत गुलामों से बदतर हो जाती थी।

विभिन्न देवी-देवताओं की पूजा करने वालों को इन सभी से अधिक पतित समझा जाता था। शुरू में उनके लिए इस्लाम या मौत के अतिरिक्त कोई विकल्प न था। परन्तु जब सिन्ध पर विजय पाने के बाद इस्लामी शासकों ने देखा कि हिन्दू साधारणतया इस्लाम कबूल करने से मौत को वरीयता देते हैं तो उनके लिए भी अपवाद बनाना पड़ा। इनकी मुल्लाओं ने तब फतवा दिया कि हिन्दुस्तान में कायम किये गये इस्लामी राज्यों में खलीफा उमर द्वारा तय की गई शर्तों के अतिरिक्त एक विशेष टैक्स—जजिया—लेकर हिन्दुओं को जीने दिया जाय। ऐसे गैर-मुस्लिमों को जिम्मी कहा जाता था।

यह कहना गलत है कि हिन्दुस्तान शताब्दियों तक मुस्लिम राज्य के बावजूद हिन्दू बहुल देश इसलिए बना रहा क्योंकि इस्लाम ने यहाँ पर मानवीय रूप धारण कर लिया था और मुस्लिम शासक अपनी गैर-मुस्लिम प्रजा के प्रति सहिष्णु हो गए थे। ऐसी धारणा तथ्यों के विपरीत है। भारत के मुस्लिम शासक अकबर जैसे अपवादों को छोड़कर उतने ही मतान्ध और गैर-मुस्लिम प्रजा के उत्पीड़क थे, जितने की अन्य देशों के मुस्लिम शासक।

लम्बे मुस्लिम राज्यकाल और मजहबी आधार पर उत्पीड़न के बावजूद अपनी संस्कृति, सामाजिक ढांचे और हिन्दू पहचान को बचाए रखने में हिन्दुस्तान की सफलता के कुछ विशेष कारण थे जिन्हें भली प्रकार समझ लेना चाहिये।

उनमें पहला कारण था हिन्दुओं द्वारा मुस्लिम आक्रान्ताओं का दृढ़ता से लगातार मुकाबला करते रहना। जो इस्लाम अपने जन्म के कुछ दशकों के भीतर ही सारे उत्तरी अफ्रीका तथा पश्चिम और मध्य एशिया पर छा गया, उसे जाबुल और काबुल के हिन्दू राज्यों ने शताब्दियों तक अफगानिस्तान में पाँव न टिकने दिये। तुर्कों के इस्लामी दस्ते उत्तरी भारत की की ओर १०वीं शताब्दी के अन्तिम छोर में काबुल के पतन के बाद ही बढ़ पाये। पेशावर १००८ ईसवी में उनके अधिकार में आया और १०२० में वे लाहौर को हस्तगत कर पाए। इसके बाद दिल्ली तक पहुँचने में उन्हें लगभग २०० वर्ष और लगे। वे दिल्ली को सन् ११६२ में हस्तगत कर पाये। विन्ध्याचल पार करके दक्षिण तक पहुँचने के लिए उन्हें १०० वर्ष और संघर्ष करना पड़ा। इसके विपरीत ईरान और मिस्र के लोगों ने एक-दो युद्धों में पराजय के बाद ही इस्लामी आक्रान्ताओं के आगे हथियार डाल दिये थे।

भारत में पाँव जमाने के बाद भी इस्लामी आक्रान्ता हिन्दुओं को पूरी तरह दबा नहीं पाए। फलस्वरूप अकबर के समय तक मुस्लिम सत्ता वास्तव में कुछ बड़े शहरों तक जहाँ तुर्की सैनिकों की छावनियाँ होती थीं, सीमित रही। परिणामस्वरूप हिन्दुस्तान का बड़ा भाग इस्लाम के राजनीतिक प्रभाव क्षेत्र से बाहर रहा।

दूसरा कारण हिन्दुस्तान की सांस्कृतिक और बौद्धिक श्रेष्ठता थी। भारतीय हिन्दू संस्कृति और अरब, तुर्क, इस्लामी संस्कृति का अन्तर मुस्लिम आक्रान्ताओं के व्यवहार से और भी स्पष्ट हो गया। इन तुर्क आक्रान्ताओं ने न केवल मन्दिर और ज्ञान के भण्डार रूपी पुस्तकालय तोड़े और जलाये तथा स्त्रियों पर अमानुषिक अत्याचार किये, अपितु उन्होंने बच्चों और वृद्धों को भी नहीं छोड़ा। इसलिए हिन्दुस्तान पर इस्लाम की पहली छाप बर्बरता और क्रूरता की थी जिसे बाद के मुस्लिम शासकों ने अपने व्यवहार से और गहरा किया। इसका परिणाम यह हुआ कि साधारण हिन्दू भी विदेशी मुस्लिम आक्रान्ताओं और उन भारतीयों को जो दबाव, लालच और भय के कारण उनकी मिल्लत में शामिल हो गये थे, घटिया लोग और उनके मज़हब को बर्बर और असभ्य लोगों का मज़हब

मानने लगे। फलस्वरूप निम्न वर्ग और जाति के हिन्दू भी नैतिक मूल्यों और सांस्कृतिक दृष्टि से अपने आपको उच्च वर्ग के मुसलमानों और मुस्लिम शासकों से श्रेष्ठ मानने लगे।

तीसरा कारण हिन्दुओं में किसी प्रकार संगठित चर्च अथवा मजहबी संगठन का न होना था। हिन्दुस्तान में उस समय पूजा-पद्धति की दृष्टि से अनेक पन्थ थे, परन्तु बौद्ध पन्थ को छोड़कर किसी पन्थ का न कोई मज़-हबी संगठन था और न किसी प्रकार की मज़हबी अफसरशाही। इस्लाम के भारत में आने के समय बौद्ध मत का प्रभाव काश्मीर, सिन्ध और पूर्वी बंगाल को छोड़कर शेष भारत में लुप्तप्रायः हो चुका था। देश भर में फैले हुए ब्राह्मण परिवार और साधु-सन्यासी लोगों को धार्मिक और आध्या-त्मिक उपदेश देते थे और तत्सम्बन्धी आवश्यकताएँ पूरी करते थे। जब उत्तर भारत के अधिकांश मन्दिर और सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक केन्द्र और प्रतिष्ठान नष्ट कर दिये गए तब भी ब्राह्मण और संन्यासी दूरस्थ ग्रामों तक लोगों को सांस्कृतिक और धार्मिक नेतृत्व प्रदान करते रहे। परन्तु जहाँ बौद्धमत का प्रभाव था, वहाँ आक्रान्ताओं के लिए लोगों को मुसलमान बनाने में अधिक कठिनाई नहीं हुई। उन्होंने बौद्ध भिक्षुओं को मार डाला और बौद्ध विहारों को मस्जिदों में बदलकर इस्लाम के प्रचार का केन्द्र बना डाला। इस प्रकार बौद्ध संघ को नष्ट करके उसके अनुयायियों का सामूहिक रूप में इस्लामीकरण करना आसान हो गया।

जाति प्रथा भी शुरू-शुरू में हिन्दू समाज को इस्लाम की आक्रान्ता बाढ़ से बचाने में सहायक सिद्ध हुई। जो हिन्दू बलात् मुसलमान बना भी लिये गये वे भी जातिगत बन्धनों के कारण हिन्दू संस्कृति, परम्परा और रीति-रिवाजों से जुड़े रहे।

पंचायत इत्यादि स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं और विभिन्न स्तरों के व्यवसायी और शिल्पी संघों और निगमों ने भी हिन्दुस्तान के इस्लामीकरण को रोकने और इनकी विशिष्ट सांस्कृतिक और सामाजिक पहचान बनाए रखने में बड़ी सहायता की। भारत का ग्राम स्वावलम्बी था। पंचायत जिसमें ग्राम के मुखिया, पंचों के अतिरिक्त आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र के प्रमुख लोग भी सदस्य होते थे, की सहायता से हर ग्राम अपना-अपना शासन

चलाता था। ग्रामों की प्रशासनिक स्वायत्तता के साथ-साथ पंचायतें अपने-अपने ग्राम की परम्पराओं, रीति-रिवाजों और मन्दिरों इत्यादि की रक्षा और रख-रखाव भी करती थीं। फलस्वरूप दिल्ली के मुस्लिम शासकों और उनके सूबेदारों के भारत के इस्लामीकरण करने के रास्ते में भारत के ये छोटे-छोटे ग्रामीण गणराज्य प्रभावी रुकावट बन गये। इस प्रकार ग्रामीण क्षेत्रों में हिन्दू संस्कृति और परम्परा को बनाए रखने में इन पंचायतों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की।

इन सब बातों के बावजूद इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि मुस्लिम राज्यकाल में बहुत से हिन्दू मुसलमान बने। इस हेतु मुस्लिम शासकों ने अनेक ढंग अपनाए, जिनमें प्रमुख थे—

१. जो लोग युद्ध-बन्दी बनाए जाते थे या किसी और प्रकार से मुस्लिम सत्ता और इस्लामी सिद्धान्तों को चुनौती देते थे, उनको इस्लाम या मौत के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं दिया जाता था। इसलिए उनमें से कई लोग मुसलमान बन जाते थे।

२. जो हिन्दू किसी भी कारण किसी मुसलमान स्त्री से विवाह कर लेते थे, उन्हें मुसलमान बनना पड़ता था। पश्चिमी पंजाब विशेष रूप में रावलपिण्डी, झेलम, गुजरात, मीरपुर और पुंछ क्षेत्र के अनेक उच्चवर्गीय हिन्दुओं को इस कारण जहाँगीर के हुक्म से मुसलमान बनना पड़ा था। ये लोग ईरानी और अफगानी मुस्लिम स्त्रियों से उनकी शारीरिक सुन्दरता के कारण विवाह किया करते थे।

३. इस काम के लिए कानून का भी दुरुपयोग किया जाता था। औरंगजेब के समय की इस्लामी अदालतों के बहुत से ऐसे फैसले उपलब्ध हैं जिनमें स्पष्ट कहा गया है कि जो पक्ष मुसलमान बनने को तैयार होगा उसके हक में निर्णय किया जाएगा। इन फैसलों में फारसी के शब्दों "बशर्ते बगोयद इस्लाम" अर्थात् 'मुसलमान बनने की शर्त पर' का प्रयोग किया गया है।

४. आर्थिक लाभ और आर्थिक दबाव का भी लोगों को मुसलमान बनाने के लिए प्रयोग किया जाता था। वर्तमान उत्तरप्रदेश और बिहार के बहुत से राजपूत परिवारों को जागीरें अथवा अन्य आर्थिक प्रलोभन देकर

मुसलमान बनाया गया था।

कुछ इलाकों में हिन्दुओं का तलवार की नोक पर सामूहिक मज़हब परिवर्तन किया गया। मैसूर के राजा को धोखे से पदच्युत करके वहां का सुलतान बनने के बाद हैदरअली और उसके बेटे टीपू सुलतान ने मलाबार और कर्नाटक के कुछ भागों में इस प्रकार हिन्दुओं को सामूहिक रूप में मुसलमान बनाया था। जब रोहिल्ला पठानों ने अठारहवीं शताब्दी में उत्तरप्रदेश के वर्तमान रुहेलखण्ड क्षेत्र पर अधिकार कर लिया तब उन्होंने वर्तमान सहारनपुर, मुरादाबाद, रामपुर, बरेली इत्यादि जिलों के बहुत से लोगों को बलात् मुसलमान बनाया था। इन जिलों के कुछ भागों में मुसलमानों के केन्द्रित होने का यही रहस्य है। सुलतान सिकन्दर ने चौदहवीं शताब्दी के अन्त में काश्मीर घाटी के हिन्दुओं को तलवार की नोक पर सामूहिक रूप में मुसलमान बनाया था।

कुछ लोग ब्राह्मणों की रूढ़िवादिता और तंगनज़री के कारण भी मुसलमान बने। मुसलमानों की सत्ता के काल में अपनाया गया सुरक्षात्मक कवच मुसलमानों के हाथ से सत्ता निकल जाने के बाद दूर फेंककर बलात् मुसलमान बनाए गए भाइयों को, जो फिर अपने हिन्दू घर वापस आना चाहते थे, सहर्ष गले मिलाना चाहिये था। परन्तु कई ब्राह्मणों ने इस प्रकार के पुनर्मिलन के रास्ते में बाधाएँ डालीं। उदाहरणार्थ जब काश्मीरी मुसलमानों ने सामूहिक रूप में हिन्दू बनने के लिए महाराजा रणवीरसिंह से प्रार्थना की, तब काश्मीरी पंडितों ने आत्महत्या का भय दिखाकर उन्हें उन काश्मीरी मुसलमानों को पुनः हिन्दू बनाने से रोका। यदि पंडित नेहरू के पुरखा यह मूर्खता न करते तो आज काश्मीर समस्या देश के सामने न होती।

फलस्वरूप जिस समय भारत की सत्ता अंग्रेजों ने हथियाई, उस समय मुसलमानों की संख्या काफी बढ़ चुकी थी।

१९०१ की जनगणना में ब्रिटिश भारत में मुसलमानों की जनसंख्या २० प्रतिशत के लगभग थी। परन्तु वे केवल सिन्ध क्षेत्र में ही बहुसंख्या में थे। सारे पंजाब की जनसंख्या में उनका अनुपात ४९ प्रतिशत से कम था। लगभग यही स्थिति बंगाल की थी। कुल देश की तीस करोड़ जनसंख्या में

मुसलमान छः करोड़ के लगभग थे।

१९०१ के बाद मुसलमानों की जनसंख्या में हिन्दुओं की अपेक्षा अधिक वृद्धि हुई है। इसका एक कारण मुसलमानों में बहु-विवाह की प्रथा है। परन्तु १९२१ की जनगणना में मुसलमानों की संख्या में आशातीत वृद्धि का एक प्रमुख कारण बहुत से हिन्दुओं के गांधीजी द्वारा सरकार के साथ असहयोग के आह्वान पर जनगणना का बहिष्कार करना था। इस जनगणना के अनुसार पंजाब और बंगाल में मुसलमानों की संख्या हिन्दुओं से अधिक हो गई।

गांधीजी की अनेक भयानक भूलों में, जिनकी हिन्दुस्तान और हिन्दुओं को बहुत कीमत चुकानी पड़ी, यह पहली भूल थी। लगभग उसी समय उनके द्वारा की गई दूसरी बड़ी भूल कांग्रेस को खिलाफत आन्दोलन के साथ जोड़ना था। इस खिलाफत आन्दोलन के द्वारा पहली बार भारतीय चेतना से भिन्न इस्लामी चेतना जगी। इसके कारण मुसलमानों के भारतीयकरण की प्रक्रिया रुक ही नहीं गई अपितु इसके उलटी प्रक्रिया शुरू हो गई। तब तक हिन्दुस्तान के मुसलमानों पर जिनमें से अधिकांश हिन्दुओं की ही सन्तान हैं, बलात् लादे गए इस्लाम का जुआ बहुत ढीला था। परन्तु खिलाफत आन्दोलन के कारण इस्लाम के सैद्धान्तिक पक्ष का ऐसे मुसलमानों में भी व्यापक प्रचार हो गया और उनमें इस्लामिक मतान्धता पैदा होने लगी।

विख्यात कवि डॉ० मुहम्मद इकबाल का उदाहरण इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण भी है और प्रासंगिक भी। डॉ० इकबाल एक काश्मीरी ब्राह्मण वंश से थे और इसका गर्व भी किया करते थे। उन्होंने "सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्तान हमारा" जैसी देशभक्तिपूर्ण कविता भी लिखी थी। परन्तु खिलाफत आन्दोलन के बाद वे भी मतान्ध मुसलमान बन गये और भारतीय राष्ट्रीयता के स्थान पर इस्लामिक राष्ट्रीयता का प्रचार करने लगे। उन्होंने ही सबसे पहले १९३० में मुस्लिम लीग के अध्यक्ष के नाते अपने अध्यक्षीय भाषण में हिन्दुस्तान का विभाजन करके इस्लामी राज्य के रूप में पाकिस्तान बनाने का तार्किक आधार पेश किया था।

गांधीजी के नेतृत्व में कांग्रेस द्वारा मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति ने

मुसलमानों के अराष्ट्रीयकरण और उनके राष्ट्रीय समाज और संस्कृति से विलग होने की प्रक्रिया को और तेज कर दिया। हिन्दुस्तान को इस तुष्टीकरण की नीति के कारण बहुत क्षति उठानी पड़ी। ब्रिटिश सरकार ने १९२२ में डोमीनियन स्टेटस अर्थात् ब्रिटिश कॉमनवेल्थ के अन्तर्गत स्वतन्त्रता की पेशकश की थी परन्तु गांधीजी ने उसे केवल इसलिए रद्द कर दिया कि ब्रिटिश सरकार मौलाना मोहम्मद अली को जेल से मुक्त करने को तैयार न हुई। मौलाना मोहम्मद अली ने अफगानिस्तान के अमीर को भारत पर आक्रमण करने का निमन्त्रण दिया था और ब्रिटिश भारतीय सेना के मुसलमान सैनिकों को आह्वान किया था कि वे मुस्लिम आक्रान्ता की सहायता करें ताकि भारत में फिर मुस्लिम राज्य कायम हो सके। इस कारण उस पर देशद्रोह का अभियोग चलाकर उसे दण्डित किया गया था।

डॉ० एम० आर० जयकर ने इस ब्रिटिश पेशकश और कांग्रेस के सर्वोच्च और सर्वसत्ताधारी नेता के रूप में गांधीजी द्वारा उस पेशकश को रद्द करने पर विस्तार से प्रकाश डाला है। श्री विलहलम वान पोकामर, जो उस काल में भारत में जर्मन राजदूत थे, ने भी अपनी हाल ही में प्रकाशित पुस्तक 'इण्डियाज़ रोड टु नेशनहुड' में इस घटना का उल्लेख किया है।

मुस्लिम लीग की सदा बढ़ने वाली माँगों को लगातार मानने के बावजूद गांधीजी मुस्लिम नेतृत्व को अखण्ड और स्वतन्त्र हिन्दुस्तान में हिन्दुओं के साथ बराबरी से अधिक अधिकार लेकर भी सह-अस्तित्व के लिए तैयार न कर सके। लाहौर के विख्यात अंग्रेजी समाचार पत्र ट्रिब्यून के अनुसार मुस्लिम लीग के अध्यक्ष के नाते श्री जिन्नाह ने २ अप्रैल, १९४६ को घोषणा की थी कि "मैं अपने-आपको इण्डियन नहीं मानता। इण्डिया विभिन्न राष्ट्रों का समूह है जिनमें दो प्रमुख राष्ट्र हिन्दू और मुसलमान हैं। हम अपने मुस्लिम राष्ट्र के लिए सर्वसत्ता-सम्पन्न अलग राज्य चाहते हैं। मैं हिन्दुओं के साथ मिलकर रहने को तैयार नहीं। हम—हिन्दू और मुसलमान—अलग-अलग ही नहीं, अपितु एक-दूसरे के शत्रु हैं।"

अन्ततोगत्वा मुस्लिम अल्पमत ने अलग राष्ट्र होने के अपने दावे को मनवा लिया और दबाव तथा हत्याओं की राजनीति द्वारा हिन्दुस्तान का

विभाजन करवा लिया। यदि कांग्रेस का नेतृत्व शीघ्र सत्ता प्राप्त करने के लिए अधीर न होता तो शायद विभाजन रुक जाता। भोसले द्वारा अपनी पुस्तक 'दि लास्ट डेज़ ऑफ ब्रिटिश राज' में उद्धृत पं० नेहरू के ये शब्द इस दृष्टि से पर्दाफाश करने वाले हैं। पं० नेहरू ने कहा था, "सच तो यह है कि हम थक चुके हैं और हमारी आयु भी बढ़ रही है। हम फिर जेल नहीं जाना चाहते थे, परन्तु यदि हम अखण्ड भारत के लिए अड़ते तो हमें फिर जेल जाना पड़ता। हम पंजाब में जलती आग देख रहे थे और प्रतिदिन हमें मारकाट के समाचार मिल रहे थे। विभाजन की योजना में हमें बचाव का रास्ता सूझा और हमने उसे स्वीकार कर लिया।"

यदि खण्डित हिन्दुस्तान न होता तो पाकिस्तान के लिए काम करने और उसके पक्ष में मत देने के बाद जो मुसलमान यहाँ टिके रहे, उन्हें निश्चित ही उनके स्वर्ग पाकिस्तान में भेज दिया जाता। ऐसा करने से कम-से-कम खण्डित भारत में मुस्लिम समस्या तो खत्म हो जाती।

यह भारत सरकार की सबसे बड़ी विफलता और भर्त्सना है कि इसने देश का विभाजन मान लेने के बाद खण्डित भारत में फिर मुस्लिम समस्या को खड़ा होने दिया है। यदि भारत सहिष्णुता और विचार-स्वतन्त्रता की परम्परा वाले हिन्दुओं का देश न होता तो इस प्रकार की स्थिति फिर पैदा होने की कल्पना भी न की जा सकती।

खण्डित भारत के सामने अब फिर मुस्लिम अल्पमत द्वारा बाहरी सहायता के बल पर अन्दर से तोड़-फोड़ और विद्रोह का खतरा पैदा हो गया है। इसका मूल कारण इस्लामवाद के मूल सिद्धान्त हैं जो मुसलमान को किसी गैर-इस्लामी राज्य का वफादार नागरिक बनने की अनुमति नहीं देते। मुसलमानों के आचरण का प्रभाव अन्य अल्पमतों पर भी पड़ने लगा है। ईसाई अल्पमत, जिसे हिन्दुस्तान में सर्वाधिक सुविधाएँ प्राप्त हैं, भी ईसाई बहुल नागालैण्ड और मिजोरम राज्य को शेष भारत से काटकर अलग ईसाई राज्य बनाने की बात सोचने लग पड़ा है।

१९४७ में भारत में रह गये ढाई करोड़ मुसलमान अब तिगुने हो चुके हैं। १९८१ की जनगणना के अनुसार उनकी जनसंख्या आठ करोड़ के निकट पहुँच चुकी है। ईसाइयों की जनसंख्या इससे भी अधिक तेजी से

बढ़ी है। वे १९४७ में ४० लाख के लगभग थे। अब वे दो करोड़ हो गये हैं। उनकी जनसंख्या में इस बढ़ोत्तरी का मुख्य कारण धन और धोखे से पिछड़े वर्ग के हिन्दुओं का धर्मान्तरण करके ईसाई बनाना है।

इस बात के बावजूद कि हिन्दुस्तान में मुस्लिम अल्पमत को ऐसे अधिकार भी प्राप्त हैं जिनसे बहुमत राष्ट्रीय समाज वंचित है, यह अपने विभाजन पूर्व का खेल फिर खेलने लग पड़ा है। अब उसे न केवल पाकिस्तान और बंगला देश का समर्थन प्राप्त है, अपितु सारे अरब इस्लामी संसार के पैट्रो-डॉलर भी इसकी पीठ पर हैं। अब यह खुलकर खंडित हिन्दुस्तान का इस्लामीकरण करने और इसे पाकिस्तान की तरह का दार-उल-इस्लाम बनाने की बातें करने लगा है। मुस्लिम नेता फिर मौलाना मोहम्मद अली, शौकत अली और जिन्नाह की बोली बोलने लग पड़े हैं। वे फिर यह घोषणा करने लग पड़े हैं कि मुस्लिम अलग राष्ट्र है और कि उनकी प्रथम आस्था इस्लाम और इस्लामी देशों के प्रति है। पश्चिमी बंगाल विधान सभा के उपाध्यक्ष शमशउद्दीन कलीम और दिल्ली के जामा मस्जिद के इमाम मौलाना अब्दुल्ला बुखारी के कथन इसके साक्षी हैं।

इस दृष्टि से जून ७, १९८० के 'वीकएंड' समाचार-पत्र में छपा मौलाना बुखारी का साक्षात्कार आँखें खोलने वाला है। भारत के मुसलमानों की भारतीय पहचान के सम्बन्ध में एक प्रश्न के उत्तर में मौलाना ने कहा, "सारी मुस्लिम जाति का एक लक्ष्य है…जिनकी उसमें आस्था है वे सब एक हैं। भारत के मुसलमानों और अन्य देशों के मुसलमानों में कोई अन्तर नहीं।" जब उससे यह पूछा गया कि क्या इसका मतलब यह है कि इस्लामवादी मुसलमान पहले हैं और भारतीय बाद में, तो उसने उत्तर दिया, "हाँ, संसार के सभी मुसलमानों के लिए उनका मज़हब पहले है और देश बाद में।"

जब प्रश्नकर्ता ने पूछा कि क्या यह अनुचित नहीं कि पहले मुसलमान और बाद में भारतीय कहलाने के बावजूद मुस्लिम भारत में विशेष अधिकार माँगते हैं, ऐसी सूरत में हिन्दुओं को अपने एकमात्र देश में विशेष अधिकार क्यों न दिये जाएँ ? तो मौलाना ने उत्तर दिया, "हिन्दुओं का कोई मज़हब नहीं, इनकी केवल एक संस्कृति है।"

इस प्रकार दिल्ली के मौलाना बुखारी ने उसी बात को दोहराया जो पाकिस्तान के प्रमुख मौलाना अताउल्ला शाह बुखारी ने पाकिस्तान सरकार द्वारा १९५४ में नियुक्त अहमदिया राएट्स (दंगा) कमीशन के अध्यक्ष न्यायमूर्ति मुनीर को कहा था। इस प्रश्न का कि क्या इस्लाम के अनुसार कोई मुसलमान किसी गैर-इस्लामी राज्य का वफादार नागरिक हो सकता है? उत्तर देते हुए मौलाना बुखारी ने कहा था कि इस्लाम के अनुसार कोई मुसलमान किसी गैर-इस्लामी राज्य के प्रति वफादार नहीं हो सकता।

फिर न्यायमूर्ति मुनीर ने पूछा कि क्या हिन्दुस्तान में रहने वाला कोई मुसलमान हिन्दुस्तान राज्य के प्रति वफादार हो सकता है; इसके उत्तर में मौलाना अताउल्ला ने आग्रहपूर्वक कहा, "नहीं।"

मौलाना अताउल्ला शाह बुखारी की इस साक्षी का वृत्त 'हिन्दुस्तान टाइम्ज़' समेत हिन्दुस्तान के प्रमुख समाचार-पत्रों में भी छपा था। मुनीर कमीशन की रिपोर्ट में भी इसका उल्लेख है। इसका कभी भी खंडन नहीं किया गया।

इस प्रसंग में हिन्दुस्तान में मुस्लिम और ईसाई अल्पमतों के प्रति व्यवहार की, हिन्दुस्तान से कटकर बने पाकिस्तान और बंगला देश जैसे इस्लामी राज्यों में हिन्दू, बौद्ध और अन्य गैर-मुस्लिम अल्पमतों के साथ होने वाले व्यवहार के साथ तुलना शिक्षाप्रद है।

पाकिस्तान में २३% हिन्दू अल्पमत का लगभग सफाया कर दिया गया है। अब वे पाकिस्तान की जनसंख्या का एक प्रतिशत मात्र हैं। पाकिस्तान ने हत्या, धर्मान्तरण अथवा शरणार्थी बनाकर खदेड़ने की नीति से अपनी मज़हबी अल्पमतों की समस्या को सदा के लिए हल कर लिया है। जो थोड़े हिन्दू वहाँ बचे हैं उन्हें मत देने का अधिकार नहीं है। वहाँ अहमदी लोगों पर भी अत्याचार हो रहे हैं। अहमदी और अन्य मुसलमानों में अन्तर केवल इतना है कि अहमदी अपने प्रवर्त्तक मौलवी गुलाम अहमद को भी पैगम्बर मानते हैं और इस बात को स्वीकार नहीं करते कि मोहम्मद साहब आखिरी पैगम्बर थे। उन्हें अब पाकिस्तान में गैर-मुस्लिम घोषित कर दिया गया है। वहाँ हजारों अहमदी मार दिये गये हैं और उनमें से अनेक भारत आ गये हैं।

बंगला देश में गैर-मुस्लिम अल्पमतों की स्थिति एक दृष्टि से इससे भी बदतर है। पाकिस्तान में अल्पमतों का विभाजन के तुरन्त बाद सफाया कर दिया गया था, परन्तु बंगला देश में वे तिल-तिलकर मर रहे हैं। १९४७ में वे पूर्वी पाकिस्तान की जनसंख्या का लगभग एक तिहाई थे। अब वे वहाँ की जनसंख्या का १०% रह गये हैं। लगभग दो करोड़ हिन्दू-बौद्ध या तो बलात् मुसलमान बना लिये गए हैं या मार दिये गए हैं और या शरणार्थी बनाकर भारत में खदेड़ दिये गये हैं। जो डेढ़ करोड़ के लगभग वहाँ बचे हुए हैं, वे अपने दिन गिन रहे हैं। उनके कोई अधिकार नहीं। प्रशासन में उनका कोई हाथ नहीं। आर्थिक दृष्टि से उनका कचूमर निकाल दिया गया है। यदि हिन्दू भारत न जागा और उसने उनके प्रति अपना कर्तव्य न निभाया तो आने वाले दिनों में वे सभी या मार दिये जाएँगे और या अपने घर-घाट से खदेड़ दिये जाएँगे।

कई अन्य इस्लामी देशों में हिन्दू अल्पमतों की स्थिति इससे भी बदतर है। ईरान में जो कुछ हो रहा है, उसे दोहराने की आवश्यकता नहीं। वहाँ जो व्यवहार ईरान में ही पैदा हुए बहाई सम्प्रदाय के अनुयायियों के साथ किया जा रहा है, उससे इस्लाम के शुरू के दिनों में मदीना में हुए यहूदियों के नरसंहार की याद ताज़ा हो गई है।

सऊदी-अरब, जिसके अन्तर्गत इस्लाम के पवित्र स्थान मक्का और मदीना पड़ते हैं, एक मॉडल इस्लामी राज्य माना जाता है। वहाँ पर हिन्दुओं और अल्पमतों की स्थिति क्या है? हिन्दू विशेष रूप में सिक्ख हिन्दू उसमें दाखिल ही नहीं हो सकते। भारत सरकार वहाँ पर किसी हिन्दू को अपना राजदूत भी नियुक्त नहीं करती। हिन्दुओं को अपने मन्दिर आदि बनाने की अनुमति का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

पश्चिम एशिया और उत्तरी अफ्रीका के कुछ अरब इस्लामी राज्यों में हिन्दू श्रमिकों को जाने दिया जाता है क्योंकि वे अन्य श्रमिकों से सस्ते पड़ते हैं। परन्तु उन्हें बुनियादी मज़हबी अधिकारों से भी वंचित रखा जाता है। न वे अपने मन्दिर बना सकते हैं और न सार्वजनिक रूप में अपनी पूजा-उपासना या भजन-कीर्तन कर सकते हैं। वे अपने मृतकों का दाह-संस्कार भी नहीं कर सकते। उन्हें मुसलमान बनाने के लिए उन पर हर प्रकार का

दबाव डाला जाता है। यदि इस प्रकार मुसलमान बनाया गया कोई व्यक्ति पुनः अपने पंथ और समाज में वापस आना चाहे तो उसके लिए मृत्युदंड है। सीरिया, ईराक इत्यादि तथाकथित प्रगतिवादी समाजवादी मुस्लिम राज्यों में भी स्थिति लगभग ऐसी ही है।

इन इस्लामी देशों में ईसाई अल्पमतों की स्थिति कुछ बेहतर है। मिस्र में लगभग १५% कापटिक ईसाई और सीरिया में लगभग २०% सीरियन ईसाई हैं। उन्हें अपनी पूजाविधि का पालन करने की अनुमति है। परन्तु उनके पास कोई राजनीतिक अधिकार नहीं। मुस्लिम राज्यों में बसने वाले ईसाई अल्पमत समुदाय इस बात को मानकर चलते हैं कि उन्हें मुसलमानों की दया पर जीना है। वे उनके साथ बराबरी का दावा नहीं कर सकते।

साइप्रस में मुसलमान १८% थे। उन्होंने इस्लामी तुर्कों की सैनिक सहायता के बल पर साइप्रस का विभाजन करके इसकी ३०% धरती पर अधिकार कर रखा है। मुस्लिम और ईसाई साइप्रस में व्यावहारिक रूप में ईसाइयों और मुसलमानों की अदला-बदली हो चुकी है। जो थोड़े ईसाई मुस्लिम साइप्रस में रहते हैं उनकी स्थिति की तुलना बंगला देश में रह गये हिन्दुओं की स्थिति से की जा सकती है।

लेबेनान में अब ईसाई अल्पमत हो चुके हैं। जनसंख्या में उनका अनुपात ४०% से कम है। मुसलमान चाहते हैं कि लेबेनान भी इस्लामी राज्य बने। ईसाई इसका विरोध करते हैं। बहुत से लेबेनानी ईसाई चाहते हैं कि भारत और साइप्रस की तरह लेबेनान का भी साम्प्रदायिक आधार पर विभाजन हो जाये ताकि वे अपने भाग में सुख-शान्ति से रह सकें। परन्तु मुस्लिम बहुमत विभाजन भी नहीं होने देता। सारा अरब इस्लामी जगत् लेबेनान के मुसलमानों की लेबेनान के ईसाइयों के विरुद्ध सहायता कर रहा है। इस कारण कुछ ईसाई सहायता के लिए पड़ोसी इस्राइल की ओर देखने लग पड़े हैं। हाल के युद्ध के बाद दक्षिण लेबेनान का कुछ क्षेत्र इस्राइल के सैनिक अधिकार में आ चुका है। वहाँ के ईसाई चाहते हैं कि उनपर इस्राइल का वरद् हस्त बना रहे।

मलयेशिया में मुसलमान केवल ५१% हैं; परन्तु उन्होंने इसे इस्लामी राज्य बना रखा है। वहाँ ४९% ईसाई, हिन्दू और बौद्ध अल्पमतों को

दूसरे दर्जे के नागरिक के रूप में रहना पड़ता है। वहाँ किसी मुसलमान का धर्मान्तरण करके उसे ईसाई या हिन्दू-बौद्ध नहीं बनाया जा सकता। यदि कोई गैर-मुस्लिम किसी मुस्लिम लड़की या लड़के से विवाह कर ले, तो उसे मुसलमान बनना पड़ता है। मलयेशिया तबतक ही एक लोकतांत्रिक देश है, जबतक वहाँ के मुस्लिम शासक लोकतंत्र को अपने ढंग से चलाकर वहाँ अपनी सत्ता बनाए हुए हैं। जब भी इस स्थिति को बदलने का प्रयत्न होगा, मलयेशिया में भी बंगला देश की पुनरावृत्ति होगी।

नाइजेरिया, सूडान, चड इत्यादि अफ्रीकी देशों में जहाँ की जनसंख्या में ईसाई और मुसलमान या बराबर-बराबर हैं या उनमें थोड़ा अन्तर है, वहाँ तनावपूर्ण शान्ति की स्थिति है। वहाँ ईसाइयों और मुसलमानों के बीच गृहयुद्ध चलते रहते हैं। नाइजेरिया के १९६५-६६ के गृहयुद्ध में लाखों ईसाई मारे गये थे। अभी हाल ही में चड और मारीटेनिया में हजारों ईसाई मारे गये हैं। लीबिया और अन्य इस्लामी राज्यों द्वारा इन देशों के मुसलमानों को मिलने वाली सहायता के कारण वहाँ हालात बदतर हो रहे हैं। फलस्वरूप अफ्रीका के अनेक राज्यों की राजनीति किसी अन्य बात की अपेक्षा ईसाई-मुस्लिम संघर्ष से अधिक प्रभावित हो रही है।

कम्युनिस्ट राज्यों में स्थिति कुछ भिन्न है क्योंकि वे अपने अल्पमतों को चाहे वे नसली हों या भाषायी या मज़हबी अपने-अपने राष्ट्र की मुख्य धारा में मिलाने के लिए अधिक कठोर और प्रभावी उपाय अपनाते हैं।

बल्गारिया और यूगोस्लाविया जो हिन्दुस्तान की भाँति लम्बे काल तक मुस्लिम, तुर्क साम्राज्य के अन्तर्गत रहे, में स्थिति हिन्दुस्तान के अनुरूप है। हिन्दुस्तान में ११% मुसलमान के मुकाबले में यूगोस्लाविया में मुसलमान १८% और बल्गारिया में १२% के लगभग हैं। मौके पर जाकर मुस्लिम समस्या का अध्ययन करने के लिए मैं १९७० में यूगोस्लाविया गया था। मुझे वहाँ जाकर पता लगा कि वहाँ भी मुसलमान राष्ट्रीय धारा में आने में आनाकानी कर रहे हैं। मुझे अधिकृत रूप में बताया गया कि यूगोस्लाविया सरकार को सन्देह है कि जब कभी वहाँ केन्द्रीय सरकार दुर्बल होगी, मुस्लिम बहुल क्षेत्रों में अलगाववादी आन्दोलन सिर उठाएँगे। वह सन्देह ठीक सिद्ध हुआ है। अभी हाल में ही यूगोस्लाविया कम्युनिस्ट

सरकार के पत्र 'कम्युनिस्ट' में सरबिया के मुसलमानों की अलगाववादी गतिविधियों पर विस्तार से प्रकाश डाला है।

लगभग यही स्थिति बल्गारिया की है। हालाँकि सिद्धान्त रूप में वहाँ मुसलमानों को समान अधिकार प्राप्त हैं, परन्तु वे प्रशासन के उच्च स्थानों से बाहर ही रखे जाते हैं। बल्गारिया के लोगों को मुसलमान तुर्कों के व्यवहार की कटु स्मृतियाँ अभी भूली नहीं। इसलिए वे अपने कल के शासक और आततायी मुसलमानों पर आज भी विश्वास नहीं करते।

हिन्दू-बौद्ध राज्यों में स्थिति भिन्न है। वे अल्पमतों के साथ व्यवहार के मामले में सेमेटिक परम्पराओं से सर्वथा भिन्न हिन्दू परम्पराओं का पालन करते हैं। संसार में नेपाल एकमात्र घोषित हिन्दू राज्य है। उसकी जन-संख्या में मुसलमान ७% के लगभग हैं। वहाँ मुस्लिम अल्पमत को समान अधिकार प्राप्त हैं। नेपाल में ७% मुस्लिम अल्पमत की दशा बंगला देश की १८% अमुस्लिम अल्पमतों की दशा की तुलना करने से इन दो परंपराओं का अन्तर स्पष्ट हो जाता है।

बर्मा बौद्ध राज्य है। इसमें १०% के लगभग मुसलमान अल्पमत है। ये मुख्यतः बंगला देश के साथ लगने वाले अराकान क्षेत्र में केन्द्रित हैं। इस अल्पमत को बौद्धों के समान अधिकार प्राप्त थे परन्तु हाल ही में इस्लाम देशों की सहायता से इन्होंने सशस्त्र पृथक्वादी आन्दोलन शुरू किया। इसके बावजूद आज भी बौद्ध बर्मा में मुस्लिम अल्पमतों की स्थिति बंगला देश में हिन्दू-बौद्ध अल्पमतों की स्थिति से बहुत बेहतर है।

थाइलैंड भी बौद्ध राज्य है। इसमें भी छोटा-सा मुस्लिम अल्पमत है जो मुख्यतः मलयेशिया के साथ लगने वाले थाइलैंड के दक्षिण भाग में केन्द्रित है। मुस्लिमों को अन्य थाई लोगों के समान अधिकार प्राप्त हैं। मज़हब के आधार पर उनके साथ कोई भेदभाव नहीं होता। तो भी कुछ समय पहले उन्होंने मलयेशिया के मुसलमानों की सहायता से पृथक्वादी आन्दोलन शुरू किया था। यही कारण है कि थाइलैंड में भी अब मुसलमान सन्देह की दृष्टि से देखे जाने लगे हैं।

सिंगापुर एक आधुनिक सेक्यूलर राज्य है। इसके अधिकांश लोग चीनी उद्गम के हैं। वे मुख्यतः ईसाई या बौद्ध हैं। वहाँ पर भारत और

श्रीलंका के उद्गम के १०% के लगभग हिन्दू हैं और लगभग इतने ही मुसलमान हैं। सबको समान अधिकार प्राप्त हैं। परन्तु हाल ही में वहाँ भी भारतीय और मलयेशियाई उद्गम के कुछ मुसलमानों ने सिंगापुर की सरकार का तख्ता उलटने का षड्यन्त्र किया था। इसके कारण सिंगापुर में भी मुसलमान अल्पमत सन्देहास्पद हो गया है।

श्रीलंका एक बौद्ध राज्य है। इसमें लगभग २०% तमिल हिन्दू और लगभग ७% मुसलमान हैं। तमिल श्रीलंका के उत्तरी भाग में केन्द्रित हैं। वे श्रीलंका के नसली अल्पमत हैं। उनकी समस्या का उनके मजहब के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। श्रीलंका के मुसलमान भी अधिकांशतः तमिल भाषा-भाषी हैं। वे अभी तक लंका के सिंहल बहुमत के साथ तालमेल से रह रहे हैं परन्तु उनपर भी इस्लामी सिद्धान्तवाद का प्रभाव पड़ रहा है। श्रीलंका की संसद का मुसलमान अध्यक्ष १९८१ में मीनाक्षीपुरम् के पिछड़े हिन्दुओं का धर्मान्तरण करके मुसलमान बनाने के समारोह में उपस्थित था।

हाल ही में श्रीलंका में जातीय आधार पर तमिलों के विरुद्ध हुए हिंसक कांड में श्रीलंका के मुसलमानों की भूमिका बड़ी रहस्यमयी रही है। उग्रवादी सिंहल दंगाइयों ने मुसलमानों को कोई हानि नहीं पहुँचाई। जानकार सूत्रों के अनुसार सिंहलों को तमिलों के विरुद्ध, जो अधिकतर हिन्दू हैं, भड़काने में कुछ ईसाई और मुसलमान नेताओं का भी हाथ था।

लगभग इसी प्रकार की स्थिति मॉरिशस में भी पैदा हो रही है। वहाँ के ५३% लोग भारतीय उद्गम के हिन्दू हैं। शेष जनसंख्या में १६% के लगभग भारतीय उद्गम के मुसलमान हैं और २७% करयोल ईसाई हैं। कुछ श्वेत फ्रेंच लोग भी वहाँ रहते हैं। अगस्त १९८३ में हुए चुनावों में वहाँ के मुस्लिम अल्पमत ने करयोल ईसाइयों के साथ मिलकर मॉरिशस की सत्ता को हथियाना चाहा। उन्हें लीबिया की शह थी और पैट्रो-डालरों की सहायता भी। परन्तु हिन्दू नेताओं की सूझ-बूझ और एकता और हिन्दू जनता की राजनीतिक चेतना के कारण मुसलमानों की चाल सफल नहीं हुई। भारतीय उद्गम का होने के बावजूद लगभग ९९% मुसलमानों ने भारतीय उद्गम के हिन्दुओं के विरुद्ध करयोल ईसाइयों का साथ दिया।

संसार के देशों में अल्पमतों की स्थिति का ऊपर दिये गए वृत्त और

हिन्दू-बौद्ध राज्यों के अल्पमतों से बर्ताव सम्बन्धी प्रशंसनीय रिकार्ड के परिप्रेक्ष्य में हिन्दुस्तान के हिन्दू घोषित होने की सूरत में मुस्लिम और ईसाई अल्पमतों की स्थिति के सम्बन्ध में किसी प्रकार के भ्रम या चिंता का कोई कारण नहीं। हिन्दुस्तान हिन्दू देश है। यही इसमें रहने वाले मज़हबी अल्पमतों की सुरक्षा की गारंटी है। यदि इसका हिन्दू चरित्र न होता तो इसमें मुसलमानों की वही गति होती जो इस्लामी पाकिस्तान और बंगला देश में हिन्दू-बौद्ध अल्पमतों की हुई है और हो रही है। किसी अल्पमत का बराबरी के अधिकारों की अपेक्षा करना उचित है। परन्तु बहुमत के हृदय की विशालता और सहिष्णुता का नाजायज लाभ उठाकर बहुमत को खत्म करने का प्रयत्न करना बिल्कुल भिन्न मामला है। हिन्दुस्तान में मज़हबी स्वतन्त्रता, सहिष्णुता और लोकतंत्र तबतक ही कायम है जबतक यह हिन्दू देश है। इसीलिए उन सब लोगों का, जो चाहते हैं कि हिन्दुस्तान मजहबी स्वतन्त्रता और विचार स्वतन्त्रता तथा सहिष्णुता वाला लोकतांत्रिक देश बना रहे, यह कर्तव्य हो जाता है कि वे प्रयत्न करें कि यह हिन्दू देश बना रहे और मुस्लिम अल्पमत यहाँ फिर विभाजन पूर्व का विघटनकारी खेल न खेलने पाये।

मजहबी अल्पमतों, विशेष रूप में मुस्लिम अल्पमत को हिन्दुस्तान के हिन्दू गणराज्य में किसी प्रकार का कोई खतरा नहीं होगा। परन्तु इसे खेल के नियमों का पालन करना सीखना होगा।

जो यह मानते हैं कि उनकी प्रथम आस्था इस्लाम और इस्लामी देशों के प्रति है और जो हिन्दुस्तान को भी येन-केन-प्रकारेण 'दार-उल-इस्लाम' बनाना अपना मजहबी कर्तव्य समझते हैं, उन्हें देश का नागरिक नहीं माना जा सकता। या तो उन्हें अपना रंग-ढंग बदलना होगा, सर्वपंथ-समभाव के सिद्धान्त को मनसा-वाचा-कर्मणा स्वीकार करना होगा और अन्य धर्मों के अनुयायियों से वही बर्ताव करना होगा जो वह अपने लिए चाहते हैं, अन्यथा उन्हें पाकिस्तान या अपनी मरजी के किसी अन्य इस्लामी राज्य में जाना होगा। जिनकी राज्य के प्रति वफादारी ही संदिग्ध है, उन्हें देश के अन्दर से पाकिस्तान या बंगला देश के पंचमांगियों का खेल खेलने की इजाजत कदापि नहीं दी जा सकती। ऐसे लोगों को या तो अपनी आस्थाओं

की वरीयता को बदलना होगा और अपनी आस्थाओं का प्रथम केन्द्र इसी देश को बनाना होगा और या उन्हें यहाँ विदेशियों के रूप में रहना होगा। दूसरी हालत में उनके अधिकार और कर्तव्य वही होंगे जो किसी देश में विदेशियों के होते हैं।

विशिष्ट पूजा विधियों और उपासना-पद्धति के रूप में इस्लाम और ईसाइयत को हिन्दू राज्य में सम्मान और बराबरी का दर्जा मिलता रहेगा परन्तु एक साम्राज्यवादी राजनीतिक विचारधारा के रूप में, जिसका मुख्य उद्देश्य देश और राष्ट्रीय समाज में अन्दर से तोड़-फोड़ करके उसपर इस्लाम का आधिपत्य कायम करना हो, उसे बर्दाश्त नहीं किया जा सकता। उस सूरत में उसे एक विघटनकारी शक्ति माना जाएगा।

भारत उनका है जो उसके साथ एकरूप होने को तैयार हैं और उसकी संस्कृति और मर्यादा को अपनी संस्कृति और मर्यादा मानते हैं। मुसलमानों को इस बात का फैसला करना होगा कि क्या वे भारत में भारतीय बनकर, इंडिया में इंडियन बनकर अथवा हिन्दुस्तान में हिन्दू बनकर रहना चाहते हैं। या पाकिस्तानी अथवा बंगला देशी के रूप में रहना चाहते हैं। यह फैसला उन्हें ही करना है। परन्तु वे एक ही समय में पाकिस्तानी और भारतीय नहीं हो सकते। हिन्दुस्तान हमारा देश है, घर है, कोई धर्मशाला नहीं। किसी भी अल्पमत समुदाय को इसके कानों को कुतरने और साथ ही शेष देश पर अपना अधिकार बनाए रखने की इजाज़त नहीं दी जा सकती। यह खंडित हिन्दुस्तान की बुनियादी भूल थी कि इसने उन लोगों को भी समान अधिकार दे दिये जिन्होंने देश के विभाजन और पाकिस्तान के बनाने के लिए काम किया था और उसके पक्ष में मत दिया था। तब यह अपेक्षा की गई थी कि वे अपना रवैया बदलेंगे और अपने आपको हिन्दुस्तान के रंग में रंग लेंगे। उन्होंने अपने व्यवहार और करदार से उन आशाओं पर पानी फेरा है। इसलिए उन्हें अपना रंग-ढंग बदलना होगा और पहिले और आखिरी, भारतीय अथवा इंडियन बनना सीखना होगा। उसका अर्थ यह होगा कि वे अपने सभी पृथक्वादी मार्ग छोड़ें, साँझे सिविल कानून को स्वीकार करें, बहुमत की गाय सम्बन्धी भावना का आदर करें और मन्दिरों, गुरुद्वारों और गिरजों के प्रति भी

उसी प्रकार का भाव रखें जो वे मस्जिदों के प्रति रखते हैं।

हिन्दू राज्य किसी अल्पमत समुदाय को इस बात की अनुमति नहीं देगा कि क्योंकि किसी ने जेरुशलम की मस्जिद को आग लगा दी है या मक्का की मस्जिद को अपवित्र किया है तो वे कानून अपने हाथ में लें और हिन्दुस्तान में मन्दिरों और गिरजों को जलाएँ, तोड़ें और उन्हें अपवित्र करें।

सारांश यह कि मुस्लिम और ईसाई अल्पमत हिन्दू राज्य में संसार के अन्य राज्यों की अपेक्षा अधिक सुरक्षित होंगे, बशर्ते कि वे 'जियो और जीने दो', 'दूसरों के प्रति वही व्यवहार करो जो अपने लिए चाहते हो' और सर्वपंथ समभाव के भारतीय हिन्दू आदर्शों को अपनाएँ और उनके अनुरूप आचरण करें। यदि वे राष्ट्र का अंग बनकर रहना चाहते हैं तो उन्हें उसी रूप में स्वीकार किया जाएगा परन्तु उन्हें यह समझ लेना होगा कि वे न राष्ट्र पर हुकुम चला सकेंगे और न ही राष्ट्रीय समाज को गिरवी रख सकेंगे।

इस विवेचन से यह स्पष्ट है कि हिन्दू गणराज्य में अहिन्दू अल्पमतो के साथ पाकिस्तान और बंगला देश जैसे राज्यों में अमुस्लिम अल्पमतों की अपेक्षा बहुत बेहतर बर्ताव होगा परन्तु उन्हें राज्य के प्रति वफादार बनना होगा और राष्ट्रीय समाज की भावनाओं और हितों का भी आदर करना होगा। उन्हें हिन्दू राज्य में समान अधिकार मिलेंगे, विशेष अधिकार नहीं।

: ६ :

हिन्दू राज्य और लोकतन्त्र

हिन्दुस्तान को हिन्दू राज्य घोषित करने के विरुद्ध एक और आपत्ति यह की जाती है कि हिन्दू राज्य फासिस्ट तानाशाही राज्य होगा। डी० मेलो कामथ ने 'वीकली' में छपे अपने लेख में इस आपत्ति को प्रमुखता दी है। यह आपत्ति बचकाना है। इससे आपत्ति करने वालों की न केवल राजतन्त्र और राज्य के सम्बन्ध में हिन्दू अवधारणा अपितु फासिज़्म के बारे में भी अनभिज्ञता झलकती है।

मैं यहाँ हिन्दू राजतन्त्र के विषय में विस्तार से नहीं लिखूंगा। इस विषय पर प्रो० के० पी० जायसवाल, डॉ० आर० सी० मजूमदार और प्रो० तथा श्रीमती राइस डेविड जैसे देशी और विदेशी विद्वान् और इतिहासकार बहुत कुछ लिख चुके हैं।

फासिज़्म एक आधुनिक अवधारणा है। इसकी उत्पत्ति प्रखर राष्ट्रवाद और समाजवाद के मेल से हुई है। राष्ट्रीय समाजवाद के वैचारिक आधार पर एक नेता और एक पार्टी के प्रभुत्व में चलने वाला तानाशाही राज्य फासिस्ट राज्य कहलाता है। फासिस्ट शब्द की उत्पत्ति इटालियन शहर 'फासी' से हुई है। इसका शाब्दिक अर्थ लकड़ी की पतली-पतली दंड़ियों का गट्ठा है। मुसोलिनी जिसने पहले महायुद्ध के बाद इटली के युवकों को अपने नेतृत्व में इकट्ठा करके इटली पर अपना एकाधिकार स्थापित किया था, फासिज़्म का जनक माना जाता है। उसने इटालियन राष्ट्रवाद को जगाया और इटली के लोगों में उज्ज्वल भविष्य की आशा जगाई। इसके द्वारा निर्मित फासिस्ट पार्टी अपने नेतृत्व में इटालियन राज्य को चलाने का उसका माध्यम थी। समाजवाद के नाम पर उसने इटली के आर्थिक जीवन पर भी

राज्य का नियन्त्रण बढ़ाना शुरू किया। इस काम में उसने बड़े-बड़े उद्योग-पतियों और पूंजीपतियों को भी सहयोग देने के लिए बाध्य किया।

पहले महायुद्ध के बाद हिटलर ने भी जर्मनी में अपनी नेशनल सोशलिस्ट पार्टी, जिसे नाज़ी पार्टी भी कहा जाता था, बनाने के लिए इसी प्रकार के साधन और तरीके अपनाए थे।

फासिज़म और कम्युनिज़म तथा फासिस्ट तानाशाही और कम्युनिस्ट तानाशाही में बहुत अन्तर नहीं है। दोनों एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं। दोनों समाजवाद की कसम खाते हैं। दोनों आम जनता को अपनी रोजी-रोटी के लिए सरकार पर निर्भर बनाने के लिए देश के आर्थिक जीवन पर राज्य का शिकंजा कसते हैं। दोनों राज्य को देवता बनाते हैं और व्यक्ति को मशीन का पुर्जा मात्र मानते हैं।

दूसरे महायुद्ध से पहले इटली और जर्मनी के फासिस्ट तानाशाह उग्र-राष्ट्रवाद के पक्षधर और कम्युनिज़म तथा कम्युनिस्ट रूस के कट्टर विरोधी माने जाते थे। तब कम्युनिस्ट रूस राष्ट्रवाद को एक मध्यवर्गीय बुर्जुआ अवधारणा कहकर इसकी निंदा और उपेक्षा करता था और संसार भर के श्रमिकों को इकट्ठा होने और अपने देशों में क्रान्ति करने का आह्वान करता था ताकि सभी देशों में सोवियत रूस की तरह की 'श्रमिकों की तानाशाही' कायम हो जाय जिसकी नकेल रूस की कम्युनिस्ट पार्टी और सोवियत संघ के हाथ में हो।

परन्तु दूसरे महायुद्ध ने कम्युनिस्टों के संसार के सभी श्रमिकों की मूल एकता सम्बन्धी इस चिन्तन के खोखलेपन को बेनकाब कर दिया। उस युद्ध में संसार के विभिन्न देशों के श्रमिकों ने मध्यवर्गीय बुर्जुआ लोगों के साथ कन्धे-से-कन्धा मिलाकर अपने-अपने देश की सुरक्षा के लिए काम किया। सोवियत संघ के नेताओं को भी अनुभव हुआ कि वे केवल अक्तूबर क्रान्ति और लेनिन के नाम पर अपने श्रमिकों को देश की सुरक्षा के लिए सर्वस्व बलिदान करने की प्रेरणा नहीं दे सकते। उन्होंने भी महसूस किया कि पितृभूमि के लिए गहरा प्यार और उसके लिए सर्वस्व न्यौछावार करने की मानसिक तैयारी, जो राष्ट्रवाद का निचोड़ है, पैदा किये बिना वे अपने देश की रक्षा नहीं कर सकते। इसके लिए उन्हें भी रूस के इतिहास, पीटर,

कैथराइन जैसे पूर्व शासकों और राजकुमार सोजोनाफ़, जिसके नेतृत्व में रूस की सेनाओं ने नैपोलियन की सेनाओं को पछाड़ा था, जैसे सेनापतियों और राष्ट्रीय वीरों की याद ताज़ा करनी पड़ी। यह राष्ट्रवाद की कम्यु-निस्ट अन्तर्राष्ट्रवाद पर स्पष्ट विजय थी। तब से उग्र राष्ट्रवाद फासिस्ट राज्यों की तरह, कम्युनिस्ट राज्यों का भी उसी प्रकार सम्बल बन गया है।

फलस्वरूप फासिज़्म और कम्युनिज़्म का अन्तर अर्थहीन हो गया है। दोनों तानाशाही के पक्षधर हैं, दोनों की तानाशाही का आधार समाजवादी अर्थव्यवस्था है जो सारी आर्थिक सत्ता राज्य के और राज्य के नाम पर शासक दल और उसके नेता के हाथ में केन्द्रित कर देती है। फासिस्ट ताना-शाह बड़े उद्योगों और उद्योगपतियों के साथ गठजोड़ करके उनके सहयोग से आर्थिक विकास की गति को तेज कर लेते हैं। फलस्वरूप फासिस्ट राज्य कम्युनिस्ट राज्यों की अपेक्षा अपने लोगों की आर्थिक स्थिति अधिक तेज़ी से सुधार सकते हैं।

कम्युनिज़्म और फासिज़्म दोनों ही लोकतन्त्र और इसके आधार, विचार स्वतन्त्रता और मतभेद प्रकट करने के अधिकार से बिदकते हैं। व्यवहार में इन दोनों प्रकार की तानाशाहियों में केवल इतना अन्तर है कि फासिस्ट तानाशाह अधिक व्यावहारिक हो सकते हैं। इसीलिए पं० जवाहर लाल नेहरू ने फासिज़्म को समाजवाद, पूंजीवाद और साम्यवाद की खिचड़ी बताया था। फासिस्ट तानाशाह समाजवाद की दुहाई देते हैं, पूंजी-वाद के बल पर जीते हैं और अपने राज्यों के अन्दर से कम्युनिस्ट पार्टियों और बाहर से कम्युनिस्ट सोवियत राज्य का विरोध उनको नकारात्मक आधार प्रदान करता है।

यह कहना कि क्योंकि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ भी हिन्दू राज्य की बात कहता है, इसलिए हिन्दू राज्य फासिस्ट राज्य ही होगा, जले पर नमक छिड़कने सदृश बात है। आर० एस० एस० की स्थापना १९२५ में हुई थी। उस समय यह सारे अखंड हिन्दुस्तान को हिन्दू राष्ट्र मानता था। जिस ढंग से और जिस आधार पर हिन्दुस्तान का विभाजन किया गया, उससे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की राष्ट्रसम्बन्धी धारणा की पुष्टि हुई। परन्तु राष्ट्र का विचार संघ की मौलिक देन नहीं, जैसाकि पहले बताया जा चुका है,

हिन्दुस्तान में राष्ट्र की कल्पना अति प्राचीन है और यहाँ राष्ट्र शब्द का प्रयोग वैदिक काल से हो रहा है। भारत के वर्तमान युग में हिन्दू राष्ट्र की पहले पहल व्याख्या और उसका उद्घोष महर्षि दयानन्द सरस्वती ने किया था। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपतराय, वीर सावरकर, महामना पं० मदनमोहन मालवीय, महर्षि अरविन्द घोष भी हिन्दुस्तान को हिन्दू राष्ट्र मानते थे। संघ के प्रवर्त्तक डॉक्टर केशव बलिराम हेडगेवार ने उसे दोहराया।

हिन्दू राज्य हिन्दू राष्ट्र की पूरक अवधारणा है। इसलिए हिन्दू राष्ट्र और हिन्दू राज्य की यह कहकर उपेक्षा करना कि संघ इनका प्रतिपादन करता है ऐसा ही है जैसे दूसरे के चेहरे को खराब करने के लिए अपनी नाक काटना।

लोकतन्त्र केवल एक शासन तन्त्र ही नहीं, यह एक जीवन-पद्धति भी है जिसका आधार यह मान्यता है कि मनुष्य एक सोचने वाला प्राणी है और कि हर मनुष्य के विशिष्ट व्यक्तित्व को स्वीकार करना चाहिये और उसका आदर करना चाहिये। इसलिए उसे अपनी सोच को अभिव्यक्त करने और अपने समाज और शासन को प्रभावित करने का अधिकार होना चाहिये। उसको समाज के अन्य लोगों की स्वतन्त्रता का आदर करते हुए अपने जीवन के हर पहलू—सामाजिक, राजनीतिक, पंथिक और आर्थिक—को अपनी इच्छा और भावना के अनुकूल ढालने की छूट होनी चाहिये।

यह तभी सम्भव हो सकता है जब मनुष्य किसी एक मत से बँधा हुआ न हो और उसे अपने मज़हबी पैगम्बरों या राजनीतिक आकांक्षाओं समेत दूसरे लोगों की सोच से भिन्न सोचने की स्वतन्त्रता हो। यह इस बात की भी माँग करता है कि वह आर्थिक दृष्टि से भी स्वतन्त्र हो क्योंकि जो बीन वाले को पैसा देता है वह उससे जो धुन चाहे, बजवा सकता है। इसलिए विचार स्वतन्त्रता का आर्थिक स्वतन्त्रता के साथ गहरा सम्बन्ध है। जो अपनी जीविका के लिए राज्य पर निर्भर हो वह राज्य को चलाने वालों और उस पर नियन्त्रण करने वालों से मतभेद व्यक्त करने की हिम्मत नहीं कर सकता। इसलिए कोई भी ऐसा राज्य जो व्यक्ति के जीवन के हर पहलू को नियन्त्रित

करता हो, लोकतान्त्रिक राज्य नहीं कहला सकता।

हिन्दुस्तान की एक लम्बी लोकतान्त्रिक परम्परा है। इसकी शुरुआत वेदों से होती है। हिन्दुस्तान का इतिहास, जीवन-पद्धति और दर्शन का श्रीगणेश वेदों से ही हुआ है। इस परम्परा के अनुसार हिन्दुस्तान में राजा और राजतन्त्र का उदय भी लोगों की लोकतान्त्रिक भावना के कारण ही हुआ था। शुरू में न राजा था और न प्रजा। सभी धर्म यानी नैतिक नियमों से बँधे हुए थे परन्तु कुछ समय बाद जब बलवान दुर्बल को सताने लगे तब किसी ऐसे अधिकारी की आवश्यकता महसूस हुई जो सबको धर्म का पालन करने के लिए बाध्य कर सके ताकि सबको शान्ति और न्याय मिल सके। राजा को लोगों ने इसलिए चुना कि वे सबसे धर्म का पालन करवा सके और जो नियमों का उल्लंघन करे, उसे दंड दे सके।

इसीलिए हिन्दुस्तान के प्राचीन साहित्य में राजनीति के लिए दंडनीति शब्द का प्रयोग मिलता है। राजा वह है जो उन लोगों को, जो नियम तोड़ते हैं और दुर्बलों को तंग करते हैं, दंड दे और सज्जनों की रक्षा करे। इस काम के लिए लोग राजा को निश्चित कर देते थे, ताकि वे अपने कर्तव्य का पालन कर सकें। इस प्रकार प्रजा और राज के बीच एक प्रकार का अनुबन्ध होता था। राजा का मुख्य काम यह था कि वह देखे कि उसकी प्रजा के लोग अपने-अपने धर्म का पालन करते हैं और अपने-अपने अधिकारों का दूसरों के हस्तक्षेप के बिना उपयोग करते हैं।

भारत के सर्वप्रथम विधि-निर्माता महाराज मनु के अनुसार, "यदि राज न्यायपूर्वक दंड का प्रयोग नहीं करता तो सबल दुर्बलों को उसी प्रकार खाएँगे जैसे बड़ी मछली छोटी मछली को खाती है। परन्तु यदि राजा दंड का प्रयोग निष्पक्ष भाव से न्यायपूर्वक करता है तो लोगों को समृद्धि मिलती है और वे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के चारों पुरुषार्थों को भली-भाँति निभा सकते हैं। परन्तु यदि राजा स्वयं कामी, क्षुद्र भावना वाला और अन्यायी हो तो उसे उसी दंड से दंडित करना चाहिये।" महाभारत के अनुशासन-पर्व में इसी बात को इस प्रकार कहा गया है, "जो राजा राज्याभिषेक के समय यह सौगन्ध लेने के बाद कि वह अपनी प्रजा को अन्याय और अनुचित उत्पीड़न से बचाएगा, उसका पालन नहीं करता, उसे प्रजा

को इकट्ठा होकर उसी प्रकार मार डालना चाहिये, जैसे हलके कुत्ते को मारा जाता है।" चाणक्य ने भी अपनी विख्यात कृति अर्थशास्त्र में इन बातों को दोहराया है। चाणक्य के अनुसार राजा को वे कार्य करने चाहिये जो उसकी प्रजा को पसन्द हों। उसे अपनी पसन्द को प्रजा पर नहीं लादना चाहिये। इन उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि सोशल कॉनट्रेक्ट या सामाजिक अनुबन्ध की अवधारणा का प्रतिपादन हिन्दुस्तान में रूसो और वालटेयर से हजारों वर्ष पूर्व हो चुका था। युगों-युगों से राम और रामराज्य हिन्दुस्तान में राजा और राज्य का आदर्श और उन्हें आँकने की कसौटी और मापदंड रहे हैं।

इस प्रकार भारत में राजा का प्रमुख कर्तव्य धर्म का पालन करना और कराना, दुष्टों को दंड देना, सबको न्याय देना और देश की आन्तरिक और बाहरी सुरक्षा की उचित व्यवस्था करना रहा है। उसका कर्तव्य धर्मराज अर्थात् नैतिक नियमों और कानून का राज्य स्थापित करना होता था, अपनी तानाशाही कायम करना नहीं। प्रजा के सामाजिक, आध्यात्मिक और आर्थिक जीवन में हस्तक्षेप करना राज्य का काम नहीं। स्टेटज्मि अर्थात् राज्य का जीवन के हर क्षेत्र पर छा जाना 'हिन्दू राज्य' के प्रतिकूल है।

हिन्दू राज्य की दूसरी विशेषता यह रही है कि इसका अधिकार-क्षेत्र सीमित होता है। राज्य का लोगों के आर्थिक जीवन में हस्तक्षेप कम-से-कम होता है। उसमें आर्थिक गतिविधियाँ श्रमिकों, व्यापारियों और शिल्पकारों द्वारा की जाती हैं, सरकार द्वारा नहीं। इसे लोगों के आध्यात्मिक और मजहबी मामलों में दखल देने का भी कोई अधिकार नहीं। इसमें लोगों को अपने धर्म का पालन और पूजा-पद्धति का अनुसरण करने की पूरी छूट रहती है।

राजा का पहला कर्तव्य प्रजा के सामने अपने राज-धर्म के पालन के मामले में अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करना होता था। उसका राजधर्म क्या है, यह नीतिशास्त्रों द्वारा तय किया जाता था। इसमें राजा की अपनी इच्छा या अनिच्छा का प्रश्न नहीं था। इस प्रकार हिन्दू राजा और राज्य के इस सिद्धान्त को मानते थे कि वही राज्य सबसे अच्छा है जो कम-से-कम

हुक्म चलाता है।

इस प्रकार हिन्दुस्तान में राज का उद्भव शुरू में एक लोकतान्त्रिक संस्था के रूप में हुआ। यह लोगों द्वारा चुना गया है। जब राजा और राज रूपी संस्था पैतृक बन गई तब भी राजा को 'सभा' और 'समिति' की सलाह और सहयोग से राज चलाना होता था। इन लोकतान्त्रिक संस्थानों का महत्त्व इस बात से आँका जा सकता है कि वैदिक साहित्य में उन्हें प्रजापति की दो दुहिताएँ कहा गया है। इनमें से एक राज्य के जनसाधारण का इकट्ठा होना था और दूसरा प्रमुख लोगों का।

राजाओं द्वारा शासित राज्यों के साथ-साथ हिन्दुस्तान में गणराज्यों की भी लम्बी परम्परा रही है। उनका कामकाज लोग अपने चुने हुए प्रमुखों अथवा प्रतिनिधियों द्वारा चलाते थे। उनके राजसभाओं के नियमानुसार अधिवेशन होते थे और उनमें सबकी सहमति से और सहमति न होने की स्थिति में बहुमत से फैसले किये जाते थे। महाभारत के शान्ति पर्व में राजाओं द्वारा शासित राज्यों और गणराज्यों के गुण-दोषों का विशद् विवेचन किया गया है।

हिन्दुस्तान के साहित्य और इतिहास में गणराज्यों का उल्लेख चौथी शताब्दी तक प्रचुर मात्रा में मिलता है। जब महात्मा बुद्ध ने अपने 'धर्म चक्र' को चलाना शुरू किया उस समय सारे उत्तर भारत में अनेक शक्तिशाली गणराज्य थे। उत्तर बिहार का लिच्छवि गणराज्य, जिसकी राजधानी वैशाली थी, मगध के नवोदित साम्राज्य के लिए एक प्रकार की चुनौती थी। मगध के सम्राट् अजातशत्रु ने जो महात्मा बुद्ध का समकालीन था, अपने प्रधान मन्त्री को महात्मा बुद्ध के पास यह जानने के लिए भेजा कि वह उस गणराज्य पर काबू कैसे पा सकता है। उस समय महात्मा बुद्ध राजा से रंक तक हर वर्ग के लोगों के फिलॉसफर और हितैषी माने जाते थे और सब लोग उनकी सलाह लेते थे।

महात्मा बुद्ध द्वारा अजातशत्रु के प्रधान मन्त्री को लिच्छवि गणराज्य के सम्बन्ध में जो कुछ कहा गया वह आज भी विचारणीय है। उन्होंने उसे कहा कि जब तक लिच्छवि गणराज्य के लोग अपने सारे निर्णय भरी सभा में विचार-विमर्श के बाद करते रहेंगे, जब तक वे अपनी परम्पराओं

और वृद्ध जनों की सीख का आदर करेंगे और जब तक वे महिलाओं को उचित सम्मान देंगे तब तक उसे कोई खत्म नहीं कर सकता। महात्मा बुद्ध स्वयं एक गणराज्य में जन्मे थे। उन्हें गणराज्य के चलाने का अनुभव था, उनकी यह सीख किसी भी राज्य अथवा देश में लोकतन्त्र की सफलता के लिए आज भी उतनी ही प्रासंगिक और महत्त्वपूर्ण है जितनी उनके समय में थी।

गान्धार, (अफगानिस्तान) पंजाब और सिन्ध के गणराज्यों ने यूनानी सिकन्दर की सेना का बड़ा मुकाबला किया था। यूनानी इतिहासकारों ने ईसा पूर्व के काल के भारत में चलने वाले इन गणराज्यों का विस्तृत वर्णन किया हुआ है।

गणराज्य की परम्परा से भी अधिक महत्त्वपूर्ण भारत में ग्राम स्तर तक पंचायतों, शिल्पी संघों और पौर सभाओं जैसी संस्थाओं के लगातार विकास की परम्परा है। सर चार्ल्स मेटकाफ ने, जो वर्तमान उत्तरप्रदेश क्षेत्र का ब्रिटिश गवर्नर था, १८५३ में इन ग्राम पंचायतों की तुलना छोटे-छोटे गणराज्यों से की थी।

राज्य में धर्म यानी कानून का वर्चस्व, विचार और उसकी अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता तथा गणराज्यों और ग्राम पंचायतों की परम्परा हिन्दू राज अथवा हिन्दू शासन तन्त्र को अन्य राजतन्त्रों और शासन तन्त्रों से विख्यात करती है। यह तत्त्व हिन्दू राज्य के युग-युग से अंग रहे हैं। ग्राम स्तर पर यहाँ लोकतान्त्रिक परम्परा उस समय भी कायम रही जब ऊपर के स्तरों पर उनका लोप हो गया।

ब्रिटिश शासकों ने अपनी सत्ता को सीधे गाँवों तक पहुँचाने के लिए ग्राम स्तर की लोकतान्त्रिक परम्परा को नष्ट करने का योजनाबद्ध प्रयत्न किया। परन्तु उन्होंने अपने देश में एक अन्य प्रकार की लोकतान्त्रिक परम्परा का विकास किया था। उन्होंने अपने देश में विकसित विशिष्ट लोकतान्त्रिक संस्थाओं को भारत में भी चालू किया। उनका इन संस्थाओं को वास्तविक लोकतान्त्रिक सत्ता सौंपने का इरादा नहीं था, परन्तु कालान्तर में उन्हें नगरपालिकाओं, जिला परिषदों, प्रान्तीय विधान सभाओं और केन्द्रीय एसेम्बली को कुछ लोकतान्त्रिक अधिकार देने के लिए बाध्य होना पड़ा।

अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त हिन्दुस्तान का उच्च वर्ग, जिसे इन संस्थाओं में काम करने का अवसर और अनुभव मिला था और जिसके पास स्वतन्त्रता के बाद देश की सत्ता आई, उसने इन संस्थाओं को बनाए रखने का फैसला किया। इस प्रकार स्वतन्त्र भारत की संविधान सभा ने ब्रिटिश मॉडल के संसदीय लोकतन्त्र को हिन्दुस्तान में लागू करने का फैसला किया।

१९४७ से भारत एक संसदीय लोकतन्त्र है, परन्तु इसको चलाना आसान नहीं। इस प्रकार के वयस्क मताधिकार पर आधारित संसदीय लोकतन्त्र की सफलता के लिए कुछ बुनियादी चीजों की आवश्यकता होती है। उनमें से पहली है देश में प्रखर राष्ट्रवाद की भावना जो वयस्क मताधिकार पर आधारित लोकतन्त्र में निहित विघटनकारी प्रभावों की काट कर सके। दूसरी है जागरूक जनमत और शिक्षित मतदाता जो अपने लोकतान्त्रिक अधिकारों और कर्तव्यों को समझते हों। तीसरी है, स्वयं प्रेरणा से अनुशासन का पालन करने की वृत्ति और चौथी है विशिष्ट विचारधाराओं और नीतियों वाले दो बराबर के बड़े राजनीतिक दल जो सत्ता संभालने के मामले में एक-दूसरे के विकल्प बन सकें। हिन्दुस्तान में इन सबका अभाव है। इसलिए यहाँ संसदीय लोकतन्त्र के भीड़तन्त्र बन जाने का वास्तविक खतरा पैदा हो गया है।

राज्य का एक अधिकार कायम करने वाली आर्थिक नीतियों के कारण स्थिति और भी बिगड़ रही है। विचार-स्वतन्त्रता और मतभेद को व्यक्त करने का अधिकार, जो लोकतन्त्र का मूल है और समाजवाद इकट्ठे नहीं चल सकते, क्योंकि समाजवाद लोगों को रोजी-रोटी के लिए सत्ताधारी शासक और दल पर निर्भर बना देता है। इसलिए उन्हें शासक की हाँ में हाँ मिलानी पड़ती है। इन हालात में भारत में ब्रिटिश मॉडल के संसदीय लोकतन्त्र की सफलता सन्दिग्ध और भविष्य धूमिल हो गया है। इसलिए राष्ट्रपति प्रणाली के लोकतन्त्र या किसी और राज्य-पद्धति के अपनाने की बातें होने लगी हैं।

इन कठिनाइयों और सम्भावनाओं के बावजूद यह वास्तविकता है कि संसार के अन्य राज्य, जो दूसरे महायुद्ध के बाद ब्रिटिश साम्राज्य के टूटने के कारण उभरे और जिन्होंने ब्रिटिश मॉडल का संसदीय लोकतन्त्र

अपनाया, की अपेक्षा भारत में इस प्रकार के लोकतन्त्र का रिकॉर्ड बेहतर रहा है। सच तो यह है कि यह विचार-स्वतन्त्रता हिन्दू परम्परा वाले हिन्दुस्तान और श्रीलंका में ही कुछ हद तक जीवित रह सका है। मलयेशिया एक अन्य अपवाद है। इस्लामी देश घोषित होने के बावजूद मलयेशिया में लोकतन्त्र के बने रहने का प्रमुख कारण यह है कि उसकी लगभग आधी आबादी गैर-मुस्लिम है। दूसरा कारण वहाँ संविधान में मलयेशिया के विभिन्न राज्यों के सुलतानों को दिये गए संवैधानिक अधिकार हैं। वे अपने में से किसी एक को स्थायी रूप में मलयेशिया का शासक बनाने को तैयार नहीं। अन्यथा मलयेशिया में भी अभी तक लोकतन्त्र की वही गति हो गई होती जो बंगला देश और पाकिस्तान में हुई है।

लोकतन्त्र को बनाये रखने की दृष्टि से भारत को हिन्दू राज्य बनाने के दो लाभ होंगे। विचार-स्वतन्त्रता और मतभेद को स्वीकार करने की हिन्दू परम्परा इसमें किसी प्रकार की तानाशाही के उभरने पर प्रभावी रोक का काम करेगी। दूसरे हिन्दू राज्य घोषित होने के बाद भारत में राष्ट्रवाद की भावना आज की अपेक्षा सुदृढ़ होगी। संसार-भर के वयस्क मताधिकार पर आधारित लोकतन्त्रों का अनुभव है कि इस प्रकार के लोकतन्त्र में दल और प्रत्याशी सामूहिक मत प्राप्त करने के लिए जात-बिरादरी, सम्प्रदाय और भाषा के आधार पर क्षुद्र और अलगाववादी भावनाएँ जगाते हैं। फलस्वरूप लोकतन्त्र विघटनकारी बन जाता है। राष्ट्रवाद की प्रबल भावना, जो लोगों को व देशहित को साम्प्रदायिक और क्षेत्रीय हितों पर वरीयता देने की प्रेरणा देती है, ही लोकतन्त्र के विघटनकारी परिणामों की प्रभावी काट होती है। भारतीय राष्ट्रवाद का आधार हिन्दुत्व या हिन्दूपन की भावना है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि जिस क्षेत्र में हिन्दू की संख्या कम हो गई और हिन्दुत्व की भावना कमजोर पड़ गई, वही क्षेत्र भारत से कट गया। आज भी अलगाववादी और पृथक्तावादी तत्त्व काश्मीर घाटी, नागालैंड, मिजोरम इत्यादि भारत के उन्हीं भागों में प्रभावी हैं जहाँ हिन्दुओं की जनसंख्या कम हो गई है और हिन्दुत्व की भावना क्षीण हो गई है। इसलिए न केवल हिन्दुस्तान की एकता अपितु इसमें लोकतन्त्र के आधारभूत तत्त्वों को कायम रखने के लिए यह आवश्यक है कि

भारत को यथाशीघ्र हिन्दू राज्य घोषित किया जाये।

इसलिए इस उद्देश्यपूर्ण प्रचार का कि हिन्दू राज्य में लोकतन्त्र नहीं चल सकेगा और कि यह एक फासिस्ट या तानाशाही राज्य बन जाएगा कोई तार्किक आधार नहीं है। वैसे भी महत्त्व लोकतन्त्र या किसी और प्रकार के राजतन्त्र के बाहरी रूप का नहीं। महत्त्व इस बात का है कि राज्य में विचार-स्वतन्त्रता, कानून के सामने बराबरी, सबके लिए समान कानून और धर्म अर्थात् कानून का राज तथा मतभेद की अभिव्यक्ति की छूट इत्यादि लोकतन्त्र के मूलतत्त्व विद्यमान हों और वे निरपेक्ष रूप से सब सम्प्रदायों पर लागू हों। हिन्दू राज्य में इन मान्यताओं और जीवन मूल्यों के कायम रहने की सम्भावना मुस्लिम, ईसाई या कम्युनिस्ट राज्य से कहीं अधिक है। इसलिए हिन्दुस्तान को हिन्दू राज्य घोषित करना लोकतन्त्र के हित में है।

: ७ :

हिन्दू राज्य के लाभ

पूर्व अध्यायों के किये गये विवेचन से यह स्पष्ट हो गया है कि हिन्दुस्तान हिन्दू राष्ट्र है और उसे हिन्दू राज्य घोषित करना हर दृष्टि से आवश्यक है। इसके हिन्दू राज्य घोषित होने के कारण हिन्दुस्तान के गैर-साम्प्रदायिक चरित्र और इसकी सर्वपंथ समभाव के वैदिक आदर्श के साथ प्रतिबद्धता पर कोई आँच नहीं आएगी। हिन्दुस्तान के हालात और इतिहास के प्रसंग में सर्वपंथ समभाव और विचार तथा पूजा-विधि की स्वतन्त्रता ही 'सेक्यूलरिज्म' का सार है और इसे अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए हिन्दुस्तान का हिन्दू राज्य होना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त हिन्दुस्तान को हिन्दू राज्य घोषित करने के और भी कई ऐसे महत्त्वपूर्ण लाभ होंगे जिनका देश की शक्ति, सुरक्षा, एकता और देश की जनता के सर्वमुखी उत्थान और कल्याण के साथ गहरा सम्बन्ध है।

हिन्दू राज्य बनने का सबसे महत्त्वपूर्ण तात्कालिक लाभ यह होगा कि इससे साम्प्रदायिक दंगों का अन्त हो जाएगा। अंग्रेजों के भारत छोड़ने और विभाजन के फलस्वरूप मुसलमानों को अपने हिस्से से बड़ा, अलग 'होमलैंड' मिल जाने के बाद भी साम्प्रदायिक दंगे भारत की छवि को धूमिल कर रहे हैं। स्वतन्त्रता से पूर्व तो इन दंगों के लिए अंग्रेजों शासकों की फूट डालो और राज करो की नीति को दोष दिया जा सकता था। अब वह कारण या बहाना पेश नहीं किया जा सकता। दंगों की संख्या और उनकी क्रूरता उसी अनुपात में बढ़ रही है जिस अनुपात में विभाजन के बाद खंडित भारत में रह गये मुसलमानों की संख्या बढ़ रही है। यह कटु तथ्य मैकॉले के मानसपुत्रों और आत्म-विस्मृत लोगों द्वारा दंगों के कारणों

सम्बन्धी दिये जाने वाले तर्कों और कारण की मीमांसा का खोखलापन सिद्ध कर रहे हैं।

अब यह पूरी तरह स्पष्ट हो चुका है कि साम्प्रदायिक दंगों का मूल कारण सेमिटिक मजहबों, विशेष रूप में इस्लाम का अलगाववादी चरित्र और उसकी असहिष्णु मानसिकता है, जिसकी तह में 'मिल्लत' और 'कुफ्र', 'दार-उल-इस्लाम' और 'दार-उल-हरब' तथा 'जिहाद' सम्बन्धी सिद्धान्त तथा इस्लाम के मूल ग्रन्थों के वे उपदेश हैं जिनके अनुसार काफिरों को मारना और उनके मन्दिर और मूर्तियों को तोड़ना मुसलमानों के लिए पुण्य कार्य है। इसकी पुष्टि इस बात से भी होती है कि दंगे उन्हीं नगरों, क्षेत्रों और मुहल्लों में होते हैं जहाँ मुसलमानों की बहुसंख्या होती है अथवा उनका प्रभाव होता है, उदाहरणार्थ—दिल्ली की जनसंख्या में मुसलमान ३% के लगभग हैं। वे सारी दिल्ली में फैले हुए हैं परन्तु उनकी वह संख्या पुरानी दिल्ली के जामा मस्जिद और सदर क्षेत्रों में केन्द्रित है। दिल्ली में साम्प्रदायिक दंगे केवल इन्हीं दो क्षेत्रों में होते हैं। देश के अन्य भागों में होने वाले साम्प्रदायिक दंगों के विषय में भी यही बात लागू होती है।

इन दंगों और इनकी कार्यविधि का गहराई से अध्ययन करने से दो बातें उजागर हुई हैं। पहली यह कि अधिकांश दंगे अन्य पंथों पर जुलूसों और पूजास्थानों पर मुसलमानों द्वारा हमले से शुरू होते हैं। ऐसे हमलों में बहुधा मस्जिदों का महत्त्वपूर्ण रोल रहता है। उनमें पत्थर तथा अन्य हथियार इकट्ठे किये जाते हैं। दूसरी यह कि दंगा तबतक चलता रहता है जब तक मुसलमानों का पलड़ा भारी रहता है। जब उनकी पिटाई शुरू होती है तब दंगा बंद हो जाता है।

इन तथ्यों से दो निष्कर्ष निकलते हैं। पहला निष्कर्ष यह कि पाकिस्तान बनने के बाद भी भारत में रह गये मुसलमान अन्य पंथावलम्बियों के साथ शान्तिपूर्ण और सर्वपंथ समभाव तथा बराबरी के आधार पर सह-अस्तित्व के लिए तैयार नहीं। वे अन्य मजहबों और पंथों के मानने वालों के प्रति वही व्यवहार करने के लिए तैयार नहीं जो वे अपने लिए चाहते हैं। वे अपने लिए विशेष अधिकार और सुविधाएँ चाहते हैं जो वे अन्य लोगों को देने

के लिए तैयार नहीं। उदाहरण के लिए वे अपनी मस्जिदों के सामने बाजा बजाने पर आपत्ति करते हैं परन्तु स्वयं अपनी मस्जिदों पर लगाए गए दूरध्वनि यन्त्रों के द्वारा बार-बार दूसरे लोगों की शान्ति भंग करना अपना अधिकार समझते हैं।

जब कुछ शरारती लोगों ने हजारों मील दूर यरुशलम में अल-अक्सा मस्जिद में आग लगाई तब उन्होंने हिन्दुस्तान में कई मन्दिर और गिरजाघर जला दिये। जब कुछ भिन्न विचार के मुसलमानों ने अरब में मक्का की मस्जिद पर बलात् अधिकार कर लिया तब भी उन्होंने भारत के कई मन्दिरों पर हमले किये और उनमें रखी देव मूर्तियों को तोड़ा। वे हिन्दुस्तान को दार-उल-इस्लाम बनाने और सभी मन्दिरों की मूर्तियाँ तोड़ने की बातें खुले आम करते हैं। वे अलीगढ़ विश्वविद्यालय के पूर्ण इस्लामीकरण और काश्मीर को शेष भारत से काटने की देश-द्रोह पूर्ण माँगों को लेकर भी दंगे और बलवे करते हैं।

दूसरा निष्कर्ष यह है कि यदि उन्हें सख्ती से यह बता और जतला दिया जाय कि उनका राष्ट्रविरोधी, समाजविरोधी और साम्प्रदायिक व्यवहार उन्हें महँगा पड़ेगा तो उन्हें सीधे रास्ते पर लाया जा सकता है।

इसके लिए आवश्यक है कि अल्पमत समुदायों के दिमागों में घुसी हुई इस धारणा को कि हिन्दुस्तान तो एक धर्मशाला है जिसका कुछ भाग काट कर अपना अलग होमलैंड बनाने के बाद भी शेष भाग पर उनका बराबरी का अधिकार और दावा बना रहता है, निकाला जाय। ज्योंही हिन्दुस्तान को हिन्दू राज्य घोषित किया जायेगा, यह उद्देश्य पूरा हो जायेगा। तब मुसलमान और अन्य अल्पमत राष्ट्रीय समाज के साथ मिलकर रहना सीखेंगे और भारत में विदेशियों जैसा या पाकिस्तान और बंगला देश के पंचमाँगियों जैसा आचरण करना बन्द कर देंगे। फलस्वरूप साम्प्रदायिक दंगे बन्द हो जाएँगे।

यह सोचना या समझना कि मुसलमान अन्य पंथों के अनुयायियों से अधिक बलवान है सर्वथा गलत और निराधार है। उनके आक्रान्ता रुख के कारण और हैं। सबसे बड़ा कारण उनकी जन्मजात हीन भावना है। उनके पुरखा इस्लाम को श्रेष्ठ समझकर नहीं, अपितु अपनी चमड़ी बचाने

के लिए मुसलमान बने थे। जब उनके सामने इस्लाम या मौत का विकल्प प्रस्तुत हुआ, तब उनमें से कुछ दुर्बल मन के लोग मुसलमान बन गये। कुछ मीनाक्षीपुरम् के बन्धुओं की तरह 'लालच' या अन्य प्रकार के दबाव के कारण भी मुसलमान बने। मनोविज्ञान के अनुसार व्यक्ति की हीन-भावना गुण्डागर्दी और असभ्य तथा असामाजिक व्यवहार के रूप में व्यक्त होती है। पंजाब के अनुभवी लोगों ने मुसलमान बने भाइयों की इस मनो-वैज्ञानिक हीन भावना को समझकर ही उनके विषय में कहा था कि उनका 'अग्गा' यानी अगला हिस्सा शेर का होता है और 'पिच्छा' यानी पिछला भाग गीदड़ का होता है। यदि उनसे दबा जाय तो वे शेर की तरह आक्रान्ता बन जाते हैं और यदि उनके साथ सख्ती से निपटा जाय तो वे गीदड़ों की तरह भाग खड़े होते हैं। ऐसे तत्त्वों का जितना तुष्टीकरण किया जाय उतना ही अधिक वे आक्रामक बन जाते हैं परन्तु यदि उनके प्रति दृढ़ता दिखाई जाय तो वे भीगी बिल्ली बन जाते हैं।

संसार-भर के देशों के अल्पमत साधारणतः वहाँ के बहुमत अथवा राष्ट्रीय समाज के साथ तालमेल बिठाकर रहते हैं। हिन्दुस्तान के हिन्दू राज्य घोषित होते ही, यहाँ के अल्पमत भी ऐसा ही करेंगे।

यह कहना कि पाकिस्तान और बंगला देश में १९४७ के बाद साम्प्रदायिक दंगे नहीं हुए, इसी बात की पुष्टि करता है। इन देशों में हिन्दू अल्पमत द्वारा दंगा करना तो दूर रहा, वह अपने उचित अधिकारों की माँग करने की स्थिति में भी नहीं। पाकिस्तान में उनका लगभग सर्व-नाश कर दिया गया है। बंगला देश जहाँ वे १९४७ में ३०% से अधिक थे, तिल-तिलकर मर रहे हैं। वे आज भी बंगला देश की जनसंख्या में हिन्दु-स्तान की जनसंख्या से मुसलमानों के अनुपात से अधिक हैं परन्तु उनका मनोबल पूरी तरह तोड़ दिया गया है। इन इस्लामी राज्यों के अल्पमत अपने अधिकारों के लिए लड़ने की बात अब सोच भी नहीं सकते क्योंकि वहाँ राज्यशक्ति उनके विरोध में खड़ी है।

हिन्दू राज्य पाकिस्तान और बंगला देश के उदाहरण का अनुसरण कदापि नहीं करेगा; परन्तु यह इस बात की ओर अवश्य ध्यान देगा कि जो तत्त्व पाकिस्तान के रूप में देश का अपने हिस्से से अधिक भाग ले चुके

हैं, वे खंडित हिन्दुस्तान में फिर वही परिस्थितियाँ पैदा न कर सकें जिनके कारण १९४७ में मातृभूमि का विभाजन हुआ था। हिन्दू राज्य उन्हें पाकिस्तान का केक जेब में डालकर हिन्दुस्तान का केक खाने की इजाजत कदापि नहीं देगा।

भारत के हिन्दू राज्य घोषित होने के फलस्वरूप साम्प्रदायिक दंगों का बन्द हो जाना अपने में बहुत बड़ी उपलब्धि होगी। अन्ततोगत्वा इसका सबसे अधिक लाभ स्वयं मुलसमानों को होगा। साम्प्रदायिक दंगे बन्द होने के बाद हिन्दुस्तान संसार को सर्वपंथ-समभाव और साम्प्रदायिक सहिष्णुता का सन्देश प्रभावी ढंग से दे सकेगा। संसार को इस सन्देश की बड़ी आवश्यकता है क्योंकि आज भी विभिन्न देशों में बड़े पैमाने पर मजहब और पंथों के नाम पर मारकाट चल रही है। आज स्थिति यह है कि पाकिस्तानी तत्त्व और अरबों के एजेण्ट पहले भारत में दंगे करते और कराते हैं और फिर उनके आका इनका भारत को अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर बदनाम करने के लिए प्रयोग करते हैं। इस प्रकार 'उलटा चोर कोतवाल को डाँटे' की उक्ति चरितार्थ हो रही है। भारत के हिन्दू राज्य घोषित हो जाने के बाद इन नफरत के व्यापारियों और साम्प्रदायिक दंगों के पृष्ठपोषकों की अक्ल ठिकाने लाई जा सकेगी और संसार को अल्पमतों के प्रति रवैये के मामले में हिन्दू राज्य और इस्लामी राज्यों का अन्तर प्रभावी ढंग से बताया और समझाया जा सकेगा। इससे संसार में भारत के विरुद्ध पाकिस्तान और अन्य इस्लामी देशों द्वारा किये जाने वाले कुप्रचार का भी प्रभावी ढंग से पर्दाफाश किया जा सकेगा।

राष्ट्रीय एकता का सुदृढ़ होना हिन्दुस्तान को हिन्दू राज्य घोषित करने का दूसरा बड़ा लाभ होगा। हिन्दुस्तान का सारा इतिहास इस बात का साक्षी है कि भारत का हिन्दूपन और इसकी जनता में हिन्दुत्व की चेतना इसकी एकता की सबसे पक्का और प्रभावी आधार और गारण्टी है। जहाँ हिन्दुओं का प्रभाव खत्म हुआ, वह क्षेत्र देर या सबेर हिन्दुस्तान से कट गया। जिन लोगों ने किन्हीं भी कारणों से हिन्दुत्व तथा हिन्दू जीवन-पद्धति से मुँह मोड़ लिया उन्हें हिन्दुस्तान की भौगोलिक एकता अलगाववादी और पृथक्तावादी रुख अपनाने से नहीं रोक सकी। पश्चिमी पंजाब, सिन्ध और

पूर्वी बंगाल इसी कारण भारत से कट गये। अब भी हिन्दुस्तान के उन्हीं भागों में पृथक्तावादी आन्दोलन और गतिविधियाँ हो रही हैं, जहाँ हिन्दुत्व दुर्बल पड़ गया है। काश्मीर घाटी, मिजोरम, नागालैंड ऐसे ही क्षेत्र हैं।

काश्मीर घाटी में हिन्दू आबादी लगातार घट रही है। १९७१ की जनगणना में वहाँ एक लाख दस हजार हिन्दू थे। १९८१ की जनगणना में वे घटकर ७३% रह गये हैं। जम्मू और लद्दाख क्षेत्रों में भी मुसलमानों की संख्या बढ़ाने के योजनाबद्ध प्रयत्न चल रहे हैं। यदि समय रहते इनके इस्लामीकरण पर रोक नहीं लगाई गई तो लद्दाख और जम्मू में भी पृथक्-वादी आन्दोलन खड़े हो जाएँगे।

पूर्वी भारत में मिजोरम और नागालैंड में पृथक्तावादी गतिविधियों का मूल कारण इन क्षेत्रों का ईसाईकरण है। वहाँ ईसाई बहुसंख्या में हो गये हैं। हिन्दू, बौद्ध, मिजो और नागा लोग ही इनको शेष भारत के साथ जोड़े रखने में सहायक हो रहे हैं।

इसके विपरीत पंजाब में तथाकथित खालिस्तान आन्दोलन बाहरी सहायता के बावजूद सिक्ख समुदाय की हिन्दू समाज के साथ मूलभूत सामाजिक और सांस्कृतिक एकता के कारण पनप नहीं रहा है, वहाँ वही अकाली पृथक्तावादी नारे लगा रहे हैं जो अपने आपको 'हिन्दू' कहलाने से इन्कारी हो गये हैं।

हिन्दुस्तान की राष्ट्रीय एकता और एकात्मकता में सबसे अधिक सहायक रामायण और महाभारत के महाकाव्य और उनके पात्र हैं। हिन्दुस्तान के जनसाधारण तथा अन्य देशों में भारतीय उद्गम के लोगों में भारतीय, सांस्कृतिक चेतना और सामाजिक एकता का भाव बनाए रखने में इन महान् संस्कृत ग्रन्थों का, जिनका अनुवाद सभी भारतीय भाषाओं में हो चुका है, योगदान अनमोल है। इसीलिए विदेशी मुस्लिम आक्रान्ताओं ने अयोध्या में राम के जन्मस्थल और मथुरा में कृष्ण के जन्मस्थल पर मंदिर तोड़कर वहाँ मस्जिद बनाई थी। हिन्दुस्तान के हिन्दू राज्य घोषित होते ही इन स्थलों की पूर्व स्थिति बहाल की जा सकेगी और वे भारत की भावात्मक एकता के प्रतीक बन सकेंगे।

मैकॉले के आत्मविस्मृत मानसपुत्र जो हिन्दुस्तान के शासन पर हावी

हो चुके हैं, सेक्यूलरिज़म, मिली-जुली संस्कृति और मिले-जुले राष्ट्र के नाम पर भारत की एकता के इन मूल आधारों की भी उपेक्षा कर रहे हैं। वे हिन्दुस्तान को एक धर्मशाला बनाना चाहते हैं जिसके प्रति किसी का कोई अपनत्व का भाव न हो। हिन्दुस्तान को हिन्दू राज्य घोषित करके ही इन विकृतियों और गलत नीतियों को सुधारा जा सकता है। हिन्दू राज्य में राष्ट्रीय एकात्मता समितियों जैसी संस्थाओं की, जिनके कारण राष्ट्रीय एकता सुदृढ़ होने के स्थान पर क्षीण हुई है, कोई आवश्यकता नहीं रहेगी। सर्वपंथ समभाव रूपी सेक्यूलरिज़म के सार, और राष्ट्रीय एकता और एकात्मता के इन मूलभूत सांस्कृतिक स्रोतों को अपनाने और उन्हें सबल बनाने में कोई अन्तर्विरोध नहीं है। इस सांस्कृतिक एकता के भाव ने ही हिन्दुस्तान जैसे विशाल देश की विशालता में निहित विविधताओं और विदेशी सत्ता के थपेड़ों के बावजूद देश की मूलभूत एकता को अक्षुण्ण रखा है।

हिन्दुस्तान को हिन्दू राज्य घोषित करने का तीसरा बड़ा लाभ सुरक्षा के क्षेत्र में होगा। किसी भी स्वतन्त्र और सर्वसत्तासम्पन्न राष्ट्र के जीवन में राष्ट्रीय सुरक्षा का पहलू अति महत्त्वपूर्ण होता है। गत छत्तीस वर्षों के अपने स्वतन्त्र राज्य के रूप में अस्तित्व के काल में भारत पाँच बाहरी हमलों का शिकार बन चुका है। पाकिस्तान ने १९४७, १९६४, १९६५ और १९७१ में हिन्दुस्तान पर आक्रमण किये। चीन ने भारत पर १९६२ में हमला किया। इन आक्रमणों के फलस्वरूप भारत के तीस हजार वर्ग-मील भू-भाग पर पाकिस्तान ने अधिकार कर रखा है और लगभग बीस हजार वर्ग मील पर चीन ने।

भारत की सुरक्षा को मुख्य खतरा पाकिस्तान से रहा है। यह आशा कि पाकिस्तान के विघटन और बंगला देश के एक अलग स्वतन्त्र देश के रूप में उदय से यह खतरा कम हो जाएगा दुराशा सिद्ध हुई है। बंगला देश में भी इस्लामी चेतना अधिक शक्तिशाली सिद्ध हुई है और इस्लामी बंगला देश का हिन्दुस्तान और हिन्दुओं के प्रति रवैया पाकिस्तान से भी अधिक शत्रुतापूर्ण हो गया है। इसने भारत द्वारा इसे पाकिस्तान से मुक्ति दिलाने के लिए दिये गये सहयोग और बलिदानों को भुला दिया है, और पाकि-

स्तान के साथ गठजोड़ कर लिया है। इसे भी अरब देशों, चीन और अमरीका से हथियार और पैट्रो-डालर मिल रहे हैं। फलस्वरूप बंगला देश पूर्व में भारत की सुरक्षा के लिए एक नया और बड़ा खतरा बन गया है।

जब तक हिन्दुस्तान की सत्ता मुसलमानों के हाथ में नहीं आती और वे अपना इस्लामी झंडा लालकिले पर नहीं फहरा लेते तबतक उनके लिए यह 'दार-उल-हरब' या युद्ध की भूमि बना रहेगा। इसके विरुद्ध लड़ा गया कोई भी युद्ध उनकी दृष्टि से 'जिहाद' यानी इस्लाम के लिए युद्ध है। इस वस्तुस्थिति का भारतीय मुसलमानों की मानसिकता पर भी गहरा प्रभाव है। इस्लाम के सिद्धान्तों के अनुसार उनका कर्तव्य है कि जिहाद करने वाले इस्लामी आक्रान्ताओं की सहायता करें। विभाजन के समय भारतीय सेना का भी बंटवारा किया गया था। यह इसी वस्तुस्थिति का तर्कसंगत परिणाम था।

भारत-पाक युद्धों का अनुभव भी इस दृष्टि से आँखें खोलने वाला है। उनकी सीख विचारणीय है। १९४७ के भारत-पाक युद्ध के समय भारत की सेना में शायद ही कोई मुसलमान था। परन्तु जम्मू-काश्मीर की सेना में काफी संख्या में मुसलमान थे। लगभग वे सब शत्रु से जा मिले। पाकिस्तानी आक्रान्ताओं के तेजी से काश्मीर घाटी और श्रीनगर की ओर बढ़ने का यही रहस्य था। इस युद्ध में मैंने श्रीनगर की रक्षा के लिए सक्रिय योगदान दिया था। इसलिए मुझे उस युद्ध के समय सैनिक और असैनिक मुस्लिम मानसिकता का स्वयं अनुभूत ज्ञान है। १९६४ में कच्छ पर आक्रमण और १९६५ में जम्मू और पंजाब क्षेत्र पर पाक आक्रमण के समय सीमावर्ती क्षेत्र के मुसलमानों के रोल पर भारत सरकार ने चुप्पी साध रखी है। परन्तु सुरक्षा सेनाओं को वास्तविकता का ज्ञान है। प्रशासनिक सुधार आयोग द्वारा नियुक्त सुरक्षा अध्ययन दल के उपसभापति के नाते मैंने इस सम्बन्ध में सेना के अफसरों और जवानों से पूछताछ की थी। मुझे जो जानकारी मिली, वह आँखें खोलने वाली थी। इस सम्बन्ध में लोकसभा में कुछ प्रश्न पूछने पर तत्कालीन सुरक्षा मंत्री ने जो प्रतिक्रिया व्यक्त की, उससे मेरी जानकारी और सन्देह की पुष्टि हुई थी। जो लोग अपनी जान हथेली पर रखकर पाकिस्तानी आक्रान्ताओं का मुकाबला करते हैं, उनके अनुभव और

उनके द्वारा दी गयी जानकारी की उपेक्षा करना खतरनाक है। हर जगह अपवाद हो सकते हैं जो सचाई की ही पुष्टि करते हैं। सूबेदार अब्दुल हमीद की प्रशंसा करना उचित है। परन्तु अपवादों को नियम के रूप में पेश करना सत्य को दबाना है।

१९७१ के युद्ध का अनुभव भी इसी प्रकार का है। जो भारतीय जवान और अफसर पाकिस्तानी सेना और मुजाहिदों के हाथ पड़ जाते थे, उनको वे उनकी आँखें तक निकालकर बुरी तरह यातनाएँ देते थे। युद्धकाल में कई सैनिक अधिकारियों ने मुझे इसकी जानकारी दी थी। युद्ध के बाद भारत द्वारा ९३ हजार पाकिस्तानी युद्धबन्दी बिना शर्त छोड़ देने के बाद भी अनेक भारतीय युद्धबन्दी अभी तक पाकिस्तान की जेलों में सड़ रहे हैं। भारत के अदूरदर्शी 'सेक्यूलर' राजनेताओं को जो बार-बार हमारी सैनिक विजय को राजनीतिक पराजय में बदल चुके हैं, इन तथ्यों से कुछ सबक सीखना चाहिए।

पाकिस्तान के साथ एक और युद्ध अनिवार्य है। इसमें बंगला देश भी पाकिस्तान का साथ दे सकता है। पाकिस्तान की आन्तरिक स्थिति उसे और निकट ला सकती है। पाकिस्तान की एकता नकारात्मक है। हिन्दुओं और हिन्दुस्तान का विरोध ही इसको अपने अन्तर्विरोध से बचाता आया है। पाकिस्तान अपनी सैनिक शक्ति में तेजी से बढ़ोत्तरी कर रहा है। १९७१ की अपेक्षा अब इसकी जनसंख्या आधे से भी कम है, परन्तु उसका रक्षा-व्यय उस समय की अपेक्षा कई गुना बढ़ गया है। अरब देशों से उसे आधुनिकतम हथियार खरीदने के लिए अथाह धन मिल रहा है। चीन के साथ उसका गठजोड़ है और अमेरिका इसकी पीठ पर है। सऊदी-अरब, जोर्डन इत्यादि की वायुसेना और टैंक सेना के विमानों और टैंकों के चालक अधिकांश पाकिस्तानी हैं। युद्ध के समय वे भी पाकिस्तान के काम आ सकते हैं।

भारत के अन्दर के पाकिस्तान परस्त तत्त्वों में इस्लामिक सिद्धान्तवाद के बढ़ते प्रभाव ने स्थिति को और भी गम्भीर बना दिया है। इस प्रकार के संकेत मिलते हैं कि ये तत्त्व आगामी भारत-पाक युद्ध में खुलकर पाकिस्तान के पंचमांगियों का रोल अदा करके हिन्दुस्तान को इस्लामी देश बनाने के लिए सक्रिय योगदान देंगे।

शत्रु के चरित्र और मानसिकता का सही ज्ञान युद्ध में जीत के लिए आवश्यक होता है। भारतीय सेना के जवान और अफसर पाकिस्तान की मानसिकता को जानते हैं और उनके मनों में भी पाकिस्तान और पाकिस्तानियों के प्रति उसी प्रकार का भाव है जैसाकि पाकिस्तानियों का हिन्दुस्तान और हिन्दुओं के प्रति है। परन्तु भारत के वर्तमान नेतृत्व ने पाकिस्तान और भारत में पाकिस्तानी एजेंटों के प्रति जो रवैया अपना रखा है, उसका प्रभाव सेना के जवानों पर भी पड़ रहा है। मुझे सुरक्षा के इस महत्त्वपूर्ण पहलू का पता तब लगा जब मैंने सिक्किम के नाथूला क्षेत्र के भारतीय कमांडर से, जो भारतीय सेना का एक विख्यात सेनापति है, पूछा कि क्या कारण है कि उन्हीं दिनों नाथूला में हुई एक झड़प में चीनी तो चौदह भारतीय जवानों को मारकर उनके शव भी ले गये और हमारे जवान एक भी चीनी सैनिक को न मार सके। उसका उत्तर बड़ा स्पष्ट और कटु परन्तु विचारोत्पादक था। उसने कहा कि किसी को मारने के लिए उसके प्रति उग्र शत्रुता और घृणा का भाव होना आवश्यक होता है। यदि कोई सरकार उस शत्रु के प्रति भाई-भाई के नारे लगाती रहे तो सैनिक भी उसके साथ प्रभावी ढंग से नहीं लड़ सकते। उन सभी लोगों को जो भारत की एकता और सुरक्षा चाहते हैं उस जनरल की इस बात पर गम्भीरता से विचार करना चाहिए। पाकिस्तानी सिपाही हिन्दुस्तान के साथ युद्ध में जिहाद की भावना से लड़ते हैं। उनके मजहब के अनुसार किसी गैर-मुस्लिम को युद्ध में मारना उन्हें विशेष पुण्य का भागी बनाता है।

हिन्दुस्तान के हिन्दू राज्य घोषित होते ही हिन्दुस्तान के सैनिकों में ही नहीं अपितु साधारण जनता के मानस में एक गुणात्मक परिवर्तन आएगा। तब हिन्दुस्तान का हर सैनिक, चाहे वह पंजाबी हो या मराठा अथवा तमिल, जाट हो या महार, सिक्ख हो या जैन, मातृभूमि की रक्षा के लिए पाकिस्तानी आक्रान्ताओं के साथ लड़ाई में उच्चतम शौर्य दिखाने में गौरव महसूस करेगा।

दूसरी ओर हिन्दुस्तान के हिन्दू राज्य घोषित होने से पाक-एजेंटों का मनोबल टूटेगा और वे देशद्रोहात्मक राष्ट्रविरोधी गतिविधियाँ करने से घबराने लगेंगे।

वैसे भी सुरक्षा के मामले में 'सेक्यूलरिज़म' को घुसेड़ना सर्वथा गलत है। जब कभी सेक्यूलरिज़म के तकाज़ों और राष्ट्र की सुरक्षा में टकराव आए तब सुरक्षा को वरीयता मिलनी ही चाहिए। यह भली-भाँति समझ लेना चाहिए कि सैनिक केवल रोटी के लिए नहीं लड़ते। उनके सामने कोई आदर्श और कोई ऐसा उद्देश्य होना चाहिए जिसके लिए वे जीने और मरने में गर्व कर सकें। और जब शत्रु मज़हब भावना से मतान्ध हो, तब तो यह और भी आवश्यक हो जाता है। इसलिए हिन्दुस्तान को हिन्दू राज्य घोषित करना देश की सुरक्षा के लिए आवश्यक ही नहीं, अपितु अनिवार्य भी हो गया है।

इस समय हिन्दू सारे संसार में फैले हुए हैं। मॉरिशस में तो उनका बहुमत है और फिजी, जमैका, सुरीनाम और गुयाना की जनसंख्या में वे लगभग ५०% हैं। श्रीलंका में वे २०%, बंगलादेश में लगभग १५% और मलयेशिया और सिंगापुर की जनसंख्या में १०% से अधिक हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में हिन्दू पाँच लाख के लगभग हैं। ब्रिटेन, कैनेडा, बर्मा, केन्या और खाड़ी के देशों में भी वे बड़ी संख्या में बस चुके हैं। वे स्वाभाविक रूप में हिन्दुस्तान से सांस्कृतिक और नैतिक सहायोग की अपेक्षा करते हैं। इस समय इनकी अवस्था दयनीय है। उनकी स्थिति ऐसे यतीमों जैसी है जो किसी बड़े देश की ओर सहायता और सहयोग के लिए नहीं देख सकते। फलस्वरूप वे अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान और सामूहिक आत्म-विश्वास और स्वाभिमान खो रहे हैं।

जिन देशों में वे रह रहे हैं, वहाँ की सरकारें उनके साथ कई ढंग से भेदभावपूर्ण व्यवहार करती हैं। यह बात केशधारी हिन्दुओं पर विशेष रूप में लागू होती है। इसके विपरीत मुसलमानों की स्थिति चाहे वे भारतीय उद्गम के हों या किसी और देश से आए हों, बहुत बेहतर है। भारतीय उद्गम के सभी मुसलमानों को विदेशों में पाकिस्तानी ही माना जाता है क्योंकि सभी देश जानते हैं कि भारत का विभाजन हिन्दू मुसलमान के आधार पर हुआ था। वे पाकिस्तान को भारतीय मुसलमानों का देश और हिन्दुस्तान को हिन्दुओं का देश मानते हैं। इसलिए वे सभी पाकिस्तान की ओर अपने संरक्षक के रूप में देखते हैं। परन्तु हिन्दुओं के लिए हिन्दुस्तान

के अतिरिक्त कोई और देश नहीं जिसकी ओर वे संरक्षण के लिए देख सकें। हिन्दुस्तान के हिन्दू राज्य घोषित होते ही इस स्थिति में गुणात्मक बदलाव आएगा। इससे प्रवासी हिन्दुओं को लाभ होगा और हिन्दुस्तान को भी। इससे संसार में भारत के नेतृत्व की प्रतिष्ठा भी बढ़ेगी। यही कारण है कि विदेशों में, विशेष रूप से अमेरिका में बसे हिन्दुओं ने भारत की प्रधान मन्त्री श्रीमती गांधी को ज्ञापन देकर प्रार्थना की है कि भारत को शीघ्र हिन्दू राष्ट्र घोषित किया जाय।

वर्तमान संसार के सभी राष्ट्रों और देशों के मज़हब, नसल और क्षेत्र के आधार पर संगठन बन चुके हैं। इन सबमें इस्लामिक देशों का संगठन, जिसके लगभग चालीस इस्लामी देश सदस्य हैं, अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर काश्मीर के मामले में अपना वज़न पाकिस्तान के पक्ष में और हिन्दुस्तान के विरोध में डालता रहता है। वे सब भारत को एक गैर-इस्लामी देश मानते हैं। भारत सरकार ने यह कहकर कि भारत में भी मुसलमान काफी संख्या में हैं, कई बार इन इस्लामी राज्यों के सम्मेलन में घुसने का प्रयत्न किया है। इससे इसकी स्थिति न केवल अपने लोगों की, अपितु संसार के अन्य देशों की दृष्टि में हास्यास्पद बनी है।

हिन्दुस्तान को हिन्दू राज्य घोषित करने और हिन्दुस्तान को एक हिन्दू देश के रूप में पेश करने से न केवल मुस्लिम देशों में अपितु अन्य देशों में भी भारत का सम्मान बढ़ेगा। हिन्दुस्तान के आत्मविस्मृत, हीन भावना और मानसिक दासता से ग्रस्त नेतृत्व के अपने द्वारा पैदा किये विभ्रमों के बावजूद शेष संसार हिन्दुस्तान को हिन्दू राज्य ही मानता—समझता है। इसलिए बेहतर है कि हिन्दुस्तान का नेतृत्व अपनी कल्पना के कृत्रिम संसार से बाहर निकले और वास्तविकता को पहचाने। इसमें उसका अपना भी हित है और हिन्दुस्तान का भी।

हिन्दू राज्य के नाते हिन्दुस्तान हिन्दू-बौद्ध जनता का सांस्कृतिक नेतृत्व संभाल सकता है और संसार के हिन्दू-बौद्ध देशों का ब्लॉक या संगठन बनाने के लिए पहल कर सकता है। जनसंख्या और प्रभाव की दृष्टि से यह ब्लॉक अथवा संगठन संसार का सबसे बड़ा सांस्कृतिक और क्षेत्रीय ब्लॉक बन सकता है। मुस्लिम ब्लॉक की तरह यह भी अपना अलग सचिवालय कायम

करके सारे संसार और विशेष रूप में दक्षिण एशिया की कम्पूचिया जैसी समस्याओं का समाधान ढूँढ़ने में एक रचनात्मक और प्रभावी रोल अदा कर सकता है। हिन्दू-बौद्ध देशों का संगठन संसार की शान्ति और स्थिरता के लिए एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकेगा।

लाओस, कम्पूचिया, वियतनाम और थाईलैंड जैसे दक्षिण एशिया के बौद्ध देशों की अर्थव्यवस्था भारत की अर्थव्यवस्था की पूरक है, प्रतिद्वंद्वी नहीं। जापान को छोड़कर ये सभी विकासशील कृषि प्रधान देश हैं। हिन्दू राज्य के रूप में भारत उनके साथ आर्थिक और राजनीतिक मामलों में भी अपने सम्बन्ध अधिक स्थिर और व्यापक बना सकेगा।

सारा इतिहास इस बात का साक्षी है कि सांस्कृतिक सम्बन्ध राजनीतिक और आर्थिक सम्बन्धों की अपेक्षा अधिक स्थायी सिद्ध होते हैं। दक्षिण-पूर्वी एशिया के अधिकांश राष्ट्र राज्य हिन्दुस्तान की सांस्कृतिक दुहिताएँ हैं। यदि १९४७ में ही हिन्दुस्तान खुलकर हिन्दू राज्य के रूप में आगे आता और इन देशों के साथ अपने प्राचीन काल से चले आने वाले सांस्कृतिक सम्बन्धों को और सुदृढ़ करने के लिए योजनाबद्ध प्रयत्न करता तो यह संसार के इस महत्त्वपूर्ण भाग की राजनीति और विकास को एक नई दिशा दे सकता था। इस संदर्भ में डॉक्टर श्यामाप्रसाद मुकर्जी के अनुभव स्मरणीय हैं। जब १९५२ में महाबोधि सोसाइटी के अध्यक्ष के रूप में वे साँची के स्तूप से निकले, महात्मा बुद्ध के प्रमुख शिष्यों, महामोग्गलायन और सारिपुत्र, के अवशेष लेकर इन देशों में गये थे तब लाखों लोगों ने माँ भारत के नारे लगाते हुए उन अवशेषों के आगे सिर झुकाकर भारत और भारतीय संस्कृति के प्रति अपने आदर का प्रदर्शन किया था। बर्मा, थाईलैंड और वियतनाम के नेताओं ने उस समय डॉक्टर मुकर्जी से प्रार्थना की थी कि स्वतन्त्र हिन्दुस्तान को खुलकर अपने आपको हिन्दू-बौद्ध संस्कृति के संरक्षक के रूप में पेश करना चाहिए और पूर्वी देशों के साथ सम्बन्ध बढ़ाने चाहिए। परन्तु भारत सरकार के तत्कालीन कर्णधारों ने भारत की हिन्दू पहचान की उपेक्षा करके उस अवसर को खो दिया। संसार के एकमात्र हिन्दू राज्य नेपाल के साथ भी हिन्दुस्तान के सम्बन्ध और मधुर तथा सुदृढ़ होते यदि पं० नेहरू, जो इसीलिए स्वतन्त्र भारत के पहले प्रधानमन्त्री

बन सके थे क्योंकि वे ब्राह्मण वंश के हिन्दू थे, अपने हिन्दू होने पर गर्व करते और हिन्दुस्तान और नेपाल के घनिष्ठ सम्बन्धों के मूल आधारों को ठीक रूप में समझते।

एक हिन्दू राज्य के नाते भारत उन बहुत-सी समस्याओं के सम्बन्ध में जिनसे यह स्वतन्त्रता के समय से ही ग्रस्त है, के प्रति तर्कसंगत, यथार्थ-वादी और सिद्धान्तानुकूल रुख अपना सकता था। यह किसी प्रकार की मानसिक दुविधा के बिना काश्मीर समस्या का सही हल निकाल सकता, ननकाना साहिब के लिए वेटिकन दर्जे की माँग कर सकता और बंगला देश से आए एक करोड़ से अधिक हिन्दू-बौद्ध शरणार्थियों के लिए होमलैंड के लिए बंगला देश से भूमि की माँग कर सकता। आज स्थिति यह है कि भारत दोनों ओर से घाटे में रह रहा है। संसार के सभी देशों से हिन्दू-बौद्ध शरणार्थी भारत में शरण लेने के लिए आते हैं क्योंकि वे भारत को हिन्दू देश मानते हैं। सारे इस्लामी देश भारत के विरुद्ध पाकिस्तान का साथ भी इसलिए देते हैं कि वे भारत को हिन्दू देश मानते हैं। इस वास्तविकता से आँखें मूँदने के कारण हिन्दुस्तान न हिन्दू शरणार्थियों से न्याय कर पा रहा है और न यह इस्लामी देशों के साथ उसी भाषा में बात कर सकता है जिसे वे समझते हैं। यह साइप्रस, लेबेनान, इस्राइल और अरब देशों के मामले में यथार्थवादी और राष्ट्रहित के अनुकूल नीति नहीं अपना सकता क्योंकि इसका नेतृत्व यह मानने से इन्कार करता है कि हिन्दुस्तान हिन्दू देश है। फलस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर भारत बिखरे और दोहरे व्यक्तित्व वाले देश की तरह व्यवहार करता है। यह अपनी एकता, सुरक्षा और अस्तित्व का उन लोगों को प्रसन्न करने के लिए खतरे में डाल रहा है जो भारत के साथ अपने आपको एकरूप करने के लिए तबतक तैयार नहीं हो सकते जब तक कि यह भी पाकिस्तान की तरह एक इस्लामी राज्य नहीं बन जाता।

भारत के अन्दर और बाहर के घटनाचक्र ने भारत की जनता और सरकार के सामने ऐसी स्थिति पैदा कर दी है कि उन्हें दो-टूक फैसला करना ही पड़ेगा कि वे क्या हिन्दू राज्य के रूप में हिन्दुस्तान को एक जीवित राष्ट्र देखना चाहते हैं कि या वे उसे प्राचीन रोम, यूनान और मिस्र की भाँति इतिहास की बिसरी याद बनाना चाहते हैं। आज के हालात बहुत

देर तक नहीं चल सकते । हिन्दुस्तान को इस मामले में देर या सबेर दो-टूक फैसला करना ही पड़ेगा ।

इस प्रकार हिन्दुस्तान को हिन्दू राज्य घोषित करने के लाभ रचनात्मक भी हैं और महत्त्वपूर्ण भी । केवल वही लोग जिन्होंने अस्थायी व्यक्तिगत अथवा दलगत लाभ के लिए अपनी आत्मा मुस्लिम मतों के लिए गिरवी रखी है और जो अपनी नाक के आगे नहीं देख सकते, हिन्दुस्तान के एक हिन्दू देश होने की वास्तविकता और इसे हिन्दू राज्य घोषित करने की आवश्यकता से आँखें बन्द कर सकते हैं । यह रवैया देश के लिए और उनके अपने लिए भी घातक सिद्ध होगा ।

हिन्दुस्तान हिन्दू राज्य के रूप में ही अपनी एकता, सुरक्षा और विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान को कायम रख सकता है, अपने तथा संसार-भर में फैले हिन्दू उद्गम के लोगों के हितों की रक्षा शुद्ध चेतना के साथ कर सकता है और संसार पर अपने भौगोलिक विस्तार, प्राचीनता और भौतिक तथा आध्यात्मिक साधनों और उपलब्धियों के अनुरूप नैतिक और राजनीतिक प्रभाव डाल सकता है ।

: ८ :

हिन्दू राज्य की स्थापना के उपाय

पूर्व अध्याय ने हिन्दू राज्य का तर्कयुक्त आधार स्पष्ट कर दिया है। हिन्दुस्तान हिन्दू राष्ट्र है। इसे हिन्दू राज्य घोषित करना ऐतिहासिक आवश्यकता है। एक विशिष्ट चरित्र वाले राष्ट्र के रूप में हिन्दुस्तान का भविष्य इस पर निर्भर है।

यह बात न केवल विचारवान राष्ट्रवादियों की समझ में आ रही है, अपितु जनसाधारण भी इसकी आवश्यकता महसूस कर रहे है। वे लोग भी जो मानसिक भीरुता अथवा दलगत कारणों से इसे सार्वजनिक रूप में मानने की हिम्मत नहीं करते, हिन्दुस्तान के अन्दर और बाहर के घटना-चक्र के परिप्रेक्ष्य में यह मानने लग पड़े हैं कि यह सुझाव तर्कसंगत और विचारणीय है।

परन्तु कुछ ऐसे लोग है जो भारत की आज की स्थिति में इसकी सम्भाव्यता के विषय में शक करते हैं। इस समय भारत के राजनीतिक जीवन पर मैकाले के आत्मविस्मृत मानसपुत्रों का वर्चस्व है। उनका राष्ट्र विरोधी साम्प्रदायिक तत्वों के तुष्टीकरण की नीति में निहित स्वार्थ पैदा हो चुका है क्योंकि ऐसे तत्वों के सामूहिक मतों के बल पर ही उनकी राजनीति चलती है। वे यह मानकर चलते हैं कि राष्ट्रीय हिन्दू समाज तो टुकड़ों में बंटा रहेगा और राजनीतिक दृष्टि से आज की तरह अप्रभावी बना रहेगा। इसे विघटित रखने में उनका निहित स्वार्थ पैदा हो चुका है। यही कारण है कि वे आरक्षण नीति द्वारा जाति-व्यवस्था का राजनीतिकरण करके हिन्दू समाज के और अधिक टुकड़े कर रहे हैं। वे हिन्दू समाज के अन्तर्गत आने

वाले विभिन्न सम्प्रदायों और पंथों के अनुयायियों में भी आपसी वैमनस्य और अलगाव की भावना पैदा करने अथवा बढ़ाने का प्रयत्न कर रहे हैं। उनके लिए हिन्दुस्तान में केवल मुसलमान और गैर-मुसलमान रहते हैं। वे चाहते हैं कि हिन्दुस्तान और हिन्दू शब्द ही जनमानस से मिट जाएँ। वे अपने इस राष्ट्रघातक दृष्टिकोण को गांधी-नेहरू की धरोहर के रूप में पेश करते हैं। उनके अनुसार गांधीजी से पहले भारत में कोई राष्ट्र नहीं था और गांधीजी उनकी कल्पना के मिले-जुले राष्ट्र के पिता और पं० नेहरू उसके चाचा हैं। वे इस बात को भूलते हैं कि उनकी कल्पना का मिला-जुला राष्ट्र तो द्विराष्ट्र के आधार पर १९४७ में भारत विभाजन के समय पानी के बुलबुले की तरह हवा में उड़ गया था।

परन्तु अब उनमें से भी कुछ लोग यह समझने लग पड़े हैं कि उनका यह अयथार्थवादी, अनैतिहासिक और तर्क-विरुद्ध दृष्टिकोण उनके व्यक्तिगत और दलगत हितों को भी बहुत देर बचा नहीं सकेगा। बढ़ती हुई हिन्दू चेतना और उभरती हुई हिन्दुत्व की भावना एक ऐसी वास्तविकता बन गई है जिसकी वे भी उपेक्षा नहीं कर सकते। इसलिए बदल अवश्यम्भावी हो गया है और उसे कोई रोक नहीं सकता। १९४७ की भूल का सुधार करने और हिन्दुस्तान को हिन्दू राज्य घोषित करने के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ और वातावरण बन रहा है। परन्तु इतिहास की यह सीख है कि वास्तविकता को मनवाने और सत्य की विजय के लिए भी प्रयत्न करना पड़ता है। अति प्रशंसनीय अच्छे उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए भी हर प्रकार के साधन जुटाने और बलिदान करने पड़ते हैं। हिन्दू राज्य के लिए भी प्रयत्न करने पड़ेंगे।

राज्य एक राजनीतिक अवधारणा है। इस दृष्टि से यह राष्ट्र से कुछ अधिक है। हिन्दुस्तान को हिन्दू राष्ट्र बनाए रखने के लिए इसे हिन्दू राज्य घोषित करना आवश्यक है। इसके लिए हिन्दू राज्य से प्रतिबद्ध राजनीतिक आन्दोलन खड़ा करना होगा। सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर उभरती हुई हिन्दू चेतना हिन्दू राज्य के पक्ष में इस प्रकार का राजनीतिक आन्दोलन खड़ा करने में सहायक हो सकती है, किन्तु इस बात को स्पष्टतया समझ लेना चाहिए कि सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना इस उद्देश्य की पूर्ति के

लिए तभी सहायक हो सकती है जब उसकी सोद्देश्य अभिव्यक्ति राजनीतिक क्षेत्र में भी हो।

हिन्दुस्तान में सांस्कृतिक क्षेत्र में हिन्दू चेतना सदा रही है। अब वह अधिक उजागर हो रही है। इस काम में आर्यसमाज, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और इनसे सम्बन्धित संस्थाएँ और नेता उल्लेखनीय और सराहनीय काम कर रहे हैं। परन्तु जबतक यह चेतना देश के राजनीतिक जीवन में प्रतिबिम्बित नहीं होती, तबतक इसका प्रभाव अति सीमित रहेगा। 'राजा कालस्य कारणम्' एक शाश्वत सत्य है। जिस बात का प्रभाव राजनीति पर पड़ता है, उसका प्रभाव दूर तक पड़ता है। इस चिरन्तन सत्य, जिसको समय-समय पर चाणक्य और मारले जैसे राजनीतिक चिंतक दोहराते रहे हैं, की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

भारतीय जनसंघ जिसकी स्थापना १९५१ में डॉक्टर श्यामाप्रसाद मुकर्जी ने आर्यसमाज, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और सत्य हिन्दुत्ववादी तत्त्वों तथा पाकिस्तान से आए विस्थापितों के सक्रिय सहयोग से की थी, का यही राजनीतिक उद्देश्य था। इसके चिन्तन की दिशा भी यही थी। डॉक्टर मुकर्जी का निकट सहयोगी और जनसंघ के प्रथम घोषणापत्र के लेखक के रूप में मैं डॉक्टर मुकर्जी और जनसंघ के निर्माण कार्य में उनके अन्य सहयोगियों के मानस को अच्छी तरह जानता हूँ। सच तो यह है कि जनसंघ के मूल घोषणापत्र में हिन्दू राष्ट्र शब्द का स्पष्ट प्रयोग किया गया था, परन्तु महाशय कृष्ण जैसे कुछ नेताओं को डर था कि इससे जनसंघ का शुरू से ही पंडित नेहरू से खुला टकराव हो जाएगा। उस समय गांधी जी की हत्या के कारण पंडित नेहरू, जयप्रकाश नारायण और उनके तथाकथित प्रतिवादी समाजवादी और सेक्यूलरवादी साथी हवाई घोड़े पर सवार थे। सत्ता उनके पास थी और वे सरकारी साधनों का हिन्दू भावना को दबाने के लिए खुलकर प्रयोग कर रहे थे। इसीलिए हिन्दू राष्ट्र शब्द घोषणापत्र से निकाल दिया गया। यह एक दुर्भाग्यपूर्ण बात थी जिसे डाक्टर मुकर्जी ने पसन्द नहीं किया। इसलिए उन्होंने जनसंघ के इस विषय पर मूल चिन्तन को दिसम्बर १९५२ में कानपुर में हुए जनसंघ के पहले राष्ट्रीय सम्मेलन में भारतीयकरण सम्बन्धी प्रस्ताव में स्पष्ट कर दिया था।

यह प्रस्ताव जनसंघ के संस्थापक अध्यक्ष डॉक्टर मुकर्जी ने स्वयं बनाया और स्वयं ही इसे प्रस्तुत किया था। यह सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ था। इस प्रस्ताव में कहा गया था कि जनसंघ चाहता है कि स्वतन्त्र भारत की सरकार भारतीय राज्य को स्पष्ट हिन्दू दिशा देने के लिए निम्नोक्त पग उठाये—

१. शिक्षा राष्ट्रीय संस्कृति और परम्परा के अनुकूल हो। उपनिषदों, भगवद्गीता, रामायण, महाभारत के साथ-साथ आधुनिक भारतीय भाषाओं का वह साहित्य और साहित्यकार जिन्होंने भारतीय संस्कृति को जीवित रखने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है, का पठन-पाठन शिक्षा का आवश्यक अंग होना चाहिए। ताकि वह दिन, जब देश के सभी लोग इस साँझी ज्ञानधारा में आ जाएँ, निकट लाया जा सके।

२. राष्ट्रीय महापुरुषों के जन्मदिन और राष्ट्रीय पर्व, राष्ट्रीय स्तर पर मनाए जाएँ। इनमें सभी वर्गों और सम्प्रदायों के लोग भाग लें और सरकार भी इनके लिए हर प्रकार का आर्थिक और प्रशासनिक सहयोग दे।

३. रक्षाबन्धन, विजयदशमी, दीवाली तथा होली जैसे त्यौहार राष्ट्रीय त्यौहार घोषित किये जाएँ और इसी रूप में मनाए जाएँ।

४. राष्ट्रभाषा और क्षेत्रीय भाषा के विकास और उनके देश के जीवन के हर पहलू में प्रयोग की ओर विशेष ध्यान दिया जाए ताकि हिन्दुस्तान का राष्ट्रीय जीवन राष्ट्रीय संस्कृति और प्रतिभा के अनुरूप विकसित हो सके।

५. संस्कृत भाषा को पुनर्जीवित किया जाए और उसका ज्ञान उच्च-शिक्षा के शिक्षार्थियों के लिए अनिवार्य बनाया जाए। इसके साथ-साथ देव-नागरी लिपि को देश की सभी भाषाओं की साँझी लिपि के रूप में बढ़ावा दिया जाए और लोकप्रिय बनाया जाए।

६. भारतीय इतिहास का इस प्रकार पुनर्लेखन किया जाए कि यह भारतीय राष्ट्र का इतिहास बने, केवल विदेशी आक्रान्ताओं और शासकों का नहीं। इतिहास का काल-विभाजन विदेशी आक्रान्ताओं के नाम पर न करके उन सामाजिक आन्दोलनों और क्रान्तियों के आधार पर किया जाए

जिन्होंने भारतीय समाज के विकास में विशेष योगदान दिया है। इतिहास की पाठ्य-पुस्तकों में भारतीय संस्कृति और विचारों को संसार में प्रचार और प्रसार को विशेष स्थान दिया जाए।

७. हिन्दुस्तान की सांस्कृतिक उन्नति और राष्ट्रीय एकता के लिए आवश्यक है कि हिन्दू समाज अपनी आन्तरिक कमजोरियों और विकृतियों को दूर करे। जाति के आधार पर ऊँच-नीच के भाव को दूर करके और हिन्दू समाज के पिछड़े वर्ग को उठाने तथा भेदभाव को मिटाने की ओर विशेष ध्यान दिया जाय। इसके लिए आवश्यक है कि राष्ट्रीय त्यौहार सभी वर्गों के सहयोग और सह कार्य से मनाया जाय।

इस प्रस्ताव से भारतीय जनसंघ की हिन्दू राज्य की कल्पना स्पष्ट लक्षित होती है।

डॉक्टर मुकर्जी की चन्द मास बाद ही जून, १६५३ में काश्मीर की जेल में रहस्यमयी मृत्यु, पं० नेहरू और उनके सेक्यूलरवादी चेलों-चांटों द्वारा जनसंघ पर योजनाबद्ध प्रहारों और इसके विरुद्ध सरकारी प्रचार साधनों के दुरुपयोग के बावजूद, जनसंघ की निरंतर प्रगति इस बात का प्रमाण थी कि हिन्दू राष्ट्र और हिन्दू राज्य सम्बन्धी विचार लोकप्रिय हो रहे हैं। १६६७ के आम चुनाव में लेखक को राष्ट्रीय अध्यक्ष के रूप में जनसंघ का नेतृत्व करने का गौरव प्राप्त था, जनसंघ देश के बड़े भाग में कांग्रेस के बाद दूसरे बड़े दल और उसके प्रभावी विकल्प के रूप में उभरा था। उस चुनाव में मैंने अपने भाषणों और नीति-कथ्यों में यह स्पष्ट कर दिया था कि जनसंघ भारत को हिन्दू देश मानता है और इसकी नीतियों को हिन्दू हितों के अनुरूप दिशा देगा। मैंने यह भी स्पष्ट किया था कि जनसंघ को मुस्लिम मतों की चिन्ता नहीं, वह उनके बिना भी जीतेगा और जीता भी। जब इस प्रकार जनसंघ ने हिन्दू शक्ति का परिचय दिया तब जामा मस्जिद दिल्ली के इमाम मौलाना बुखारी जैसे अनेक मुस्लिम नेता भी अपने आप जनसंघ के नेताओं के सामने सिजदा करने लगे।

१६६६ में जनसंघ ने पटना में हुए अपने राष्ट्रीय सम्मेलन में १६५२ के भारतीयकरण के प्रस्ताव में अपनी आस्था को दोहराया था और भारतीयकरण के सम्बन्ध में एक और प्रस्ताव पारित करके १६५२ के प्रस्ताव

का विस्तार किया था। इसमें कहा गया था कि—

१. राष्ट्रवाद जो देश को एक सूत्र में बाँधने वाले तत्त्वों और भावनाओं का समूह होता है, की भावना को जगाने और सबल बनाए रखने के लिए हर सम्भव प्रयास किया जाना चाहिये। इसके लिए यह आवश्यक है कि राष्ट्रवाद की परिकल्पना और इसके मूल स्रोतों को ठीक रूप से समझा जाये।

२. भारतीयकरण को, जिसका अर्थ सम्प्रदाय, क्षेत्र, भाषा इत्यादि के प्रति आस्थाओं पर देश के प्रति आस्था को वरीयता देना है, राष्ट्रीय आन्दोलन के रूप में अपनाया जाये ताकि यह पृथक्तावादी, देश के बाहर आस्था रखने वालों और प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में द्विराष्ट्र में विश्वास रखने वाले तत्त्वों को राष्ट्रीय धारा में लाने का सशक्त साधन बन सके।

३. जम्मू-काश्मीर को शेष भारत के साथ पूरी तरह मिलाने के लिए अविलम्ब प्रभावी पग उठाए जाएँ और गजेन्द्रगडकर आयोग के जम्मू और लद्दाख क्षेत्र के सम्यक् विकास के लिए दिए गये सुझावों को अमल में लाया जाय।

४. देश-द्रोह की स्पष्ट व्याख्या की जाये और देश-द्रोह सम्बन्धी कानून बनाया जाये।

मजे की बात यह है कि सभी राष्ट्र विरोधी तत्त्वों ने, जिन्हें भारत सरकार की तुष्टीकरण की नीति से बहुत प्रोत्साहन मिल रहा था, भारतीयकरण के विरुद्ध देशव्यापी हो-हल्ला शुरू कर दिया। 'इंडियानाइज़ेशन' पुस्तक लिखकर भारतीयकरण को राष्ट्रीय आन्दोलन का रूप देने के मेरे प्रयत्नों से उनकी नींद हराम होने लगी। उन्होंने सरकार पर दबाव डाला कि वह मुझे गिरफ्तार करे। सरकार उनके दबाव में आ गई और उसने मेरे विरुद्ध दंड विधि की धारा १२३-A के अन्तर्गत अभियोग चलाया। यह अभियोग कई वर्षों तक चलता रहा, अन्त में सरकार को इसे वापस लेना पड़ा। भारत के राजतन्त्र और भारतीय जनों के भारतीयकरण और हिन्दुस्तान के राजतन्त्र और लोगों के हिन्दूकरण का एक ही भावार्थ है—क्योंकि 'भारत, इण्डिया, हिन्दुस्तान और हिन्दू एक ही राष्ट्र के सूचक शब्द हैं।

भारतीयकरण भारत के इस्लामवाद और साम्यवाद से भिन्न भारतीय अथवा हिन्दू स्वरूप को उजागर करने का नाम है। यह भारतीय राष्ट्रवाद का पर्याय है। इस पर आपत्ति करना अपने आपको भारतीय, इंडियन अथवा हिन्दू कहलाने पर आपत्ति करना है।

यह हिन्दुस्तान और हिन्दू राष्ट्र का दुर्भाग्य था कि श्री दीनदयाल उपाध्याय, जिनको मैंने भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष पद का भार ३० दिसम्बर, १९६७ में कालीकट में सौंपा था, की ११ फरवरी, १९६८ को रहस्यमय ढंग से हत्या कर दी गई। इसके बाद जनसंघ की बागडोर जनसंघ में घुसे कुछ ऐसे नेहरूवादियों के हाथ आ गई जिनकी जनसंघ की मूल विचारधारा में कोई आस्था न थी। उन्होंने जनसंघ को अन्दर से खत्म करने के लिए कम्युनिस्टों और सत्तारूढ़ दल का खेल खेलना शुरू किया। अब यह एक खुला रहस्य है कि इन लोगों ने ही १९७३ में शासक वर्ग को प्रसन्न करने और अपने मार्ग का रोड़ा हटाने के लिए मुझे जनसंघ से निकालने का षड्यन्त्र किया था।

उसके बाद १९७७ में इन लोगों द्वारा जनसंघ के जनता पार्टी में मिलने और फिर १९८० में जनता पार्टी को छोड़कर उसी झंडे और विचारधारा वाली एक नई सेक्यूलरवादी, समाजवादी पार्टी — भारतीय जनता पार्टी बनाना अब पुरानी कहानी हो चुकी है।

यह सर्वविदित है कि इन लोगों ने जनता पार्टी को राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के साथ सम्बन्ध के प्रश्न पर छोड़ा था। संघ एक जीवन्त संगठन है, कोई मिट्टी का ढेला या लकड़ी का टुकड़ा नहीं। इसकी विचारधारा का सार हिन्दू राष्ट्र के साथ प्रतिबद्धता है। संघ की आस्था हिन्दुत्व में है और यह हिन्दुस्तान को सिद्धान्त और व्यवहार में हिन्दू राष्ट्र बनाना चाहता है। इसलिए भारतीय जनता पार्टी वालों का हिन्दू राष्ट्र और हिन्दू राज्य का विरोध करना उनके दोगलेपन, अवसरवादिता और राजनीतिक अनैतिकता का ही परिचायक है।

हिन्दू राज्य और हिन्दू राष्ट्र एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इन्हें एक-दूसरे से पृथक् नहीं किया जा सकता। हिन्दुस्तान हिन्दू राष्ट्र तभी रह सकता है जब यह हिन्दू राज्य घोषित हो, अन्यथा यह अधिक समय तक

हिन्दू राष्ट्र भी नहीं रह सकेगा। १९४७ से पूर्व संघ सारे हिन्दुस्तान को हिन्दू राष्ट्र मानता था। उस वर्ष विभाजन के फलस्वरूप भारत की ३०% धरती कटकर पाकिस्तान नाम से अलग इस्लामी राज्य बन गई। अब संघ अखंड भारत की ७०% भूमि को, जो अब भारत कहलाती है, हिन्दू राष्ट्र कहता है। परन्तु जैसे पूर्व अध्यायों में बताया जा चुका है इसके भी इस्लामीकरण के योजनाबद्ध प्रयत्न चल रहे हैं। इसलिए कम-से-कम खंडित हिन्दुस्तान को हिन्दू राष्ट्र बनाए रखने के लिए इसे हिन्दू राज्य बनाना अनिवार्य हो गया है।

यह समाधान का विषय है कि संघ के बहुत-से लोग हिन्दू राष्ट्र और हिन्दू राज्य के बीच इस अकाट्य सम्बन्ध को मानने लगे हैं। परन्तु भारतीय जनता पार्टी तो भारत को हिन्दू राष्ट्र मानने को तैयार नहीं। तो भी संघ अभी तक भा० ज० पा० के साथ जुड़ा हुआ है। वास्तव में भा० ज० पा० का आधार ही संघ के स्वयंसेवक और जनसाधारण में फैली यह धारणा है कि भा० ज० पा० संघ का ही उपांग है। इस कारण संघ का भी वैचारिक पक्ष ढीला होता जा रहा है और इसके नेतृत्व की विश्वसनीयता भी कम होने लगी है। यह समाधान का विषय है कि संघ के कुछ नेता इस वास्तविकता को समझने लग पड़े हैं।

हालात का तकाजा और समय की आवश्यकता है कि भारत को हिन्दू राष्ट्र मानने वाले सभी लोग भारत को हिन्दू राज्य घोषित करवाने के लिए प्रभावी राजनीतिक संगठन और आन्दोलन खड़ा करने के लिए आगे बढ़ें। अब यह पूरी तरह स्पष्ट हो चुका है कि भारतीय जनता पार्टी यह भूमिका नहीं निभा सकती। वास्तव में यह इस प्रकार के हिन्दुत्ववादी संगठन और आन्दोलन के उदय में सबसे बड़ी रुकावट बन गई है। यदि संघ भा० ज० पा० के साथ जुड़ा रहा तो इस मामले में इसको भी दोषमुक्त नहीं किया जायेगा। जनमानस संघ को एक हिन्दुत्ववादी संगठन मानता है परन्तु राजनीतिक क्षेत्र में इसके द्वारा भा० ज० पा० के साथ नत्थी हो जाने के कारण यह भी हिन्दू राष्ट्र और हिन्दू राज्य के रास्ते में जाने या अनजाने रुकावट बन रहा है। परन्तु यह भी स्पष्ट हो रहा है कि भा० ज० पा० के नेहरूवादी सेक्यूलरवादी तत्त्वों और संघ में से आए इसके हिन्दू राष्ट्रवादी तत्त्वों का

बेमेल विवाह अधिक देर तक नहीं निभ सकता। या तो भा० ज० पा० को नेहरूवादियों से पिंड छुड़ाकर जनसंघ के रास्ते पर आना होगा या संघ के लोगों को भा० ज० पा० से अलग होकर पुन जनसंघ का साथ देकर इसे हिन्दुस्तान को हिन्दू राज्य बनाने के आन्दोलन का सबल माध्यम बनने के लिए सहयोग देना होगा।

इस प्रकार के हिन्दुत्ववादी राजनीतिक संगठन और आंदोलन के निर्माण को अब अधिक देर तक टाला नहीं जा सकता। भारत के अन्दर और बाहर बनने वाली परिस्थितियाँ भारत को हिन्दू राज्य बनाने के लिए कटिबद्ध आन्दोलन खड़ा करने के लिय बाध्य कर रही हैं। हिन्दुस्तान की एकता, सुरक्षा और हिन्दू पहचान की रक्षा के लिये ऐसे दल का उदय अनिवार्य हो गया है।

इस प्रकार के संगठन और आन्दोलन को हिन्दू जनता का व्यापक समर्थन मिलेगा। हिन्दू जनमानस तैयार है। इसे ठीक दिशा देने वाला नेतृत्व और संगठन चाहिये। ऐसा हिन्दुत्ववादी संगठन थोड़े ही समय में राष्ट्र में छा सकता है और देश के ८५% हिन्दुओं में से ४०-४५% मत इकट्ठा करके देश की राजनीति को हिन्दुत्ववादी दिशा दे सकता है और इसे हिन्दू राज्य घोषित करने का मार्ग प्रशस्त कर सकता है। इस मामले में आन्ध्रप्रदेश में तेलगुदेशम् दल ने राह दिखाई है। यह वहाँ पर ४०-४५% हिन्दू मतों को अपने पीछे इकट्ठा करके नेहरूवादी मुस्लिम परस्त कांग्रेस को पछाड़कर आन्ध्र प्रदेश विधान सभा में दो-तिहाई बहुमत प्राप्त कर सका है। एन० टी० रामराव ने आन्ध्रप्रदेश में हिन्दू राज्य का सूत्रपात कर दिया है। भारत के निकट के कुछ और देशों का अनुभव भी इसी तथ्य की ओर इंगित करता है। मॉरिशस में हिन्दू केवल ५३% के लगभग हैं। वहाँ पर भारतीय उद्गम के मुसलमान १६% और करोयल ईसाई २७% के लगभग हैं। उन्होंने मिलकर बाहरी सहायता के बल पर मॉरिशस की सत्ता हथियाने का योजनाबद्ध प्रयत्न किया परन्तु हिन्दू नेतृत्व ने सूझ-बूझ का परिचय दिया और इकट्ठे मिलकर ४०% के लगभग हिन्दू मतों को अपने पीछे इकट्ठा कर लिया। फलस्वरूप २१ अगस्त, १९८३ को हुए निर्णायक आम चुनाव में वे मॉरिशस की राजसत्ता फिर अपने हाथ में लेने में सफल हो गए

हैं। मलयेशिया में मुसलमान ५१% के लगभग हैं परन्तु वे वहाँ पर केवल राज ही नहीं कर रहे अपितु मलयेशिया को इस्लामी देश भी घोषित कर चुके हैं। इसी प्रकार श्रीलंका में बौद्ध ६९% हैं परन्तु वहाँ का सत्तारूढ़ दल ४०-४५% बौद्ध मतों को अपने पीछे इकट्ठा करके लोकतान्त्रिक ढंग से श्रीलंका को बौद्ध राज्य घोषित कर चुका है। इसलिए हिन्दुस्तान में ४०-४५% हिन्दू मतों को इकट्ठा करना कोई अनहोनी या असम्भव बात नहीं है। यदि इतने हिन्दू मत इकट्ठे हो जाएँ तो बहुत-से मुसलमान भी अपना सहयोग बिना माँगे ही इसे देने लगेंगे। हिन्दुस्तान में इन अल्पमतों का अनुपात मलयेशिया, श्रीलंका, मॉरिशस और संसार के बहुत से अन्य देशों में अल्पमतों के अनुपात से बहुत कम है।

एक बार इस प्रकार का हिन्दुत्ववादी संगठन खड़ा हो जाये तो यह शीघ्र ही सभी हिन्दुत्ववादी तत्त्वों को जो इस समय विभिन्न संगठनों में बिखरे हुए हैं, अपनी ओर खींचकर समेट लेगा और भारत को हिन्दू राज्य बनाने के लिए सफल आन्दोलन चला सकेगा। यह कहना कि हिन्दू मत कभी इकट्ठे नहीं हुए और न हो सकते हैं, गलत और निराधार है। भारत का इतिहास इस बात का साक्षी है कि जब कभी हिन्दुस्तान की संस्कृति और हिन्दू पहचान पर संकट आया, हिन्दुओं ने मिलकर उसका प्रतिकार किया। इस काम में तथाकथित छोटी जातियों और पिछड़े वर्गों की भूमिका सदा अति महत्त्वपूर्ण और उत्साहजनक रही है।

यह दुर्भाग्य का विषय है कि जिस प्रकार अखंड भारत में गांधीजी ने यह कहकर कि मुसलमानों के सहयोग के बिना स्वतन्त्रता नहीं मिल सकती, हिन्दुओं का मनोबल तोड़ा और उनमें हीन भावना पैदा की, इस प्रकार की भाषा भा० ज० पा० के लोग खंडित भारत में बोलने लगे हैं। ये गांधी के नये मानसपुत्र बनकर हिन्दुओं को धोखा दे रहे हैं कि चुनाव का गणित यह माँग करता है कि हर कीमत पर मुसलमानों के मत प्राप्त किये जायं। इसलिए वे मुस्लिम तुष्टीकरण के मामले में कांग्रेस को भी मात दे रहे हैं। वे इस बात को भूलते हैं कि प्रथम तो मुस्लिम मत बहुत कम हलकों में प्रभावी हैं। सारे हिन्दुस्तान में लोकसभा के ऐसे हलके, जिनमें मुस्लिम मत-दाताओं का बहुमत हो, १५ से भी कम हैं। और जहाँ मुस्लिम मतदाता

मजहब के नाम पर इकट्ठे होते हैं, वहाँ उसकी प्रतिक्रिया के रूप में राष्ट्रवादियों को इकट्ठा करना और भी सुगम हो सकता है।

दूसरे, जिन लोगों को उन्हें साम्प्रदायिक और प्रतिक्रियावादी कहना दलगत राजनीति की दृष्टि से उपयुक्त लगता है वे उन्हें ऐसा कहेंगे ही, भले वे सेक्यूलर और प्रगतिवादी कहलाने के लिए कुछ भी कर लें। महत्त्व इस बात का नहीं कि दूसरे उन्हें क्या कहते हैं, बल्कि इस बात का है कि वे अपने आपको क्या समझते हैं? वास्तविकता यह है कि भा० ज० पा० में गए बहुत-से पुराने संघियों और जनसंघियों में उसी प्रकार की हीन भावना व्याप्त हो चुकी है जो गांधीजी में थी। सम्भवतः इसीलिए वे पचास वर्ष तक गांधीजी की आलोचना करने के बाद अब उनके प्रशंसक बन गए हैं। वे अपनी हीन भावना और पस्त मनोबल के कारण दूसरे हिन्दुओं का मनोबल भी गिरा रहे हैं। इसलिए इन लोगों को सीधे रास्ते पर लाना, या बेनकाब करना हिन्दू राष्ट्र और हिन्दू राज्य के पक्षधर लोगों का प्रथम कर्तव्य बन गया है।

एक बार इस प्रकार का प्रभावी हिन्दुत्ववादी संगठन खड़ा हो जाय तो हिन्दुस्तान को संवैधानिक ढंग से भी हिन्दू राज्य घोषित करने में कोई कठिनाई न होगी। संविधान पवित्र वेद नहीं जिसमें बदल नहीं किया जा सकता। गत बत्तीस वर्षों में इसमें चालीस से अधिक संशोधन किये जा चुके हैं। वैसे भी हिन्दुस्तान विस्फोट की स्थिति की ओर बढ़ रहा है। उस विस्फोट में वर्तमान संविधान भी हवा में उड़ जाए तो अचम्भा नहीं होना चाहिये।

उस नेतृत्व और उस राज्य पद्धति को, जिसने खंडित देश में छत्तीस वर्षों में १९४७ के पूर्व की स्थिति फिर पैदा कर दी है, बने रहने का कोई अधिकार नहीं। संसार के किसी और देश में इस प्रकार की पुनरावृत्ति की कल्पना भी नहीं की जा सकती। ऐसे नेतृत्व और ऐसे समाज को जिसमें न इतिहास से कुछ सीखने की भावना हो, और न राजनीतिक चेतना हो, जिसमें जीने की नैसर्गिक इच्छाशक्ति भी समाप्त प्रायः हो गई हो, उसे इस प्रतिद्वन्द्वात्मक जगत्, जिसमें मत्स्य न्याय आज भी चलता है, जीने का कोई अधिकार नहीं।

अतः हिन्दुस्तान को हिन्दू राज्य घोषित करने का प्रश्न केवल एक बौद्धिक विषय नहीं अपितु एक व्यावहारिक आवश्यकता है। एक विशिष्ट संस्कृति और चरित्र वाले भारत देश का भविष्य इसके साथ जुड़ा हुआ है। हिन्दुस्तान ने अपने गौरवपूर्ण अतीत में संसार को सभ्यता और मानवता का पाठ पढ़ाया था। आने वाले दिनों में यह उससे भी अधिक गौरवपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है। युद्धरत और साम्प्रदायिक आधार पर मार-काट से ग्रस्त संसार को भारत के सर्वधर्म पंथ समभाव के आधार पर विभिन्न विचार और पूजा-पद्धति वालों के शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व के सन्देश की पहले से भी अधिक आवश्यकता है। इसलिए हिन्दुस्तान का हिन्दू राज्य के रूप में उभरना एक ऐतिहासिक आवश्यकता बन चुका है। यही इस आशा का आधार है कि यह उद्देश्य शीघ्र ही पूरा होगा। इस दृष्टि से आशा की एक किरण यह भी है कि विदेश में रहने वाले हिन्दुओं ने हिन्दुस्तान को हिन्दू राज्य घोषित करने की माँग को गम्भीरता से उठाना शुरू कर दिया है। परिशिष्ट के रूप में दिये गए अमेरिका के भारतवासियों द्वारा भारत की प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी को दिया गया आवेदन इस दृष्टि से अति महत्त्वपूर्ण है।

प्रधानमन्त्री को पत्र

प्रो० बलराज मधोक
अध्यक्ष, भारतीय जनसंघ

जे-३६४, शंकर रोड
नई दिल्ली-११००६०
१ अगस्त, १९८१

माननीया श्रीमती गांधी,

हम लोग १५ अगस्त को अपने देश की ब्रिटिश शासन से मुक्ति की ३४वीं वर्षगाँठ मनायेंगे। यह उन लोगों को स्मरण करने का दिन है जिनके तप, त्याग और बलिदानों के कारण हमें स्वतन्त्रता मिली। आज के दिन हमें पंजाब, सिंध, पख्तूनिस्तान, बलूचिस्तान और पूर्वी बंगाल के उन असंख्य लोगों को भी याद करना चाहिए जो देश विभाजन के कारण मारे गये या अब भी तिल-तिल कर मर रहे हैं। हमने देश के इन भागों को १४ अगस्त, १९४७ को मुस्लिम लीग को सौंप दिया ताकि वह वहाँ पाकिस्तान का इस्लामी राज्य कायम कर सके। इन क्षेत्रों में राष्ट्रवादियों ने अपना सर्वस्व लुटा दिया ताकि देश का शेष भाग मुक्त हो सके। अतः उनके बलिदान को भी याद रखना चाहिए। उनमें से एक करोड़ से अधिक बन्धु आज भी बाँगला देश में जीवन और मृत्यु के बीच झूल रहे हैं। स्वतन्त्र भारत की सरकार और जनता का उनके प्रति भी कुछ कर्तव्य है। बाँगला देश से आये हुए लगभग दो करोड़ हिन्दू, बौद्ध शरणार्थियों और डेढ़ करोड़ के लगभग वहाँ बचे हिन्दुओं को दस लाख फिलस्तीनी मुस्लिम शरणार्थियों, जिनकी पीठ पर अरब सहित बीसियों मुसलमान देशों का अथाह धन है, की अपेक्षा हमारी सहायता और सहानुभूति का बेहतर दावा और अधिकार है क्योंकि ये करोड़ों हिन्दू केवलमात्र हिन्दुस्तान की ओर ही देख सकते हैं।

आज इस बात की आवश्यकता है कि भारत सरकार बाँगला देश मुक्ति संगठन (Bangla Liberation Organisation—B.L.O.)—की बाँगला देश से भूमि लेकर वहाँ अपना होमलैंड बनाने की माँग का उसी प्रकार समर्थन करे जैसा वह फिलिस्तीनी मुक्ति संगठन (P. L. O.) द्वारा उठाई गयी ऐसी ही माँग का समर्थन कर रही है।

गत ३४ वर्षों में हमने अनेक क्षेत्रों में बहुत प्रगति की है। खास तौर से हमारे वैज्ञानिकों, सैनिकों और किसानों की उपलब्धियाँ सराहनीय हैं। परन्तु एक क्षेत्र ऐसा है जिसमें हम बुरी तरह विफल रहे हैं, वह है राष्ट्र-निर्माण का क्षेत्र।

विभाजन का तर्कसंगत परिणाम

हमारी मातृभूमि का विभाजन मुसलमानों के कारण हुआ था क्योंकि उन्होंने हमारे राष्ट्र का अंग बनने से इन्कार कर दिया था। वे भारतीय राष्ट्रवाद से अलग मुस्लिम राष्ट्रवाद का राग अलापते रहे। यह उनके मज़हब के बुनियादी सिद्धान्तों के अनुकूल ही था।

भारत के नेताओं ने मूक भाव से विभाजन को स्वीकार करके देश की लगभग समस्त मुस्लिम आबादी द्वारा समर्थित मुस्लिम लीग के द्वि-राष्ट्र सिद्धान्त (Two National Theory) **को स्वीकार कर लिया था।** १९४६ के नाजुक आम चुनाव में ९३ प्रतिशत मुसलमानों ने मुस्लिम लीग के द्विराष्ट्र-सिद्धान्त और पाकिस्तान के पक्ष में मत दिया था। जिन ७ प्रतिशत मुसलमानों ने मुस्लिम लीग के विरोध में मत दिया था—वे मुख्यतः सीमा-प्रान्त, पश्चिमी पंजाब और सिन्ध के थे। इस प्रकार आज के **खण्डित भारत के लगभत शत-प्रतिशत मुसलमानों ने पाकिस्तान के पक्ष में ही मत दिया था।**

सन् १९४६ में भी मुस्लिम कानून और मुस्लिम इतिहास के बारे में थोड़ा-बहुत ज्ञान रखने वाले इस बात को बखूबी जानते थे कि एक बार पाकिस्तान बन जाने के बाद वहाँ कोई हिन्दू शान्ति और सम्मानपूर्वक नहीं रह सकेगा। इसीलिए डा० भीमराव अम्बेदकर ने विभाजन के आवश्यक परिणामस्वरूप दोनों खण्डों की हिन्दू और मुस्लिम आबादी के पूर्ण

विनिमय की बात कही थी। विभाजन का दूसरा तर्कसंगत परिणाम यह था कि शेष भारत को हिन्दू राज्य घोषित किया जाता। हिन्दू राज्य इस्लामी या क्रिश्चियन राज्यों की तरह कभी साम्प्रदायिक राज्य नहीं हो सकता, क्योंकि हिन्दुत्व के राष्ट्रमण्डल (कामनवैल्थ) के जितने भी सम्प्रदाय हैं, फिर वे चाहे शैव, वैष्णव, बौद्ध, जैन, सिख आदि कोई भी हों, सर्वधर्म-समभाव में आस्था रखते हैं। यहाँ तक कि जब इस्लामी राज्य की मतान्धता ने भारत में मुसीबत बरपा कर रखी थी, तब भी छत्रपति शिवाजी और महाराजा रणजीतसिंह द्वारा महाराष्ट्र और पंजाब में स्थापित हिन्दू राज्य असाम्प्रदायिक राज्य थे। दुर्भाग्यवश हमने विभाजन तो स्वीकार किया, पर उसके तर्कसंगत फलितार्थ को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। उससे भी बुरी बात यह हुई कि शेष भारत में बचे मुसलमान भाइयों का हम भारतीयकरण भी नहीं कर सके, या इसकी हमने आवश्यकता भी नहीं समझी।

खण्डित भारत के हिन्दू-बहुल होने के कारण ही मातृभूमि के खण्डित करने वालों को न केवल सहन किया गया, बल्कि उन्हें समानता से भी ऊँचा व्यवहार दिया गया। यह इस तथ्य से स्पष्ट है कि गत ३४ वर्षों में खण्डित भारत में उनकी आबादी चौगुनी हो गयी है। १९४७ में उनकी आबादी केवल ढाई करोड़ थी। १९६१ की जनसंख्या में उनकी आबादी ४ करोड़ हो गई और १९७१ में ६ करोड़ के पास पहुँच गयी। १९८१ में उनकी कितनी है, इसके आँकड़े अभी प्रकाशित नहीं हुए। मेरी जानकारी के अनुसार तो इस संख्या को योजनाबद्ध ढंग से खूब बढ़ा-चढ़ाकर लिखा गया है। सम्भवतः उनकी संख्या अब नौ करोड़ के आसपास होगी। इसके मुकाबले में उन हिन्दुओं की संख्या की तुलना कीजिये जो पाकिस्तान में रह गये हैं। वे भी लगभग ढाई करोड़ ही थे। परन्तु उनमें से अधिकांश मारे गये, या जबरन मुसलमान बना दिये गये, या पाकिस्तान से धकेल दिये गये। जहाँ १९८१ में उनकी आबादी आठ करोड़ के लगभग होनी चाहिये थी, वहाँ उल्टे घटकर अब वह १ करोड़ के लगभग रह गई है।

ये १ करोड़ भी अपने दिन गिन रहे हैं। पश्चिमी-बंगाल के एक मंत्री महोदय ने हाल में ही मुझे बताया था कि उन्हें या तो मार दिया ज

या उन्हें मुसलमान बना दिया जायेगा। चटगाँव के पार्वत्य प्रदेश(हिलट्रैक्स) में, जो गलती से १९४७ में पाकिस्तान को दे दिया गया, बौद्ध आबादी के साथ जो कुछ हो रहा है, उससे भी यही प्रमाणित होता है।

भारत को इस्लामी राज्य में बदलने की योजना

विभाजन के समय लाहौर में एक नारा अक्सर सुना जाता था— 'हँस के लिया है पाकिस्तान, लड़ के लेंगे हिन्दुस्तान।' पाकिस्तान के शासक और वहाँ की जनता और खण्डित भारत के मुसलमान पिछले वर्षों में इस नारे को क्रियान्वित करने का योजनाबद्ध ढंग से कार्य करते रहे हैं। **इस्लाम के अनुसार कोई भी मुसलमान अमुस्लिम राज्य का वफादार नहीं हो सकता।** इस्लाम के सर्वोच्च नेता मौलाना मौदूदी ने १९५४ में पाकिस्तान सरकार द्वारा स्थापित मुनीर आयोग के समक्ष यह बात एकदम साफ-साफ कह दी थी। जस्टिस मुनीर ने उनसे पूछा था कि गैर-इस्लामी राज्य में कोई मुसलमान वफ़ादार नागरिक बनकर रह सकता या नहीं? तब मौलाना मौदूदी ने कहा था कि **कोई भी मुसलमान गैर-मुस्लिम राज्य के प्रति वफादार नहीं रह सकता।** जस्टिस मुनीर ने खास तौर से पूछा था कि क्या भारत में रहने वाला मुसलमान भारतीय शासन के प्रति वफादार हो सकता है? इस पर मौलाना ने जोर देकर कहा था—नहीं।

मौलाना मौदूदी का यह बयान भारतीय समाचार-पत्रों में भी बड़े पैमाने पर छपा था। पर आज तक किसी मुसलमान नेता ने इसका प्रतिवाद नहीं किया है। श्री रफी अहमद किदवई, श्री मुहम्मद करीम छागला और हवलदार अब्दुल हमीद जैसे माननीय अपवादों को छोड़कर अधिकांश मुस्लिम नेताओं ने मौलाना के बयान को अपने अमल से सही साबित किया है। अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, उर्दू और पृथक् सिविल कोड के सम्बन्ध में हाल में जो पृथकतावादी माँगें की जा रही हैं वे वैसी ही माँगों के समान हमें चेतावनी दे रही हैं जैसी १९४७ से पहले की जाती थीं। उनके कुछ नेता तो खुले आम यह माँग दुहरा रहे हैं कि भारत के मुसलमान एक पृथक् राष्ट्र हैं। इस सम्बन्ध में १९४७, १९६५ और १९७१ की लड़ाइयों का अनुभव भी आंख खोल देने वाला है।

धर्मान्तरण का राजनीतिक परिणाम

देश के विभिन्न भागों में अरब देशों के धन से पिछड़ी जातियों के हिन्दुओं के सामूहिक धर्मपरिवर्तन को, मीनाक्षीपुरम् जिसका एक उदाहरण है, इसी परिप्रेक्ष्य में देखने से उसकी गम्भीरता समझ में आ सकती है। इस इस्लामीकरण को केवल धार्मिक मामला समझकर यह कहना कि राज्य का इससे कोई लेना-देना नहीं, एक तरह से आत्म-प्रवंचना की ओर जाना है। ऐसे धर्मान्तरणों का व्यापक राजनीतिक असर होता है। **जब कोई भारतीय मुसलमान बन जाता है, चाहे किसी भी कारण से तो उसकी वफादारियों के क्रम में अन्तर आ जाता है।** इस्लाम मिल्लत (संसार-भर की मुस्लिम बिरादरी) और मुस्लिम राज्यों के प्रति, खास तौर से पाकिस्तान और बाँगला देश के प्रति वफादारी भारत के प्रति वफादारी से बाजी मार ले जाती है। **वह भारतीय राष्ट्रवाद के स्थान पर इस्लामी राष्ट्रवाद का पोषक बन जाता है।**

वास्तव में, ये धर्मपरिवर्तन अरब देशों के धन और पाकिस्तान तथा मित्र राष्ट्रों के बल पर सारे भारत को एक इस्लामी राज्य में परिणत करने की गहरी और बड़ी साजिश का अंग है। इसलिए इस प्रकार के धर्मपरिवर्तन का धर्मनिरपेक्षता के नाम पर या हमारे संविधान द्वारा दी गयी धार्मिक स्वतन्त्रता के नाम पर समर्थन नहीं किया जा सकता। ऐसी स्वतन्त्रता केवल उन्हीं धर्मों पर लागू होती है जो धर्मस्वातंत्र्य या सर्वधर्म-समभाव में विश्वास करते हैं। इस्लाम जैसे सेमेटिक मजहब की धर्मनिरपेक्षता और सर्वधर्म-समभाव से कोई संगति नहीं है। इसलिए यह स्वतन्त्रता केवल उन्हीं धर्मों या सम्प्रदायों को ही दी जा सकती है जो सर्वधर्म समभाव के प्रति प्रतिबद्ध हैं। **सिद्धान्त और व्यवहार में सर्वधर्म समभाव से घृणा करने वालों और इस्लाम के पैगम्बर और इस्लाम के धर्मग्रन्थ में विश्वास न करने वाले अन्य धर्मावलम्बियों के पूजा-स्थलों को अपवित्र करने या तोड़ देने को पुण्य मानने वालों को धर्म-स्वातंत्र्य के नाम पर छूट देना खतरनाक आत्मघाती है।**

इस समय पाकिस्तान जिस प्रकार युद्ध की तैयारी कर रहा है, उसे

देखते हुए इस्लामीकरण की लहर का राजनीतिक पहलू ग्रौर उजागर हो जाता है। जब पाकिस्तान भारत के विरुद्ध जिहाद का नारा लगाता है, तब इस्लाम अपने अनुयायियों से क्या आशा करता है, इसे हमारी सेना के बहादुर जवान बखूबी समझते हैं क्योंकि युद्ध का भार उन्हीं जवानों पर पड़ता है। यदि भारत की जनता ग्रौर सरकार १९४७ में अपनी मातृभूमि के खण्डित होने के अनुभव ग्रौर पृष्ठभूमि पर ध्यान नहीं देती ग्रौर इतिहास से शिक्षा नहीं लेती, तो जहाँ यह राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए घातक होगा वहीं अपने देश के जवानों के प्रति गद्दारी भी होगी।

ग्राज हमारे देश की एकता ग्रौर सुरक्षा को ही खतरा नहीं है, बल्कि उसके अस्तित्व को भी खतरा है। हमें धर्मनिरपेक्षता से अधिक राष्ट्र के अस्तित्व ग्रौर सुरक्षा को महत्त्व देना होगा। वैसे भी धर्मनिरपेक्षता एक नकारात्मक विचार है जिसका भारत के संदर्भ में कोई तुक नहीं है, क्योंकि भारत ने कभी साम्प्रदायिक राज्य में विश्वास नहीं किया। हम हमेशा सर्वधर्म-समभाव में विश्वास करते रहे—जो एक सकारात्मक विचार है ग्रौर भारतीय परिस्थितियों तथा उसकी मानसिक प्रकृति के अनुकूल है।

जो घटना-चक्र घटित हो रहा है, उसका यह तकाजा है कि हम धर्म-निरपेक्षता की धुंध से अपने मन को साफ कर लें ग्रौर वर्गगत या व्यक्तिगत हितों की परवाह न करके राष्ट्रीय हितों को प्रमुखता दें। इसीलिए अपनी राष्ट्रीयता के मुख्य स्रोतों पर पुनर्विचार की ग्रावश्यकता है ग्रौर इस बात की भी ग्रावश्यकता है कि भारत के इस्लाम मतानुयायियों के सम्बन्ध में जो १९४७ में पाकिस्तान के रूप में अपना हिस्सा पा चुके हैं, तथ्यों की रोशनी में यथार्थवादी ढंग से सोचा जाय। चित्त भी उनकी, पट भी उनकी—यह नहीं हो सकता। उन्होंने पाकिस्तान की माँग की थी, वह उन्हें मिल गया। हमारा देश कोई सराय या धर्मशाला नहीं है। पाकिस्तान के पक्ष में मत देकर भी, जिन्होंने भारत में रहना स्वीकार किया था उन्हें राष्ट्रीय धारा में सम्मिलित होना चाहिए ग्रौर अपनी सब पृथकतावादी माँगों को छोड़कर सर्वधर्म-समभाव को सिद्धान्त ग्रौर व्यवहार के रूप में अपनाना चाहिए। जो इस्लाम की बुनियादी बातों की वफादारी पर जिद करते हैं, उनकी धर्मस्वातन्त्र्य या भारत के प्रति वफादारी संदिग्ध

है। सर्वधर्म-समभाव जिन परिस्थितियों में पनप सकता है, उन्हें नष्ट नहीं होने दिया जा सकता।

वक्त की जरूरत

वक्त की दो जरूरतें हैं (१) भारत को हिन्दू राज्य घोषित किया जाय। यह बात १९४७ में ही हो जानी चाहिए थी। पर सही कदम में देर भी क्षम्य है। मौजूदा हालत में **भारत हिन्दू राज्य बनकर ही टिक सकता है, अन्यथा यह इस्लामी राज्य में परिणत हो जायेगा।** वर्तमान स्थिति बहुत देर तक नहीं चल सकती।

(२) जो सर्वधर्म-समभाव में विश्वास नहीं करते, उन सेमेटिक धर्मों (मतों) में धर्मान्तरण पर कानूनी रोक लगायी जाय।

इन सुझावों से किसी को चौंकने की जरूरत नहीं है। ये सुझाव जहाँ बुद्धिसंगत और यथार्थ पर आधारित हैं, वहाँ हमारे राष्ट्रीय हितों के भी अनुकूल हैं। इस्लाम का गत १४०० वर्ष का इतिहास और हमारे देश में उसके अनुयायियों की गतिविधियाँ इन सुझावों की युक्तियुक्तता सिद्ध करती हैं। लेबनान, साइप्रस, मौरीतानिया, नाइजीरिया, थाईलैण्ड, फिलिपाइन्स आदि अन्य देशों में जहाँ मुसलमान अल्पसंख्यक हैं और सत्ता में नहीं हैं, वहाँ वे अन्य मतावलम्बियों के साथ सह-अस्तित्व की भावना से रहने को तैयार नहीं। जब तक ऐसे देशों के किसी एक भाग को या समूचे देश को वे 'दारुल-इस्लाम' में तब्दील करने की परिस्थितियाँ नहीं पैदा कर देते, तबतक वहाँ वे बाहरी हमले से या आन्तरिक तोड़फोड़ से निरन्तर गड़बड़ी फैलाते रहते हैं। भारत के मुसलमानों ने १९४७ में एक इस्लामी राज्य— "दारुल-इस्लाम"— बनाने में कामयाबी हासिल कर ली, अब वे शेष भाग को पाकिस्तान तथा अन्य इस्लामी देशों की सहायता से इस्लामी-राज्य बनाना चाहते हैं। हमको यह सोचना है कि हम उनकी साजिश को सफल होने दें, या हिन्दुस्तान का युगों पुराना हिन्दुत्व वाला रूप सुरक्षित रखें।

पंडित जवाहरलाल नेहरू या श्रीमति इन्दिरा गांधी भारत के प्रधान-मन्त्री इसलिए बन सके क्योंकि यह हिन्दुओं का देश है। केवल हिन्दू ही

राष्ट्रपति या मुख्यमन्त्री के रूप में किसी मुसलमान को बर्दाश्त कर सकते हैं। आज महाराष्ट्र में एक मुसलमान मुख्यमन्त्री है, जबकि वहाँ मुसलमानों की आबादी केवल ५ प्रतिशत है। किन्तु किसी राज्य में मुसलमानों की आबादी बहुसंख्यक हो, तो वे कभी हिन्दू प्रधानमन्त्री या मुख्यमन्त्री को बर्दाश्त नहीं करेंगे। क्या आप जम्मू-कश्मीर में किसी हिन्दू को मुख्यमन्त्री बनाने की बात सोच भी सकते हैं, जबकि वहाँ हिन्दुओं की आबादी ३०% से भी अधिक है ?

भारत की बहुमूल्य संस्कृति या अपने राष्ट्रीय अस्तित्व की रक्षा के लिए ही भारत को हिन्दू राज्य घोषित करना अनिवार्य नहीं है, संसार के अन्य भागों में रहने वाले हिन्दू-मूल के लोगों की रक्षा के लिए भी यह आवश्यक है। ऐसे लाखों लोग भारत के बाहर रहते हैं। वे अपने आपको अनाथ समझते हैं। ऐसा कौन-सा देश है जिसकी ओर वे अपनत्व की भावना से देख सकें ? हिन्दुस्तान हिन्दू राज्य के रूप में उन सबके लिए 'आशा' का केन्द्र होगा।

हिन्दू राज्य के रूप में यह देश संसार भर में सर्वधर्म-समभाव के संदेश का प्रभावशाली ढंग से प्रचार कर सकता है। आज संसार को इस संदेश की आवश्यकता है। **संसार के अधिकांश देशों में मुसलमान और ईसाई, मुसलमान और यहूदी, सुन्नी और शिया आपस में कलह-रत हैं।** कोई दिन ऐसा नहीं जाता जब संसार के विभिन्न भागों में धर्म के नाम पर सैकड़ों ईसाई मुसलमानों द्वारा नहीं मारे जाते और सैकड़ों मुसलमान ईसाइयों द्वारा नहीं मारे जाते। वे भारत में भी यही खेल खेलना चाहते हैं। यहाँ उनका लक्ष्य हिन्दू हैं—जिनमें सिक्ख, जैन, बौद्ध, वैष्णव आदि अभी शामिल हैं। भारत में भी साम्प्रदायिक दंगे करवाना और निर्दोष लोगों को मार देना इन्हीं तत्त्वों का काम है।

भारत को हिन्दू राज्य घोषित करने का तात्कालिक लाभ तो यह होगा कि साम्प्रदायिक उपद्रव तुरन्त बन्द हो जायेंगे। हमारी प्रतिरक्षा सेना पर भी इसका बड़ा उत्साहवर्धक असर पड़ेगा। पाकिस्तान या उसके अन्य इस्लामी मित्रों से आने वाले खतरों का वे प्रभावशाली ढंग से दृढ़ता-पूर्वक सामना कर सकेंगे। इस पहलू का महत्त्व इसलिए भी अधिक है क्योंकि

भारत के पंचमांगियों तथा बाहर के शत्रुओं से देश की रक्षा का भार उन्हीं के कन्धों पर है।

भारत वास्तव में हिन्दू राष्ट्र है। भारत में मुसलमानों की आबादी का प्रतिशत उससे अधिक नहीं है जितना गैर-मुस्लिम देशों में मुस्लिम अल्पसंख्यकों का है, या मुस्लिम देशों में गैर-मुसलमानों का। फिर, किसी बड़े या छोटे अल्पसंख्यक वर्ग की मौजूदगी उन राष्ट्रों के बौद्ध या ईसाई या मुस्लिम राष्ट्र घोषित होने में बाधक नहीं होती। मलयेशिया जैसा देश भी इस्लामी राष्ट्र है जहाँ कि गैर-मुस्लिम अल्पसंख्यकों की आबादी ४६ प्रतिशत है। आजकल कम्युनिज़्म भी एक नया धर्म है। **सोवियत संघ, यूगोस्लाविया और बुलगारिया जैसे कम्युनिस्ट देशों में भारी तादाद में मुस्लिम अल्पसंख्यक हैं। परन्तु इससे उन देशों को कम्युनिस्ट राज्य घोषित करने में कोई रुकावट नहीं हुई।** इसलिए अल्पसंख्यकों के अधिकारों और कर्तव्यों की अच्छी तरह व्याख्या करके भारत को विधिवत हिन्दू राज्य घोषित करने में किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिए। भारत अलग-थलग होकर नहीं रह सकता, न ही अपने चारों ओर की परिस्थितियों से, खास तौर से पाकिस्तान और बाँगला देश की गतिविधियों से अप्रभावित रह सकता है। हिन्दू राज्य बन जाने से भारत का आदर बढ़ेगा और इसके अधिक विश्वसनीय मित्र भी बढ़ेंगे।

अतः इस समय भारत को हिन्दू राज्य घोषित करके ही एक राष्ट्र के रूप में इसका भविष्य सुरक्षित रखा जा सकता है, यह मेरा सुचिन्तित विचार है।

सभी महान नेताओं के जीवन में ऐसा समय आता है जब उन्हें ऐसे महत्त्वपूर्ण निर्णय करने पड़ते हैं जो उन राज्यों और देशों की किस्मत को बना या बिगाड़ सकते हैं। ऐसा ही समय आपके जीवन में आया है। आप कठिन और कटु निर्णय ले सकने की क्षमता रखती हैं। यही आपका सम्बल है। ऊपर दिये गये सुझावों के अनुरूप किया गया निर्णय हमारे राष्ट्र के भविष्य को सुरक्षित कर देगा और साथ ही अमर कर देगा।

हमारे देश के अन्दर और बाहर घटने वाले घटना-चक्र का मैंने जो मूल्यांकन किया है उसी ने मुझे आपको यह सुझाव देने के लिए बाध्य

किया है। मैं इसे अपना राष्ट्रीय कर्तव्य समझता हूँ कि जो बात मुझे देश-हित में अनिवार्य दीखती है उसे मैं आपके और देश की जनता के सामने रखूँ। मैंने हमेशा राष्ट्र के हित को अपने व्यक्तिगत अथवा दलगत हितों से ऊपर रखा है और इसके लिए मुझे कष्ट भी झेलने पड़े हैं। मैं आपको भी राष्ट्रवादी देशभक्त मानता हूँ। हम एक ही माता भारतमाता के भक्त हैं, इसलिए मुझे आशा और विश्वास है कि मैंने जो कुछ पत्र में लिखा है उस पर आप गम्भीरता से विचार करेंगी और ठीक समय पर ठीक कदम उठायेंगी।

सम्मान सहित,

भवदीय
बलराज मधोक

श्रीमती इन्दिरा गांधी,
प्रधानमन्त्री
न० १, सफदरजंग रोड,
नई दिल्ली-११

राष्ट्रपति को ज्ञापन

जे-३९४, शंकर रोड
नई दिल्ली
१२-८-८१

श्रद्धेय डॉ० संजीव रेड्डी,

हमारा देश इस समय बहुमुखी संकटों से ग्रस्त है। आर्थिक संकट तो बढ़ती हुई महंगाई, बेरोजगारी और मुद्रास्फीति के कारण सर्वविदित है। यह मूलतः गलत आर्थिक नीतियों और गलत नेतृत्व का परिणाम है जिन्होंने प्रकृति और परमात्मा द्वारा समृद्ध बनाये गये हमारे देश को निर्धनतम देशों की श्रेणी में ला दिया है।

इससे अधिक खतरनाक चरित्र का संकट है। इसके अनेक कारण हैं। परन्तु प्रमुख कारण देश के नये राजाओं (मन्त्रियों, सांसदों, विधायकों और सरकारी तथा विरोध पक्ष के राजनीतिज्ञों) द्वारा अपने चरित्र से जनता के सामने रखा जाने वाला गन्दा उदाहरण है।

इस चरित्र के संकट के कारण विश्वास का संकट खड़ा हो गया है। जनता का विश्वास राजनीतिज्ञों, राजनीतिक दलों और उनके नेताओं पर से उठ गया है। इतना ही नहीं अपितु उनकी आस्था संसदीय प्रणाली के राजतन्त्र से भी उठने लगी है।

इन सबसे अधिक बुरा और भयानक संकट अस्तित्व का संकट है। न केवल हमारी राष्ट्रीय एकता और सुरक्षा के लिए नये खतरे पैदा हो रहे हैं अपितु हमारे विशिष्ट राष्ट्रीय चरित्र और पहचान को भी नष्ट करने के सुनियोजित प्रयत्न हो रहे हैं। मैं आपका ध्यान विशेष रूप से इस संकट की ओर आकर्षित करना चाहता हूँ।

जैसाकि आप जानते हैं, हमारा देश १४ अगस्त, १९४७ को दो राष्ट्रों के सिद्धान्त के आधार पर विभाजित किया गया था। इसके बाद कटा-फटा हिन्दुस्तान १५ अगस्त को ब्रिटिश दासता से मुक्त हुआ। मातृभूमि का यह विभाजन राष्ट्रवादी हिन्दुस्तान को आजादी से मूल्य के रूप में मुस्लिम लीग को, जो उस समय लगभग भारत में रहने वाले सभी मुसलमानों का प्रतिनिधित्व करती थी, देना पड़ा था।

मुसलमानों के अलग राष्ट्र होने की परिकल्पना का आधार इस्लाम के 'मिल्लत' और 'कुफ्र' सम्बन्धी बुनियादी सिद्धान्त हैं। इस्लाम मानव जाति को दो भागों में बाँटता है। एक वह जो इसके पैगम्बर मुहम्मद और पुस्तक क़ुरान पर ईमान लाते हैं और दूसरे वह, जो ऐसा नहीं करते। पहले वर्ग को यह 'मिल्लत' की संज्ञा देता है और संसार के सभी मुसलमान इसके अन्तर्गत आते हैं। अन्य सबों को यह 'काफिर' कहता है। इन्हें या तो मुसलमान बनाना या खत्म करना मुसलमानों का मजहबी कर्तव्य है। **इस्लाम के अनुसार किसी मुसलमान के लिए सबसे बड़ा सम्मान 'ग़ाज़ी' बनना है और ग़ाज़ी वह होता है जिसने कम-से-कम एक गैर-मुसलमान का गला काटा हो।**

इस्लाम संसार की भूमि को भी दो भागों में बाँटता है। जिन देशों पर मुसलमानों का राज्य हो वे 'दार-उल-इस्लाम' कहलाते हैं और जिन पर उनका राज्य न होवे 'दार-उल-हरब' हैं। **मुसलमानों और मुस्लिम देशों का यह मजहबी कर्तव्य है कि आन्तरिक तोड़-फोड़ और बाहरी आक्रमण द्वारा अमुस्लिम देशों को दार-उल-इस्लाम में परिवर्तित किया जाय। इस हेतु लड़े गये युद्ध को 'जिहाद' यानी धर्म-युद्ध कहा जाता है।**

क्योंकि हिन्दुस्तान में रहने वाले अधिकांश मुसलमान तलवार के बल पर मुसलमान बनाये गये थे, इसलिए इस्लाम के इन सिद्धान्तों के विषय में उन्हें अधिक जानकारी नहीं थी। इसका योजनाबद्ध प्रचार तो पहले-पहल १९२० के बाद खिलाफत आन्दोलन के द्वारा हुआ। इन सिद्धान्तों की जानकारी का मुसलमानों पर क्या प्रभाव पड़ा इसका उदाहरण कवि इक़बाल के जीवन से मिलता है।

एक कश्मीरी ब्राह्मण परिवार के वंशज होने के कारण शुरू में इक़बाल

राष्ट्रवादी आन्दोलन की ओर सहज में ही झुके। उनके उस काल के लिखे इस विख्यात कवितांश में उनकी देशभक्ति और राष्ट्रभावना की झलक मिलती है—

"सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा,
हम बुलबुलें हैं इसकी यह गुलसितां हमारा।
मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना,
हिन्दी हैं हमवतन है हिन्दोस्तां हमारा॥"

परन्तु यही इक़बाल जब खिलाफत आन्दोलन के प्रभाव में आये और इस्लामी सिद्धान्तवाद के पोषक बने तब वे मुस्लिम राष्ट्रवाद और पान-इस्लामवाद के प्रवक्ता बन गये। राष्ट्रवादी से सम्प्रदायवादी और अलगाव-वादी मुस्लिम बनने का यह बदलाव उनकी खिलाफत आन्दोलन और उसके बाद की लिखी—

"मुस्लिम हैं हमवतन हैं सारा जहां हमारा।
चीन-ओ-अरब हमारे हिन्दोस्तां हमारा॥"

जैसी कविताओं में स्पष्ट झलकता है।

जब इस्लामी सिद्धान्तों के ज्ञान और उनमें आस्था से डॉ० इक़बाल जैसे पढ़े-लिखे मुसलमान में यह बदलाव आ सकता है तो साधारण मुसल-मानों के मानस पर उसके प्रभाव की कल्पना सहज ही की जा सकती है। देश में और विशेष रूप से आज के कटे-फटे हिन्दुस्तान में रहने वाले मुसल-मानों द्वारा १९४६ के निर्णायक चुनाव में मुस्लिम लीग और उसके द्वारा उठायी गयी 'पाकिस्तान' की माँग को पूर्ण समर्थन देना इसी का परिणाम था।

अंग्रेज शासकों को भारतीय मुसलमानों में सम्प्रदायिकता और अलगाव की भावना पैदा करने का दोष देना गलत है। उन्होंने इस भावना का (जो इस्लाम के सिद्धान्तों में निहित है) अपने साम्राज्यवादी हितों के लिए उसी प्रकार लाभ उठाने का प्रयत्न किया जिस प्रकार स्वतन्त्र भारत के अधिकांश राजनीतिक दल मुसलमानों की इस भावना का लाभ राष्ट्रहित की कीमत पर अपने दलगत स्वार्थों की पूर्ति के लिए उठाने का प्रयत्न करते रहे हैं।

पाकिस्तान भारतमाता के तन का वह टुकड़ा है जो भारत के मुसलमानों ने राष्ट्रवादी भारत से खंडित भारत की आजादी की कीमत के रूप में प्राप्त किया। इस प्रकार पाकिस्तान भारत की प्राकृतिक सीमाओं के अन्दर एक नया 'दार-उल-इस्लाम' बन गया। पाकिस्तान के निर्माता इससे सन्तुष्ट नहीं हुए। वे तो सारे हिन्दुस्तान को ही दार-उल-इस्लाम बनाना चाहते थे। उनके मन का यह भाव १९४७ में लाहौर में लगने वाले इस नारे से स्पष्ट झलकता था—

"हँस के लिया पाकिस्तान,
लड़ के लेंगे हिन्दुस्तान"

इस्लाम के प्रारम्भिक काल में मुस्लिम राज्यों में रहने वाले गैर-मुस्लिमों के सामने केवल एक विकल्प था—इस्लाम मज़हब में प्रवेश या मौत। बाद में अपवाद के रूप में उन्हें 'जज़िया' कर देकर 'ज़िम्मी' के रूप में (घटिया नागरिक के रूप में) जीवित रहने की अनुमति दी गई। शेख हमदानी द्वारा लिखी जमीरात-ए-उल-मुल्क के अनुसार खलीफ़ा उमर ने अमुस्लिमों को इस्लामी देशों में जीवित रहने के लिए निम्न शर्तें लगाई थीं—

१. वे नये मंदिर या पूजागृह नहीं बनायेंगे।
२. वे पुरानी इमारत का, जो तोड़ दी गई हैं, पुर्ननिर्माण नहीं करेंगे।
३. मुस्लिम यात्रियों को मन्दिरों में ठहराने पर कोई रोक नहीं होगी।
४. कोई मुसलमान किसी गैर-मुस्लिम के घर में तीन दिन तक रह सकता है और इस काल में उसके द्वारा किये गये किसी कृत्य को गुनाह नहीं माना जाय।
५. यदि कोई अमुस्लिम मुसलमान बनना चाहे तो उसे रोका नहीं जाय।
६. मुसलमानों का आदर किया जाय।
७. यदि अमुस्लिम कहीं सभा कर रहे हों तो मुसलमानों को उसमें आने से रोका न जाय।
८. वे मुसलमानों जैसे नाम न रखें।

९. वे मुसलमानों जैसे कपड़े न पहनें।
१०. वे काठी और लगाम वाले घोड़ों पर न चढ़ें।
११. वे अपने पास खड्ग और तीर-कमान न रखें।
१२. वे अंगूठी न पहनें।
१३. वे शराब का प्रयोग न करें, न बेचें।
१४. वे अपना पुराना लिबास न छोड़ें।
१५. वे अपनी रीति-रिवाजों और धर्म का प्रचार न करें।
१६. वे अपने घर मुसलमानों के घरों के निकट न बनायें।
१७. वे अपने मृतकों के शव मुसलमानों के कब्रिस्तानों के निकट न लायें।
१८. वे अपने मृतकों के लिए ऊँची आवाज़ में मातम न करें।
१९. वे मुस्लिम दास न खरीदें।
२०. वे न गुप्तचरी करें और न किसी गुप्तचर को किसी प्रकार की सहायता दें।

यदि अमुस्लिम इनमें से किसी भी शर्त को तोड़ेंगे तो मुसलमानों को उनकी जान और माल लेने का अधिकार होगा, जैसा कि उन काफिरों की जान और माल पर उनका अधिकार होता है जिनसे वे युद्ध कर रहे हों।

डा० भीमराव अम्बेदकर इस्लाम के इतिहास और कानून से भली प्रकार परिचित थे। इसलिए १९४६ में अपनी विचार-उद्बोधक 'थॉट्स ऑन पाकिस्तान' (Thoughts on Pakistan) पुस्तक लिखकर उन्होंने राष्ट्रवादियों को चेतावनी दी थी कि पाकिस्तान बन जाने के बाद किसी हिन्दू का उस इस्लामी राज्य में रहना सम्भव नहीं होगा। इसलिए उन्होंने हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में बनी मुसलमान और हिन्दू जनसंख्या की योजना बद्ध अदला-बदली का सुझाव दिया था। उनके अनुसार, द्वि-राष्ट्र के आधार पर विभाजन का यह तर्कसंगत फलितार्थ था। उन्होंने इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए पहले महायुद्ध के बाद तुर्की और यूनान के बीच मुस्लिम और ईसाई जनसंख्या की अदला-बदली के अनुभव के आधार पर एक विस्तृत योजना भी इसी पुस्तक में प्रस्तुत की थी।

१९४७ के विभाजन का दूसरा तर्कसंगत फलितार्थ १५ अगस्त को ही

खण्डित हिन्दुस्तान को हिन्दू राज्य घोषित करना था। सारा संसार खण्डित भारत को पाकिस्तान से विभक्त करने के लिए 'हिन्दू इण्डिया' कहता रहा है। हिन्दुस्तान हिन्दू राष्ट्र है और यह हिन्दू राज्य होना चाहिए। इस वास्तविकता को स्पष्ट रूप में स्वीकार करना चाहिए था।

हिन्दू धर्म कोई मजहब नहीं। स्वर्गीय राष्ट्रपति डॉ० राधाकृष्णन् के अनुसार यह भारतीय उद्गम के सभी पंथों का महासंघ है। यहाँ सब सर्व-धर्म-समभाव में आस्था रखते हैं। इसलिए हिन्दू राज्य यहूदी, ईसाई और इस्लामी राज्यों जैसा मज़हबी राज्य न कभी हुआ है और न हो सकता है। धार्मिक सहिष्णुता तथा विचार और मत की स्वतन्त्रता वैदिक, शैव, वैष्णव, बौद्ध, जैन, सिक्ख इत्यादि सभी भारतीय उद्गम के पन्थों का साँझा गुण है। इसीलिए उस काल में भी, जब मज़हब के नाम पर भारत में मार-काट और हिन्दुओं पर जघन्य अत्याचार हो रहे थे, महाराष्ट्र में छत्रपति शिवाजी और पंजाब में महाराजा रणजीतसिंह द्वारा संस्थापित हिन्दू राज्य 'सर्वधर्म-समभाव' (धार्मिक स्वतन्त्रता और समानता) के उज्ज्वल उदाहरण थे।

स्वतन्त्रता के ३४ वर्षों में भारत के अन्दर और इसके आसपास के देशों में चलने वाले घटना-चक्र ने विभाजन के इस तर्कसंगत परिणाम को स्वीकार करना और कार्य रूप देना भारत के एक स्वतन्त्र और विशिष्ट राष्ट्र के रूप में अस्तित्व के लिए अनिवार्य बना दिया है। इस काल में पाकिस्तान हम पर तीन युद्ध थोप चुका है और चौथे की तैयारी कर रहा है। जो मुसलमान विभाजन और मुस्लिम लीग का सामूहिक रूप से समर्थन करने के बाद भारत में ही टिके रहे उन्होंने कुछ अपवादों को छोड़कर अपने व्यवहार से यह सिद्ध कर दिया है कि वे न केवल भारत की राष्ट्रीय धारा में आने को तैयार नहीं अपितु वे योजनाबद्ध ढंग से पाकिस्तान के पाँचवें दस्ते का काम कर रहे हैं।

हिन्दुस्तान की सरकार और यहाँ की हिन्दू जनता की सहिष्णुता और मुसलमानों के प्रति उदार नीति के परिणामस्वरूप इन वर्षों में इस देश के मुसलमानों की संख्या बढ़कर लगभग चार गुणा हो गई है। इसके विपरीत बाँगला देश समेत पाकिस्तान में बची लगभग उतनी ही हिन्दुओं की जन-

संख्या का लगभग सर्वनाश कर दिया गया है। इतने बड़े पैमाने पर नर-संहार शायद ही कहीं हुआ हो।

१९७० के बाद मुसलमानों का रुख अधिकाधिक आक्रांत होता जा रहा है। इसका मूल कारण अरबों के पास से तेल का अथाह धन आना है जिसका प्रयोग वे पान-इस्लामवाद को शह देने के लिए कर रहे हैं। प्रो० अली अजराई, जो स्वयं मुसलमान हैं और एक अमरीकी विश्वविद्यालय में राजनीति के प्रोफेसर हैं, ने 'इण्टरनेशनल एफेयर' में छपे अपने हाल के लेख में इस घटना चक्र का विश्लेषण करते हुए लिखा है कि '१९७० के बाद तीन प्रकार के घटना चक्र ने मुस्लिम संसार के रुख से शेष संसार को प्रभावित किया है। उनमें से पहला है इस्लाम का राजनीतिकरण। दूसरा है इस्लाम का पैट्रोलीकरण। तीसरा है इस्लाम का आणवीकरण और इस्लामी (अणु) बम का निर्माण। पहले का सम्बन्ध इस्लामी संसार में बढ़ती हुई राजनीतिक चेतना से है। दूसरे का सम्बन्ध पैट्रोल जन्य धन शक्ति का मुस्लिम देशों के भाग्योदय में योग से है। तीसरे का सम्बन्ध युद्ध-क्षेत्र में इस्लाम की अणुशक्ति के सम्भावित प्रभाव से है।'

इस्लाम के इस राजनीतिकरण, पैट्रोलीकरण और आणवीकरण से हिन्दुस्तान के लिए बहुत गम्भीर परिणाम हो सकते हैं। पाकिस्तान संसार का सबसे शक्तिशाली इस्लामी राज्य है। अरबों द्वारा मिलने वाले धन के बल पर यह इस्लाम के आणवीकरण और इस्लामी अणुबम के निर्माण का सबसे बड़ा केन्द्र बन गया है। अमरीका और चीन इसे सैनिक सहायता दे रहे हैं। इन कारणों से इसके इस्लामी सिद्धान्तवादी सैनिक तानाशाही और उसके भारत स्थित पाँचवें दस्ते की अन्दरूनी तोड़-फोड़ और बाहरी आक्रमण के बल पर हिन्दुस्तान को भी इस्लामी राज्य बनाने की योजना को कार्यरूप देने की ओर अग्रसर किया है।

हिन्दू समाज के गरीब और पिछड़े वर्ग को अरबों से प्राप्त आर्थिक सहायता के बल पर सामूहिक रूप से मुसलमान बनाने के घटना चक्र को इस परिप्रेक्ष्य में देखना चाहिए और इसके राजनीतिक उद्देश्यों को समझना चाहिए। यह न केवल भारत की एकता और सुरक्षा के लिए एक नया और भयानक खतरा है अपितु भारत के एक राष्ट्र के रूप में अस्तित्व को भी

चुनौती है।

जब भारतीय पंथों का अनुयायी कोई हिन्दू मुसलमान बनता है तो वह अपनी पूजा विधि ही नहीं बदलता अपितु उसकी राष्ट्रीयता और आस्थायें भी बदल जाती हैं। उसकी आस्था का प्रथम केन्द्र इस्लामी 'मिल्लत' और मुस्लिम राज्य, विशेष रूप में पाकिस्तान, बन जाते हैं और हिन्दुस्तान के प्रति आस्था संदिग्ध हो जाती है।

इन हालात में हिन्दुस्तान के राष्ट्रपति होने के नाते देश के अन्दर और बाहर का यह घटना-चक्र आपके लिए विशेष चिन्ता का विषय है। दलगत स्वार्थ के कारण देश के राजनीतिक दल और उनके नेता इस स्थिति में निहित खतरों की ओर आवश्यक ध्यान नहीं दे रहे हैं। इसलिए आपसे ही आशा की जाती है कि आप उस स्थिति का यथार्थवादी और राष्ट्रवादी मूल्यांकन करके देश को ठीक दिशा देंगे।

इतिहास और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के एक विद्यार्थी के नाते जिसने पाकिस्तान और बाँगला देश के रुख और भारत में उनके एजेंटों की गति-विधियों के परिप्रेक्ष्य में भारत के एक राष्ट्र के रूप में निर्माण और प्रगति की समस्याओं पर गम्भीरता से विचार किया है, मेरा यह सुविचारित मत है कि हिन्दुस्तान की रक्षा और राष्ट्र के भविष्य के सम्बन्ध में आश्वस्त होने के लिए दो पग उठाने अति आवश्यक हैं। पहला पग है, हिन्दुस्तान को हिन्दू राज्य घोषित करना। दूसरा है, भारतीय पंथों के किसी भी अनुयायी को किसी भी सेमेटिक पंथ (विशेष रूप में इस्लाम, जिनके मूल सिद्धान्त 'सर्व-धर्म समभाव' और मज़हबी स्वतन्त्रता और सहिष्णुता के भारतीय मान्यताओं से मेल नहीं खाते) में प्रवेश पर कानूनी रोक लगाना।

यदि यह पग १९४७ में ही उठा लिये गये होते तो विभाजन के समय की परिस्थितियों का पुनरोदय रोका जा सकता था। परन्तु भूल सुधार में कभी देर नहीं होती। जो काम १९४७ में होना चाहिए था उसे अब तो कर ही लेना चाहिए।

भारत के चहुँओर के राज्य या तो हिन्दू-बौद्ध राज्य हैं या इस्लामी राज्य। पाकिस्तान और बाँगला देश के इस्लामी राज्य व्यावहारिक रूप में पुनः भारत के विरुद्ध एक हो गये हैं। बाँगला देश की स्वतन्त्रता के लिए

भारत की जनता और जवानों द्वारा किये गये सारे बलिदानों को बांगला देश के मुसलमान शासकों ने भुला दिया है। इससे यह धारणा पक्की हुई कि मुसलमान मुसलमान पहले होता है फिर कुछ और। **जब उनमें इस्लामी धर्मान्धता जगती है तो वे गैर-मुस्लिम लोगों के प्रति भाईचारे,** कृतज्ञता **और मानवता की भावना खो बैठते हैं।** हिन्दुस्तान की जनता और सरकार इस कटु सत्य की अवहेलना अपनी बर्बादी की कीमत पर नहीं कर सकती।

राष्ट्रपति होने के नाते आप हमारी सशस्त्र सेनाओं के सर्वोच्च सेनापति भी हैं। सेना के जवानों और अफसरों को ही युद्ध में पाकिस्तान से लोहा लेना पड़ता है। कुछ अपवादों को छोड़कर पाकिस्तान के साथ युद्ध में मुस्लिम सैनिकों की भूमिका का अनुभव सुखद नहीं है। सरकार द्वारा नियुक्त 'डिफेन्स स्टडी टीम' के उपाध्यक्ष के नाते मुझे इस सम्बन्ध में तथ्यों और सेना के जवानों तथा अफसरों की भावना को जानने का अवसर मिला था। उनसे १९४७ में पाकिस्तान द्वारा कश्मीर पर आक्रमण के समय मैंने जो प्रत्यक्ष अनुभव किया था, उसकी पुष्टि हुई है।

किसी देशभक्त भारतीय को 'हिन्दू राज्य' से बिदकने का कोई कारण नहीं। ऐतिहासिक दृष्टि से हिन्दू 'इण्डियन' का पर्यायवाची शब्द है। इन दोनों नामों का उद्गम हमारे देश का महान् भौगोलिक मानचित्र सिन्धु नदी है। यूनानियों ने सिन्धु का उच्चारण इण्डस किया और इसलिए सिन्धुस्थान अथवा हिन्दुस्तान को इण्डिया और यहाँ के लोगों को इण्डियन की संज्ञा दी। हर इण्डियन या भारतीय, जिसका मज़हब देश के प्रति उसकी आस्था में आड़े नहीं आता, वह हिन्दू है। सभी सच्चे भारतीयों से यह अपेक्षा है कि वे इस्लाम के उन सिद्धान्तों का परित्याग करें जो भारतीय राष्ट्रीयता और 'सर्वधर्म-समभाव' से मेल नहीं खाते।

मुझे आशा और विश्वास है कि राष्ट्र के सर्वोच्च अधिकारी होने के नाते आप ऊपर लिखित बातों पर गम्भीरता से विचार करेंगे। समय पर किया काम अनेक भावी कठिनाइयों से बचाता है।

सम्मान सहित,

भवदीय

बलराज मधोक

परिशिष्ट-३

अमेरिका के 'हिन्दू अवेकनिंग फ़ोरम' (Hindu Awakening forum)—यानि हिन्दू जागरण मंच की ओर से प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी को हिन्दू राज्य घोषित करने के लिए दिया गया आवेदन

आदरणीया श्रीमती इन्दिरा गांधी,

हमने अनुभव किया है कि हिन्दुस्तान में हिन्दुओं की दशा लगातार खराब हो रही है। २१ फरवरी, १९८१ को मीनाक्षीपुरम् में नौ सौ निर्धन हिन्दुओं का सामूहिक रूप में मुसलमान बनाया जाना, इसके बाद तमिलनाडु के मदुरा जिले में तरेसठ हिन्दुओं का धर्मपरिवर्तन किया जाना, (Times of India, Nov. 30, 1982), मेरठ के कपिलेश्वर महादेव मन्दिर के पुजारी पं० राम भोले और निकटवर्ती गुरुद्वारा के ग्रन्थी की नृशंस हत्या, पुलिस के साथ डटकर लड़ना तथा मुरादाबाद, मेरठ और केरल के कई नगरों में पुलिस स्टेशनों पर हमले करना, अरब जगत् में किसी स्थान पर किसी मस्जिद के क्षतिग्रस्त होने पर हिन्दुस्तान में हैदराबाद जैसे स्थानों पर हिन्दू मन्दिरों पर हमले करना, उन्हें अपवित्र करना तथा हिन्दुओं की दूकानें लूटना, आसाम में बाँगला देश मुसलमानों की बड़े पैमाने पर घुसपैठ, १९४७ के बाद भारत में मुसलमानों की जनसंख्या में तीन गुणा वृद्धि और हिन्दुओं की जनसंख्या में ७% की कमी, कुछ ऐसी घटनाएँ और बातें हैं जिसके कारण हम महसूस करने लगे हैं कि हिन्दुस्तान में प्रचलित वर्तमान शासन पद्धति मुसलमानों की बुरछा गर्दी पर रोक लगाने में असमर्थ सिद्ध हो चुकी है। हिन्दुस्तान में हिन्दू स्त्रियों की इज़्ज़त और सम्मान तथा हिन्दुओं की जान-माल और सम्पत्ति की रक्षा करने में इसकी असमर्थता और विफलता अब स्पष्ट हो चुकी है।

जिन भारतीय मुसलमानों ने पाकिस्तान का समर्थन किया था, परन्तु विभाजन के बाद भारत छोड़कर पाकिस्तान नहीं गए थे, उनके मन में

अपराध, असुरक्षा व निराशा का भाव था। अपनी जन्मजात सहिष्णुता के कारण खंडित भारत के हिन्दू नेताओं ने उनमें फिर विश्वास पैदा किया और मुस्लिम कल्चर को फिर पनपने का अवसर दिया। अब मुसलमान ने फिर दाँत निकाल लिये हैं। वे निश्चिन्त होकर हिन्दू महिलाओं का अपमान करते हैं और उन्हें कोई पूछता तक नहीं। वे पुलिस और पी० ए० सी० के जवानों पर हमला करते हैं तो भी उन्हें कोई दंड नहीं दिया जाता। इसके विपरीत उनकी शिकायत पर ऐसे योग्य और देशभक्त अधिकारियों का, जो उनके खेल को समझते हैं, स्थानान्तर कर दिया जाता है और उन्हें निरुत्साहित किया जाता है। हर छोटे-बड़े नगर में भारत विरोधी तत्त्वों की अलग बस्तियाँ बन रही हैं; परन्तु, तो भी, देशभक्त लोगों को बताया जाता है कि सब कुछ ठीक है।

इस्लामिक सिद्धान्तवाद और पैट्रो-डॉलर की शह पर हिन्दुस्तान के मुसलमान भारत के आठ करोड़ पिछड़े हिन्दुओं को मुसलमान बनाने के षड्यंत्र का प्रमुख अंग बन गए हैं। वे बहु-विवाह करते हैं और खरगोशों की तरह बच्चे पैदा करते हैं। फलस्वरूप मुसलमानों की जनसंख्या तेजी से बढ़ रही है। यह सब कुछ, जानबूझकर राजनीतिक उद्देश्यों से किया जा रहा है। मुसलमानों की जनसंख्या की वृद्धि से हिन्दुस्तान का जनसंख्या सम्बन्धी सन्तुलन बिगड़ जाएगा और सारे देश के इस्लामीकरण का मार्ग प्रशस्त हो जाएगा।

मुसलमानों की जनसंख्या १९४७ में, जब उन्होंने हिन्दुओं को देश का विभाजन करने के लिए बाध्य किया, २४% के लगभग थी। उनकी जनसंख्या खंडित भारत में फिर तेजी से बढ़ रही है। स्वतन्त्रता के पैंतीस वर्षों में मुसलमानों की जनसंख्या तीन करोड़ से बढ़कर लगभग नौ करोड़ हो गई है। जबकि हिन्दुओं की जनसंख्या ८७% से घटकर ८०% रह गई है। मुसलमानों की जनसंख्या में चौंकाने वाली वृद्धि के मुख्य कारण मुसलमानों में बहु-विवाह, बिना किसी रोक-टोक के बच्चे पैदा करना और धोखाधड़ी, लालच और दबाव से अन्य पंथों के लोगों को मुसलमान बनाना है। वे हिन्दुस्तान को भी लेबनान बनाना चाहते हैं। ऐसे लोगों से निपटने के लिए परम्परागत उपाय कारगर नहीं हो सकते। यह अजीब

विडम्बना है कि हिन्दू अपने ही देश में असुरक्षित हो गए हैं। जिस ढंग से मुसलमान अपना घेरा मजबूत कर रहे हैं, उससे लगता है कि यदि हिन्दुओं की रक्षा के लिए प्रभावी पग न उठाए गए तो हिन्दुस्तान से हिन्दुओं का नाम मिट जाएगा। यह स्थिति हिन्दुस्तान को हिन्दू राज्य घोषित करने की माँग का मुख्य कारण है।

वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था में सभी राजनीतिक दल यह जानते हुए भी कि मुस्लिम देशों में हिन्दुओं की स्थिति कितनी दयनीय है, हिन्दुस्तान में मुसलमानों को प्रसन्न करने में एक-दूसरे से आगे बढ़ने का प्रयत्न कर रहे हैं।

सऊदी-अरब में किसी केशधारी हिन्दू (सिक्ख) को घुसने ही नहीं दिया जाता क्योंकि एक बार उन्होंने वहाँ गुरुद्वारा बनाने का यत्न किया था। मुसलमानों की नाराजगी के डर से मुस्लिम देशों में हिन्दू न सार्वजनिक रूप में पूजा कर सकते हैं और न ऊँचे स्वर में भजन व कीर्तन कर सकते हैं। बंगला देश में हिन्दू दूसरी श्रेणी के नागरिक बना दिये गए हैं। उन्हें हर समय लूट-पाट, मारकाट और उनकी स्त्रियों से बलात्कार का डर रहता है। पाकिस्तान में हिन्दुओं की जनसंख्या २३% से कम होकर १% रह गई है और उनके पास कोई राजनीतिक अधिकार नहीं हैं। इसके विपरीत हिन्दुस्तान में मुसलमानों को राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, मुख्य न्यायाधीश, कैबिनेट स्तर के मन्त्री, राज्यपाल, वायुसेनाध्यक्ष, राजदूत और बीसियों उच्च पद दिये जा रहे हैं। फलस्वरूप एक विचित्र स्थिति पैदा हो गई है जिसमें मुसलमान पाकिस्तान व बंगला देश में पूरा वर्चस्व प्राप्त करने पर भी हिन्दुस्तान में हिन्दुओं के साथ सत्ता में भागीदार बने हुए हैं। सबसे अधिक खेद की बात यह है कि मुस्लिम देशों में हिन्दुओं का उत्पीड़न हो ही रहा है, वे अपने देश में भी मुसलमान अधिकारियों से पीड़ित हो रहे हैं। वे यह सब कुछ चुपचाप सह रहे हैं। इस डर से कि उन्हें सम्प्रदायवादी न कहा जाय, वे इस दुःखदायक स्थिति के विरुद्ध आवाज भी नहीं उठा सकते। परिणामस्वरूप उनका मनोबल टूट रहा है और वे निराश हो रहे हैं।

हमारा कहना यह नहीं है कि मुसलमानों के साथ हिन्दुस्तान में उसी प्रकार का व्यवहार किया जाए जिस प्रकार का व्यवहार मुस्लिम देशों में

हिन्दुओं को मिलता है परन्तु ऐसे उपाय करना तो आवश्यक है जिनसे मुसलमानों के हिन्दुस्तान के हिन्दू बहुल चरित्र को खत्म करने के मनसूबों पर रोक लगाई जा सके और कम-से-कम हिन्दुस्तान की आज की जनसंख्या सम्बन्धी स्थिति कायम रखी जा सके।

मुस्लिम मानसिकता और अन्य मजहबों के प्रति असहिष्णुता को समझने के लिए कुरान द्वारा मुसलमानों के अन्य लोगों के साथ बर्ताव के सम्बन्ध में दिए गए आदर्शों को समझना आवश्यक है। वे आदेश इस प्रकार हैं—

अध्याय	श्लोक	
८	१२	"काफ़िरों के दिलों में दहशत डाल दो, उनके सिर काट लो और उनके अंग-अंग तोड़ दो।"
८	३७	"उनसे तब तक युद्ध करो जब-तक बुतपरस्ती खत्म न हो जाय और अल्लाह का मजहब सर्वप्रिय हो जाए।"
६	४	"जब पवित्र मास खत्म हों, बुतपरस्तों को, जहाँ कहीं मिलें कत्ल करो, उन्हें गिरफ्तार करो, उन्हें घेरो और हर जगह उनकी घात में रहो।"

(एन०जे० दाऊद द्वारा अनूदित कुरान के पन्ने ३१५, ३१७ व ३२१)

इन्हीं आदेशों के अनुसार उन्होंने गुरु तेग बहादुर की हत्या की, गुरु अर्जुन देव पर गरम रेत डालकर उन्हें जिन्दा भून डाला, सम्भाजी के अंग-अंग काट डाले, और हमारे जीवनकाल में स्वामी श्रद्धानन्द व हजारों अन्य हिन्दू-सिक्खों की हत्या की। इन तथ्यों के बावजूद यह मानना कि आज के मुसलमानों की पीढ़ी अपने पूर्वजों से भिन्न है, मूर्खों के स्वर्ग में रहना और मुस्लिम मानसिकता से अनभिज्ञता का परिचायक है। मुसलमान ऊपर दिये गए आदेशों का श्रद्धापूर्वक पालन करते आए हैं और हम कहावत वाले बन्दर की तरह—"बुरा न देखो, बुरा न सुनो" वाला आचरण करते आ रहे हैं।

हमें स्पष्ट रूप में समझ लेना चाहिए कि इस्लाम केवल एक मजहब

नहीं, बल्कि एक राजनीतिक शक्ति है क्योंकि इसकी गतिविधियाँ परमात्मा की पूजा-पद्धति तक सीमित नहीं। इसकी गतिविधियों का उद्देश्य राजनीतिक सत्ता हथियाना और मुस्लिम राज्य स्थापित करना है। इससे भी आगे इस्लाम विभिन्न पंथों के लोगों के साथ सह-अस्तित्व में विश्वास नहीं करता। सच्चे मुसलमानों से यह अपेक्षा नहीं की जाती कि वे किसी गैर-इस्लामी राष्ट्र के वफादार होंगे। इनका यह कर्तव्य बताया गया है कि वे तबतक लड़ते रहें जबतक कि वे इस्लामी राज्य स्थापित न कर लें। इसी के अनुसार वे लेबेनान और फिलिपाइन इत्यादि देशों में लड़ रहे हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में भी जहाँ कुछ काले अमेरिकन मुसलमान बन गए है, मुसलमानों के लिए अलग होमलैंड की माँग उठाई जा रही है। यह सर्वविदित है कि उन्होंने कैसे साइप्रस, जिसमें उनकी जनसंख्या केवल १८% थी, का पड़ोसी इस्लामी राज्य तुर्की की सैनिक सहायता से विभाजन किया है। जब हिन्दुस्तान में उनकी जनसंख्या २४% से भी कम थी तब उन्होंने हिन्दू नेताओं को हिन्दुस्तान का विभाजन करने को बाध्य किया। जब खंडित हिन्दुस्तान में उनकी जनसंख्या १८-२०% पहुँच जाएगी तब वे पाकिस्तान व बंगला देश की सहायता से यही कहानी फिर दुहराएँगे। इसलिए आपका यह कर्तव्य है कि आप भावी पीढ़ियों को इस मुसीबत से बचाने के लिए कुछ करें। यदि मुस्लिम समस्या का निराकरण नहीं किया गया तो जो कुछ आसाम में हुआ है, वह सारे देश में होगा। इस समस्या का प्रभावी हल यह है कि हिन्दुस्तान को हिन्दू राज्य घोषित किया जाय और इसमें मुसलमानों द्वारा उचित व अनुचित ढंग से अपनी जनसंख्या बढ़ाने पर रोक लगाई जाये।

हमारा यह सौभाग्य है कि इस समय हमारे पास एक ऐसा नेतृत्व है जिसमें हिन्दुस्तान की नौका को सुरक्षापूर्वक आगे बढ़ाने की क्षमता है। हम आशा करते हैं कि आप राष्ट्र के प्रति अपनी जिम्मेदारी से नहीं भागेंगी और ऐसे पग उठाएँगी कि मुस्लिम समस्या का हल आपके राज्यकाल में ही हो जाए ताकि यह समस्या भावी प्रधान मन्त्रियों के लिए, जिनमें आप जैसी गतिशीलता और चरिश्मा न हो, लटकती न रहे।

१९४७ में मुसलमानों ने हमारे नेताओं को बाध्य किया कि वे अपने देशाभिमान को छोड़कर मातृभूमि का विभाजन स्वीकार करें। इस प्रकार परोक्ष रूप में ही क्यों न हो, द्विराष्ट्र सिद्धान्त को मान्यता दी गई। विभाजन का स्वाभाविक फलितार्थ खंडित हिन्दुस्तान को हिन्दू राज्य घोषित करना था; परन्तु हमारे नेताओं ने राजनीतिक सुविधावाद और दार्शनिक मानववाद के कारण ऐसा नहीं किया। उनका यह प्रयोग एक बड़ी भूल

सिद्ध हुआ है, जिसका परिणाम मुस्लिम समस्या का पुनरोदय है।

हिन्दू स्वभाव से ही शान्तिप्रिय और विनम्र हैं। उन्हें अपनी और अपने धर्म व संस्कृति की रक्षा के लिए राज्य का संरक्षण चाहिए। वर्तमान राजनैतिक ढाँचा जो मुस्लिम पृथक्तावाद को बढ़ावा दे रहा है, उनके अनुकूल नहीं है। मजहबी सहिष्णुता पूजा-पद्धति की स्वतन्त्रता और सच्चा सेक्यूलरिज़म जिसका पालन छत्रपति शिवाजी और महाराजा रणजीतसिंह ने अपने-अपने हिन्दू राज्यों में किया था और जो हिन्दुत्व का स्वाभाविक अंग है, की प्रभावी ढंग से रक्षा व प्रचार तभी हो सकता है जब हिन्दुस्तान को औपचारिक रूप में हिन्दू राज्य घोषित किया जाय।

नेपाल जैसा छोटा देश सरकारी तौर पर हिन्दू राज्य हो सकता है तो कोई कारण नहीं कि हिन्दुस्तान, जो ऐतिहासिक व जनसंख्या की दृष्टि से हिन्दू देश है, हिन्दू राज्य न बने। १६४७ में मुसलमानों को देश की उनके हिस्से से अलग भूमि काटकर दे देने के बाद तो ऐसा करना और भी तर्क-संगत एवं आवश्यक हो गया है। जब ५१% आबादी वाला मलयेशिया अपने आपको इस्लामी गणराज्य घोषित कर सकता है तो कोई कारण नहीं कि ८०% से अधिक हिन्दू आबादी वाला हिन्दुस्तान हिन्दू राज्य घोषित न हो।

जबकि पाकिस्तान, बंगला देश और लगभग सभी मुस्लिम बहुल देश इस्लामी राज्य हैं, हमें कोई कारण नहीं दिखता कि हिन्दुस्तान, हिन्दुओं की कीमत पर, जो इसकी रीढ़ की हड्डी हैं और जिनके बिना इसका कोई अस्तित्व नहीं, तथाकथित सेक्युलरिज़म का लबादा क्यों ओढ़े हुए है।

अब प्रश्न यह है कि यह कैसे किया जाय। ऐसा करने का शान्तिपूर्ण और सरल उपाय तो यह है कि हिन्दुस्तान के संविधान में बदल दिया जाय। यह संविधान पहले ही छोटी-छोटी बातों के लिए कई बार बदला जा चुका है। देश को बचाने और इतिहास बदलने के लिए यह एक बार और संशोधित किया जा सकता है। इसके लिए आप जैसा साहसिक, कल्पनायुक्त नेता चाहिए जिसकी राजनीतिक सूझ-बूझ एवं दक्षता सर्व-मान्य है। आपको विश्वास रखना चाहिए कि इस दिशा में आपके द्वारा उठाए गए पग का हिन्दू दिल से समर्थन करेंगे। इसलिए हमारी आपकी अन्तरात्मा से दुहाई है कि आप समय रहते इस स्थायी बीमारी का, जो हिन्दू-समाज को घुन की तरह खा रही है, इलाज करने के लिए प्रभावी पग उठाएँ ताकि भावी पीढ़ियों को आने वाली तबाही से बचाया जा सके।

***